अभिनन्दनीय व्यक्तित्व

(श्री वीरेन्द्र गुप्तः)

सम्पादक

प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु

।। ओ३म् खं ब्रह्म ।।

अभिनन्दनीय व्यक्तित्व

(श्री वीरेन्द्र गुप्तः)

प्रधान सम्पादक

प्रा० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

अबोहर

मानव सृष्टि वेद काल – १,९६,०८,५३,०९६

विक्रम सम्वत् – २०५२

दयानन्दाब्द – १७१

अक्टूबर–१९९५

प्रकाशक :–
वेद संस्थान
मण्डी चौक
मुरादाबाद

प्राप्ति स्थान :–
वीरेन्द्र नाथ अश्विनी कुमार
प्रकाशन मन्दिर
मण्डी चौक, मुरादाबाद

संस्करण – प्रथम

मूल्य : रुपये ५०/– मात्र

लेजर टाईपसेटिंग : अरिहन्त टाईपसैटर्स
ए–७६, आदर्श नगर, मुरादाबाद

मुद्रक

।। ओ३म् ।।

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः।
गाय गायत्रमुक्थ्यम्।।

ऋग्वेद १/३८/१४

हे विद्वान! तू वेद वाणी को मुख में कर ले, उसे कण्ठस्थ कर और मेघ के समान गर्जना करते हुए दूर–दूर तक फैला और गायत्री छन्द में कहे वेद वचनों का गान कर।

वेद संस्थान

स्थापित : चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्वत् २०४८

रविवार १७ मार्च १९९१

वेदाब्द – १,९६,०८,५३,०९२

पदाधिकारी एवं सदस्य

१.	श्री आचार्य भगवत सहाय जी	संरक्षक एवं निदेशक
२.	श्री वीरेन्द्र नाथ जी	संस्थापक एवं अध्यक्ष
३.	श्री आचार्य ऋषिपाल जी	उपाध्यक्ष
४.	श्री अम्बरीश कुमार जी	सचिव
५.	श्री विजय कुमार जी	उप सचिव
६.	श्री राम किशोर जी	कोषाध्यक्ष
७.	श्री अमर नाथ जी	आय व्यय निरीक्षक
८.	श्रीमति इन्दिरा गुप्ता	
९.	श्री राम कृष्ण जी	
१०.	श्री अशोक कुमार जी	
११.	श्री वीरकान्त जी	

सम्पादक मण्डल

प्रा० राजेन्द्र जिज्ञासु	—	प्रधान सम्पादक
डा० अजय अनुपम	—	उप सम्पादक
श्री पुष्पेन्द्र वर्णवाल	—	सह सम्पादक
श्री विजय कुमार	—	प्रबन्ध सम्पादक

अभिनन्दन समिति

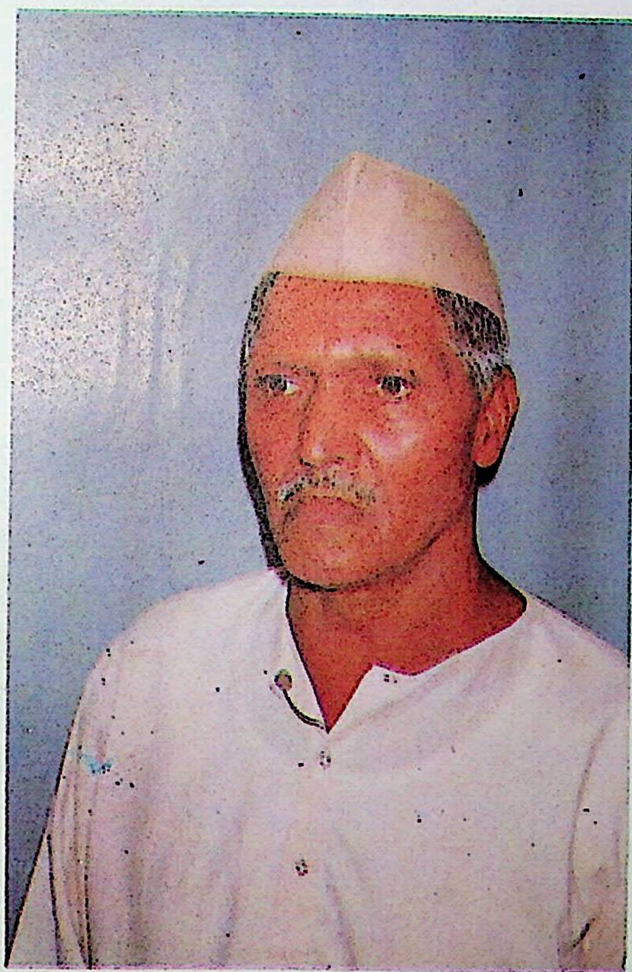
१. श्री जगदीश सरन — अध्यक्ष
२. श्री राजेन्द्र कुमार गुप्त — मंत्री
३. श्री राधेश्याम रस्तौगी
४. श्री सेवाराम त्यागी
५. श्री रामसरन वानप्रस्थी
६. श्री शंकर दत्त पांडे
७. श्री आनन्द स्वरूप मिश्र
८. डा० आलोक रस्तौगी
६. श्री राजेन्द्र नाथ
१०. श्री राम मुकुट गुप्ता
११. श्रीमति निर्मला आर्या
१२. श्रीमति सुधा आर्या
१३. श्रीमति सुधा गुप्ता
१४. श्रीमति मनोरमा गुप्ता
१५. श्री अम्बरीष अग्रवाल
१६. श्री उमेश चन्द्र गुप्ता, जलेसर वाले
१७. श्री राजेन्द्र कुमार
१८. सुधीर कुमार

बोधक

शुभ कामना संदेश

व्यक्तित्व एवं कृतित्व

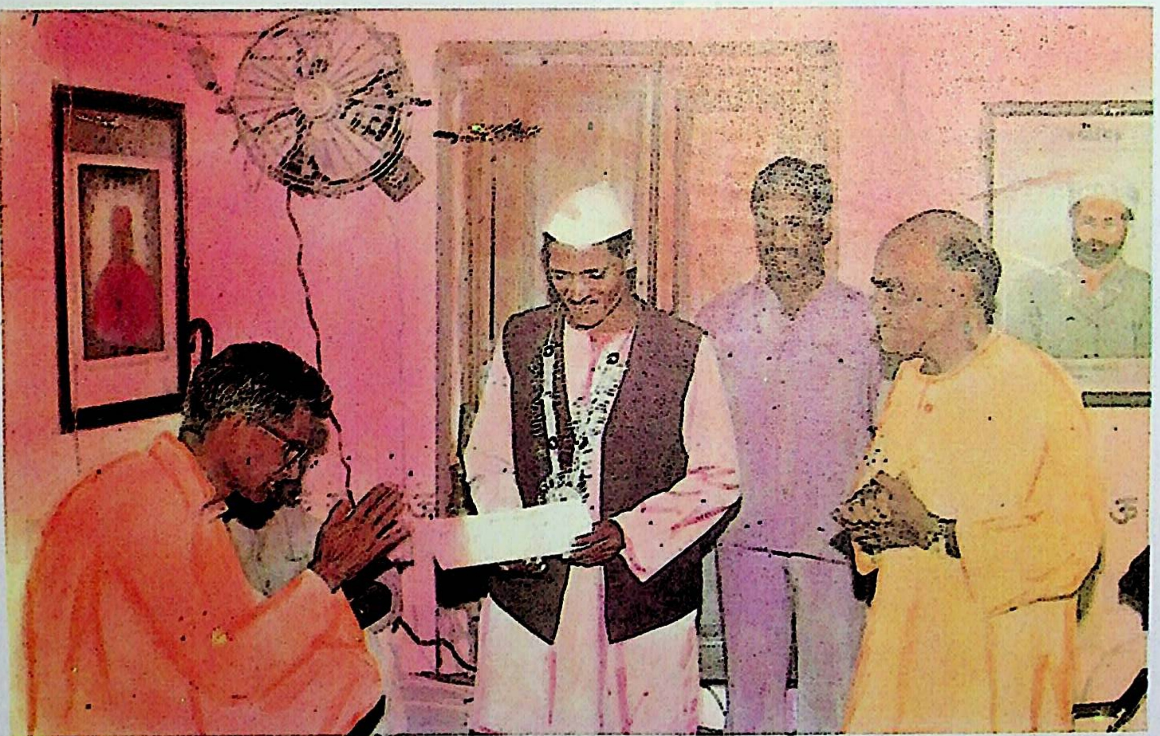
सिद्धान्त



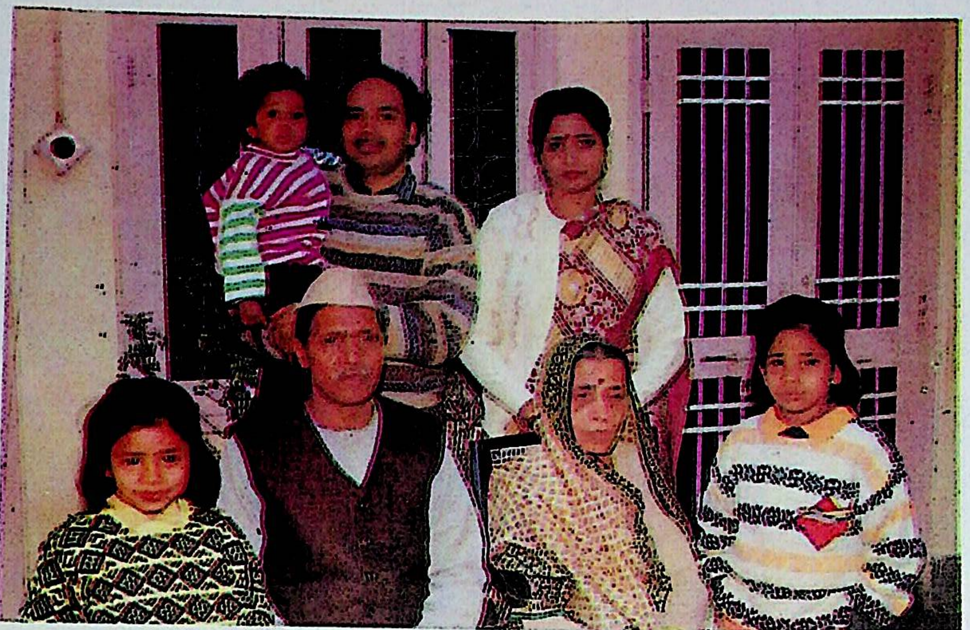
श्री वीरेन्द्र गुप्तः



पुरालेखन केन्द्र द्वारा सम्मान



आर्य समाज मण्डी बांस द्वारा सम्मान



श्री वीरेन्द्र गुप्तः परिवार के साथ

शुभकामना संदेश

अटल बिहारी वाजपेयी
नेता, प्रतिपक्ष
लोक सभा



17/2 15 दिसम्बर, 1994

प्रिय डा॰ अनुपम,

आपका 27 नवम्बर, 1994 का पत्र प्राप्त हुआ, धन्यवाद।

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि वैदिक साहित्य एवं राष्ट्रवाद के प्रचारक श्री वीरेन्द्र नाथ गुप्त के सम्मान में अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है।

मैं उनके दीर्घजीवन की कामना करता हूं।

शुभकामनाओं सहित,

आपका,

अटल बिहारी वाजपेयी

(अटल बिहारी वाजपेयी)

डा॰ अजय अनुपम,
उप-संपादक, अभिनन्दन ग्रन्थ,
वेद संस्थान, रेती स्ट्रीट,
मुरादाबाद

44, संसद भवन, नई दिल्ली-110001 दूरभाष : 3017470, 3034285 (कार्यालय)
6, रायसीना रोड, नई दिल्ली-110001 दूरभाष : 3715166, 3714869 (निवास)



पत्रांक: 3382/नेविद/94

विधान भवन
लखनऊ

दिनांक: 12 दिसम्बर, 1994

कल्याण सिंह
पूर्व मुख्यमन्त्री

प्रिय डा० अजय अनुपम,

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि "वेद संस्थान" मुरादाबाद द्वारा वैदिक साहित्य एवं राष्ट्रवाद संबंधी 35 पुस्तकों के निर्माता श्री वीरेन्द्र गुप्त जी के सम्मान में अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन किया जा रहा है।

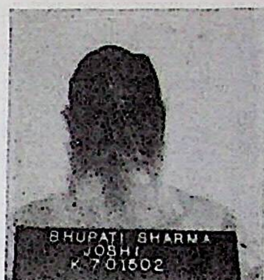
वेद संस्थान, मुरादाबाद द्वारा "अभिनन्दन-ग्रन्थ" के सफल प्रकाशन हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनायें।

भवदीय

(कल्याण सिंह)

डा० अजय अनुपम,
उप सम्पादक,
अभिनन्दन ग्रन्थ, रेतीस्ट्रीट
मुरादाबाद-244001

वैदिक विचार पोषकः



डा० भूपति शर्मा जोशी

परमपितुः परमात्मन परमानुकम्पया परम सौभाग्यकारी एव समयो यस्मिन् विशिष्ट वैदिक परम्परा निवद्धविशद विचार संरणीनां मनोवाक्कर्मभिः सततसम्पोषकस्य स्वनामधन्यस्य श्री वीरेन्द्र गुप्तस्य साहित्यिकाः समाज सेवकाश्चाभिनन्दनं कर्तुं समुदताःसन्ति। तेषां सुरभिसमन्वितेषु विचारपुष्प ग्रथितेषु सुमनःसुमनोहारिषु हारेषु मंमोयं मनोमुकुलिता सुवासो विरहिता कलिका एव वसति मेष्यतीति संकुचित मानसेन मया सानुरोधं प्रस्तूयत एव।

श्री वीरेन्द्र गुप्तो हिन्दी साहित्यस्य वैदिक विचार परम्परायाश्च सशयं शान्त उपासकोऽस्ति। एभिर्महाश्यैः 'वेद दर्शन' 'वेद में क्या है' 'पुत्र प्राप्ति का साधन' 'आनुषक्' इत्यादीनां त्रिंशदधिकानां सुरुचि सम्पन्नानां समाजोपयोगिनां च ग्रन्थ रत्नानामात्ममनोखनेः प्रादुर्भावो विहित इति निःसन्देहं समाजस्य कृते हर्षकरो विषयः। श्री गुप्तः महोदयैरचना धर्मित्वस्य सफल प्रदर्शन पूर्वकं निज व्यवहार कौशलस्य, सौम्यतायाः सरलस्य सुदृढस्य च व्यक्तित्वस्य यः परिचयः सर्वत्र सततं सुतरां समुपस्थापितः सः विश्वेषां मानवोपासकानां कृतेऽनुकरणीयतां भजते।

एवे महानुभावाः सकलेषु सामाजिकेषु स्वीयेषु च जीवन क्षेत्रेषुसर्वथा साफल्यमान्पुयुः शतं समाश्चजीयासुरिति मनसो तलगाम्भीर्येण कामये।

हिन्दी प्रभाकर, एम०ए० (हिन्दी, संस्कृत)
साहित्य रत्न, साहि ःालंकार,
साहित्याचार्य, पी०एच०डी०
सी–४८, हरपालनगर,
मुरादाबाद

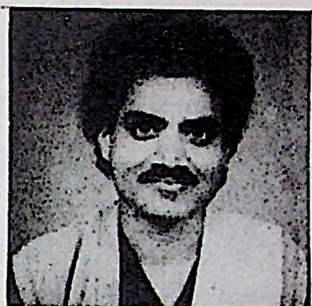
।। ओ३म् ।।

पं० सत्यवती आर्य

यह जानकर अपार हर्ष हुआ कि श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी कर्मठ आर्य समाजी, लेखक व मनीषी हैं। उनके सम्मान में "अभिनन्दन ग्रन्थ" छप रहा है, मैं ऐसे आर्यवीर की दीर्घायु की कामना करती हूँ तथा अभिनन्दन ग्रन्थ पूरे साज सज्जा के साथ प्रकाशित हो--एतदर्थ मेरी हार्दिक शुभ कामनाऐं।

पूर्व कल्याण प्रशासक
कोयला विभाग (भारत सरकार)
घाट रोड, भागलपुर (बिहार)

।। ओ३म् ।।



ब्र० व्यासनन्दन शास्त्री

मेरी सस्नेही भ्राता व आर्योपदेष्टा ब्रह्मानन्द नैष्टिक जी द्वारा यह जानकर अति प्रसन्नता हुई कि परम श्रद्धेय मतिमन् स्वनामधन्य श्रीयुत वीरेन्द्र गुप्तः जी एक बहुमुखी प्रतिभा के धनी व्यक्ति हैं, याज्ञिक हैं। आप यशस्वी लेखक के अतिरिक्त कर्मठ, आर्य समाजी, समाज सेवी, मनीषी व योगी भी हैं। आपके सम्मानार्थ "अभिनन्दन ग्रन्थ" का प्रकाशन सचमुच श्लाघनीय प्रयन्त है। मैं इसके यथाशीघ्र प्रकाशन की शुभकामनाओं के साथ–साथ श्री गुप्तः जी की ईश्वर से शतायु होने की प्रार्थना भी कर रहा हूँ। परमात्मा इन्हें व इनके सकल परिवार को आनन्दित करे।

वैदिक प्रवक्ता
संस्कृत विभाग
भागलपुर विश्वविद्यालय
भागलपुर (बिहार)

।। ओ३म् ।।



सियाराम निर्भय

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का अभिनन्दन ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है।

श्री गुप्तः जी उच्च कोटि के लेखक, वक्ता एवं चिन्तक हैं। आप द्वारा लिखित पुस्तकें भावी पीढ़ी के लिये मार्ग दर्शन का काम करेंगी।

असहाय एवं अनाथ बच्चों को गुरुकुलों में पढ़ा कर महर्षि दयानन्द सरस्वती के सपनों को साकार करने में आपने अपने सात्विक धन का उपयोग कर एक कीर्तिमान स्थापित किया है।

पत्थरों की संस्कृति विनष्ट हो जाती है। पर अक्षरों की संस्कृति सदा जीवंत रहती है।

इसी आशा और विश्वास के साथ अभिनन्दन ग्रन्थ के लिये मेरी शुभ कामनाऐं।

राष्ट्रीय कवितोपदेशक
खेताड़ी महल्ला
पो. आरा. (बिहार) ८०२३०१

।। ओ३म् ।।

अमर साहित्य की कामना



नारायण सिंह वैदिक

महामना श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने विश्व का हित समझते हुए कठिन परिश्रम तथा त्याग का आश्रय लेकर उत्तम विचार जनता के समक्ष अपने साहित्य के द्वारा प्रस्तुत किये हैं और साथ ही समाज, राष्ट्र एवं विश्व कल्याणार्थ विधि का दिग्दर्शन कराया है। जिससे अखण्ड भारत का पुनः निर्माण होगा और फिर से भारत जगत गुरू बन कर संसार का कल्याण करेगा और मनु जी महाराज की गर्वोक्ति अक्षरशः पुनः सत्य सिद्ध होगी।

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः।।

इस देश में उत्पन्न हुए विद्वान् ब्राह्मण से, पृथ्वी के समस्त मानव अपना–अपना चरित्र सीखें।

प्रभु से यही प्रर्थना और कामना है कि श्री गुप्तः जी का साहित्य सबका पथ प्रदर्शक बनकर सदैव अमर बना रहे।

२४/११ धर्मपुर,
देहरादून

।। ओ३म् ।।

अतीत के वातायन से



मेरे बाल सखा भाई श्री वीरेन्द्र गुप्तः को वेद संस्थान द्वारा अभिनन्दन ग्रन्थ दिया जा रहा है, जानकर प्रसन्नता हुई। मुरादाबाद में वैदिक ज्ञान प्रचारक के रूप में उन्होंने अथक प्रयास किया है। वीरेन्द्र भाई सहज स्वभाव मिष्टभाषी एवं निरभिमानी व्यक्तित्व के धनी हैं।

डा० गिरीश चन्द्र त्रिपाठी
पी.एच.डी.

मुरादाबाद में जब भी कभी मिल जाते हैं तब एक ही बात कहते हैं कहो गिरीश भाई ठीक हो? इन्हीं के माध्यम से मुझे ज्ञात हुआ कि स्वामी दयानन्द जी सरस्वती दीवान के बाजार में राजा जयकिशन दास जी की कोठी में ठहरे थे और उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के कुछ अंश यहीं रहकर लिखवाये थे।

इनके साधारण व्यक्तित्व में भी असाधारण गुण हैं। मैं इनके दीर्घ और यशस्वी जीवन की कामना करता हूँ।

३४, साक्षर अपार्टमेंटस्
ए–३ पश्चिम विहार
नई देहली, ६३

।। ओ३म् ।।

अवगाहक

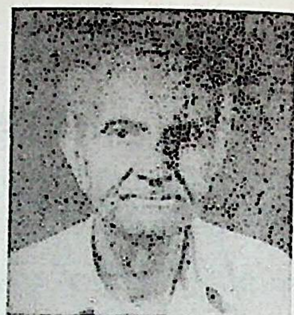


प्रो० महेन्द्र प्रताप
सेवानिवृत्त प्राचार्य

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का व्यक्तित्व समष्टि के साथ एकाकार होने को उत्सुक व्यत्तित्व है, वे वैदिक साहित्य सिन्धु के सक्षम अवगाहक हैं, वेद-चर्चा के माध्यम से भारतीय जीवन-दृष्टि का तात्विक निरूपण ही उनके जीवन का प्रिय लक्ष्य है। मैं उनकी सदाशयता, लोक निष्ठा और कर्मठता के प्रति अपना आदर-भाव व्यक्त करता हूँ और उनके शतायु होने की कामना करता हूँ।

के०जी०के० कालिज,
हर गुलाल बिल्डिंग
कटरानाज, मुरादाबाद

सत्यनिष्ठ लेखक



मुरादाबाद में साहित्य की एक गौरव शाली परम्परा रही है। इस नगर में समय–समय पर राष्ट्रीय हित में लेखन और आन्दोलनों के माध्यम से रचनात्मक योगदान किया जाता रहा है। श्री वीरेन्द्र नाथ गुप्तः का व्यक्तित्व एवं कृतित्व, इस नगर से वर्तमान में अपनी परम्परा को पोषित करने में सक्षम रहा है।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः एक सत्यनिष्ठ, आचारवान्, स्वस्थ चिन्तक एवं लेखक के रूप में गरिमा को प्राप्त हैं। उनका लेखन नई और पुरानी पीढ़ी के व्यक्तियों को प्रेरणा प्रदान करता है। नगर के बुद्धिजीवियों की ओर से श्री वीरेन्द्र गुप्तः के व्यक्तित्व एवं कृतित्व को लेकर एक अभिनन्दन ग्रन्थ की योजना साकार हो रही है।

मैं इस अवसर पर नगर के वरिष्ठ साहित्यकार एवं स्वतन्त्र चिन्तक श्री वीरेन्द्र नाथ गुप्तः की दीर्घायु की कामना करता हूँ।

ईश्वर श्री गुप्तः जी के लेखन से समाज को और अधिक लाभान्वित करे इस प्रार्थना के साथ।

शुभाकांक्षी
जसवन्त राय

कानून गोयान
मुरादाबाद – २४४ ००१

व्यक्तित्व

एवं

कृतित्व



सम्पादकीय

अतीत के झरोखे से


राजेन्द्र जिज्ञासु
प्र० सम्पादक

मान सम्मान तो सब चाहते हैं परन्तु, दूसरों का मान सम्मान सब लोग नहीं चाहते। सब यशस्वी हों, सबकी कीर्ति हो, यह एक अच्छी बात है। सत्कर्म को करते हुए सबका यश दशों दिशाओं में फैले। यह उत्तम बात है। संसार के कल्याण का यही मार्ग है परन्तु मानवीय दुर्बलताओं के कारण ईर्ष्या द्वेष के महारोग से ऐसा हो नहीं पाता। वे जन धन्य हैं, जो परोपकार में लगे हुये, धर्मात्मा सज्जनपुरुषों के सत्कार की बात सोचते ही नहीं, इस प्रकार के आयोजन भी करते हैं। अपूज्यों का पूजन करने से तो द्वेष, क्लेश, पाप, ताप ही बढ़ेगा। पूज्य पुरुषों का सम्मान करने से औरों में भी धर्मानुराग व परोपकार का भाव जागेगा।

मुरादाबाद के श्री पुष्पेन्द्र वर्णवाल बन्धु बधाई के पात्र हैं जिन्होंने एक सीधे साधे समाज सेवी और साहित्य सेवी श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी की निष्काम साहित्य सेवा का मूल्यांकन करते हुए उनके अभिनन्दन की योजना बनाई। डा० अजय अनुपम जी ने इस कार्यक्रम को भव्य रूप देकर इस अवसर पर एक सुन्दर अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन करने का निर्णय लिया। श्री विजय कुमार गुप्त जी ने इस निश्चय को पूरा करने के लिए अनेक प्रकार की प्रबन्ध सम्बन्धी व्यवस्थां का भार अपने ऊपर लेकर कार्य को पूर्णता की ओर बढ़ाया। वेद संस्थान, मुरादाबाद के सचिव श्री अम्बरीष कुमार जी ने इसके प्रकाशन का उत्तरदायित्व स्वीकार कर इस सारस्वत यज्ञ को पूर्ण करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया और अब ग्रन्थ आपके हाथों में है।

मुरादाबाद की प्रसिद्धि व्यापारिक केन्द्र होने के कारण तो है ही। कभी मुरादाबाद का नाम अपनी सामाजिक व सांस्कृतिक गतिविधियों के लिये देश प्रसिद्ध था। भारतीय जन जागरण का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है। युग निर्माता, आत्मवेत्ता, काशी के विजेता, वेदोद्धारक, देश सुधारक महर्षि दयानन्द जी महाराज की कृपा दृष्टि से मुरादाबाद का नाम विश्व में चमका है।

ऋषि के कालजयी ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की रचना इसी नागरी में प्रारम्भ हुई थी। इस नगरी के एक सपूत राजा जय किशन दास ने इस अनूठे ग्रन्थ का प्रकाशन करवा कर अघ–अज्ञान की शक्तियों को ललकारा और परास्त किया था। भारत के सांस्कृतिक इतिहास में राजा जयकिशन दास का अपना विशेष स्थान रहेगा। मुरादाबाद में जन्में अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश का एक शताब्दी में ही विश्व की इतनी भाषाओं में अनुवाद व प्रसार हुआ है कि जिसका दूसरा उदाहरण मिलना कठिन है। कमाल की बात तो यह है कि यह सब कुछ राज्याश्रय के बिना हुआ।

धर्म और जाति की रक्षा के लिये मुरादाबाद के ही मुंशी इन्द्र मणि जी वैश्य की सेवाओं का भी स्मरण करके हमें अभिमान होता है। यद्यपि ठाकुर जगन्नाथ दास के कुचक्र में फंसकर मुंशी जी कुछ मार्गच्युत हो गये और उनसे जो आशायें बंध गईं थीं वह पूरी न हो सकीं। मुंशी जी को स्वयं ही अपनी भूल के लिये पश्चाताप हुआ परन्तु जो बिगाड़ होना था सो हो गया।

मुरादाबाद की नगरी को गौरवान्वित करने वाली एक और विभूति थी पं० क्षेमकरण दास जी त्रिवेदी। महर्षि दयानन्द की कृपा दृष्टि व आर्शीवाद से मुंशी क्षेमकरण दास एक दिन वेद मनीषि पं० क्षेमकरण दास त्रिवेदी के नाम से विख्यात हो गये। प्रभु का सद्ज्ञान किसी देश, प्रदेश या वर्ग विशेष की बपौती नहीं, महर्षि दयानन्द के इस घोष ने एक दम हलचल पैदा कर दी। जिस मुंशी क्षेमकरण दास को गायत्री के पाठ का अधिकार नहीं था वह अथर्ववेद का भाष्यकार बनकर चमका। यह क्या एक क्रान्ति नहीं थी?

मुरादाबाद के गौरवमय इतिहास में महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज का नाम स्वर्ण अक्षरों में लिखा जायेगा। यहीं कलैक्टर के कार्यालय में एक सम्मानास्पद पद पर आसीन मुंशी नारायण प्रसाद चाहते तो घूस लेकर प्रचुर धन कमा सकते थे। उन पर ऋषि का और वेद का रंग ऐसा गाढ़ा चढ़ा कि अंग्रेज कलैक्टर हैरिसन ने उनके बारे में यह लिखा है **"He has a remarkable reputation for Honesty"** अर्थात ईमानदारी के लिये इनकी गजब की प्रसिद्धि थी। सारा जनपद जानता था।, एक–एक बच्चे की जिह्वा पर यह वाक्य होता था कि मुंशी नारायण प्रसाद आर्य समाजी हैं, अतः वह किसी से एक पैसा भी घूस नहीं लेता। मुंशी नारायण प्रसाद के आचरण से वेद–प्रचार के आन्दोलन को बड़ा बल मिला। जहाँ सहस्त्रों व्याख्यानों का प्रभाव नहीं पड़ता वहाँ सरल हृदय निर्मल जीवन की एक छोटी सी घटना वह चमत्कार कर दिखाती है कि नारायण प्रसाद से महात्मा नारायण स्वामी बना देती है। नारायण प्रसाद जी का आचरण ऐसा ही था।

नगर मुरादाबाद में ऋषि की शिष्य परम्परा में साहू श्यामसुन्दर जी कोठीवाल का नाम न लेना हमारी एक भयंकर भूल होगी। ऋषि के सत्संग से उनका जीवन ही पलट गया। वह आर्य समाज के लिये समर्पित हो गये और एक इतिहास बना डाला। इस क्षेत्र ने एक के पश्चात् दूसरा और दूसरे के बाद तीसरा कई नर रत्न दिये। यहां किस–किस का नामोल्लेख करें और किस को छोड़ें। मोटे रूप में हम इस प्राचीन परम्परा को मौलाना सत्यदेव तक ही अंकित कर रहे हैं। स्थान अभाव से क्षेत्र की अन्य आर्य विभूतियों की चर्चा अन्य किसी अवसर पर करेंगे।

ऋषि की इस शिष्य परम्परा में हमारे माननीय श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का नाम लिया जायेगा। आर्य जगत ने कभी मुरादाबाद की विभूति महात्मा नारायण स्वामी जी को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करके अपने आपको धन्य समझा था। आज मुरादाबाद के धर्मनिष्ठ बन्धु आर्य जगत की ओर से इस ऋषि भक्त को अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट करके सारे समाज को गौरवान्वित कर रहे हैं। वीरेन्द्र जी का सम्मान एक व्यक्ति का सम्मान नहीं है, यह

सम्मान है निष्काम सेवा का, सरल व्यवहार का, धर्म भाव का, सत्यनिष्ठा का, अर्थ शुचिता का और समर्पण भाव का।

श्री वीरेन्द्र जी का समर्पण भाव तो देखिये कि आपने पूज्य पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय की जन्म शताब्दी पर मेरे कहने से उनका खोजपूर्ण विस्तृत जीवन चरित्र प्रकाशित कर दिया और दो सहस्त्र प्रतियां छाप दीं, इस आशा से कि आर्य समाज चौक, प्रयाग, आर्य प्रतिनिधि सभा, उ०प्र० और सार्वदेशिक सभा इस पुस्तक के प्रसार में सहयोग करेंगी। इन सभाओं के निर्माण में उपाध्याय जी ने भरी जवानी वार दी। इन में से किसी ने कुछ भी सहयोग न दिया और वीरेन्द्र जी की लागत भी नहीं लौटी। आज पर्यन्त आपने एक बार भी मुझ से यह नहीं कहा "वाह जिज्ञासु जी! आपने मुझे घोर घाटे की घाटी में फेंक दिया।"

आपको इस बात पर गौरव है कि आपने एक पूज्य नेता, ऋषि मिशन पर सर्वस्व न्यौछावर करने वाले महापुरुष की शताब्दी पर एक ऐसा कार्य कर दिया जिसे आर्य जगत कभी भूल न सकेगा। समाज को कृतघ्नता के पाप से बचा लिया। यह भी स्मरण रहे कि लेखक का इस पुस्तक के कारण एक से अधिक बार अभिनन्दन किया गया।

एक वैश्य बहुश्रुत होने से व विस्तृत स्वाध्याय के बल पर धर्म व दर्शन के सब मूलभूत सिद्धान्तों की अधिकारपूर्वक चर्चा करने योग्य हो जाय। यह ऋषि दयानन्द का एक चमत्कार नहीं तो क्या है? अब मैं अपनी लेखनी को रोकना चाहता हूं। समाप्ति से पूर्व इस ग्रन्थ को उत्तम, पठनीय व सुन्दर बनाने के लिये किस किस को धन्यवाद दूँ, इसमें श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के अनेक प्रशंसकों के लेख व कवितायें हैं। किसी का भी परिचय विशेष देने की कोई आवश्यकता नहीं। सनातन धर्म जगत के एक मूर्धन्य विद्वान स्वर्गीय पं० गोपाल शास्त्री, दर्शन केसंरी, काशी का सुन्दर लेख इस ग्रन्थ की शोभा को बढ़ाने वाला है।

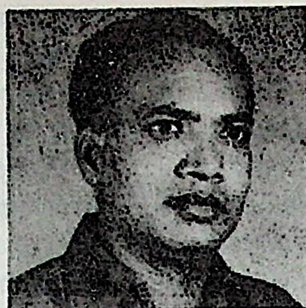
लेखकों में श्री स्वामी वेदमुनि जी नजीबाबाद, श्री डा० भवानी लाल जी भारतीय, जयपुर व महात्मा प्रेम प्रकाश जी धूरी (पंजाब) श्री ब्र. ज्ञानेश्वर जी सरीखे आर्य जगत के कई जाने माने विद्वान व सेवक हैं। श्रीयुत व्यास नन्दन जी, भागलपुर उदीयमान संस्कृतज्ञ और बड़े विनम्र विद्वान हैं, प्रिय श्री अमर नाथ जी बदायूँ का भी लेख है। आप एक दिन आर्य जगत में बहुत चमकेंगे। गुरूकुल, गौतम नगर, देहली के तेजस्वी बलवान ब्र० प्रिय श्री पाल आर्य ने भी मेरी प्रेरणा पर एक संक्षिप्त सुन्दर लेख भेजकर इस ग्रन्थ को अधिक उपयोगी व ठोस बनाने में सहयोग किया है। इन सब को मैं किन शब्दों में धन्यवाद दूँ।

कवि महानुभावों की रचनाओं के बिना तो यह ग्रन्थ अधूरा ही माना जाता। प्रबुद्ध पाठकों का कृतज्ञ हृदय उन्हें धन्यवाद देगा। मेरे मान्य सहयोगी श्री डा० अजय जी 'अनुपम', श्री पुष्पेन्द्र वर्णवाल जी, श्री विजय कुमार जी, श्री आचार्य ऋषि पाल शास्त्री जी ने ग्रन्थ सम्पादन में जो श्रम किया है उसके लिये वे बधाई व प्रशंसा के पात्र हैं।

सज्जनवृन्द! यह मत भूलिये कि जीव अल्पज्ञ है। जीव की प्रत्येक कृति में दोष के रहने की सम्भावना ऐसे ही बनी रहती है जैसे आग में धुँआ। इस ग्रन्थ के

क्रमशः पृष्ठ ३८

व्यक्तित्व एवं कृतित्व


राजेन्द्र नाथ

जन्म :— श्रावण शुक्ल ६ बुद्धवार सम्वत् १९८४ तदनुसार ३ अगस्त १९२७ सृष्टियाव्द १,९६,०८,५३,०२७ को आर्यवर्त देश (भारतवर्ष) के उत्तर प्रदेशीय क्षेत्र के मुरादाबाद नगर में परम आदरणीय श्रद्धेय भूषण शरण जी के गृह में माता अशर्फी देवी के पुरुषार्थ से जन्म हुआ।

शिक्षा :— प्रारम्भिक शिक्षा बल्देव आर्य संस्कृत पाठशाला में रही, पश्चात् कारोनेशन हिन्दू हाईस्कूल, मुरादाबाद में रही।

दिशा निर्देशः—१. श्रद्धेय पं० गोपी नाथ जी, जीलाल मोहल्ला, मुरादाबाद से आर्य समाज के सिद्धान्तों का ज्ञान।

२. अध्यापक श्री तनसुंखराय भाल जी दिनदारपुरा, मुरादाबाद से आर्य कुमार सभा में सक्रिय भाग लेने की प्रेरणा।

३. वैद्यराज बुद्धा सिंह जी कुन्दनपुर, मुरादाबाद से लेखन के लिये प्रेरणा और चिकित्सा का ज्ञान।

४. मौलाना सत्यदेव जी ग्राम रफातपुरा, मुरादाबाद से तार्किक प्रक्रिया का ज्ञान।

५. आचार्य भगवत सहाय जी, डिप्टी गंज, मुरादाबाद से भूमिका लेखन का सहयोग।

विवाह :— बाबू लक्ष्मी नरायण जी की सुपुत्री राजेश्वरी देवी के साथ १८ नवम्बर १९४६ में हुआ।

गृहस्थ :— प्रथम पुत्र अश्विनी कुमार का जन्म ६ अगस्त १९५५, दूसरी कन्या इन्दिरा का जन्म ३ जून १९६२, तीसरी कन्या अमृता का जन्म १७ नवम्बर १९६५ में हुआ। अमृता का १० जून १९६८ को और अश्विनी कुमार का २० सितम्बर, १९७६ को जीवन समाप्त हो गया। इन्दिरा का विवाह ला० भूकन सरन जी हसनपुर दूध वालों के सुपुत्र श्री वीरकान्त जी के साथ २६ जून १९८३ को सम्पन्न हुआ।

प्रकाशित कृतियाँ :— १. इच्छानुसार सन्तान, २. लौकिट उपन्यास, ३. पुत्र प्राप्ति का साधन, ४. पाणिग्रहण संस्कार विधि, ५. सीमित परिवार, ६. गर्भावस्था की उपासना, ७. नींव के पत्थर, ८. बोध रात्रि, ९. धार्मिक चर्चा, १०. कर्म चर्चा, ११. सस्ती पूजा, १२. वेद में क्या है? १३. वेद की चार शक्तियां, १४. कामनाओं की पूर्ति कैसे? १५. यज्ञों का महत्व, १६. ज्ञान दीप, १७. दैनिक पंच महायज्ञ, १८. दिव्य दर्शन, १९. दस नियम, २०. पतन क्यों होता है? २१. विवेक कब जागता है? २२. ज्ञान–कर्म–उपासना, २३. वेद दर्शन, २४. वेदाँग परिचय,

२५. संस्कार, २६. निराकार साकार के स्वरूप का दिग्दर्शन, २७. मनुर्भव, २८. अदीनास्याम, २६. गायत्री साधन, ३०. नवसम्वत्, ३१. आनुषक (कहानियां), ३२. विवेकशील बच्चे, ३३. जन्म दिवस।

अंग्रेजी भाषा में अनुदित कृतियां:–

१. हाऊ टू बिगैट ए सन
अनुवादक–(श्री दुर्गादत्त त्रिपाठी, किसरौल मुरादाबाद)
२. लाइट आफ लरनिंग
अनुवादक–(श्री राजेन्द्र कुमार गुप्ता, ४०, गंज छत्ता, मुरादाबाद)

सम्पादक:– ज्ञान दीपिका, आर्य स्त्री समाज, मण्डी बांस, मुरादाबाद, सम्पादकीय १६६२

उप सम्पादक:–

स्मारिका १६७६, आर्य समाज, मण्डी बांस, मुरादाबाद
आर्य समाज मुरादाबाद के सौ वर्ष (लेख)

भूमिका लेखन:–

१. ऋषि (लघु काव्य)
(पुष्पेन्द्र वर्णवाल, नवाबपुरा, मुरादाबाद १६७६)
२. समस्त हरिजन (अछूत) ब्राह्मण क्षत्री हैं
(मा० सुमेर सिंह, कटघर, मुरादाबाद १६८१)
३. सत्यार्थ प्रकाश मेरी दृष्टि में
(हरिशंकर, मण्डीबांस, मुरादाबाद १६८२)
४. व्यक्ति से व्यक्तित्व
(राजेन्द्र जिज्ञासु, वेदसदन, अबोहर, हरियाणा १६८३)
५. विनयामृत सिन्धु
(काव्यानुवाद, प्रकाशवीर 'व्याकुल' १६६४)

सम्मान:– १. १४ सितम्बर १६८२–राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रचार समिति, मुरादाबाद।
२. ३ अक्टूबर १६८२ आर्य समाज, मण्डी बांस, मुरादाबाद।
३. ३ सितम्बर १६८८ पुरालेखन केन्द्र, मुरादाबाद।
४. १४ सितम्बर १६८८ श्री यशपाल सिंह स्मृति साहित्य शोध पीठ, मुरादाबाद।
५. २ जनवरी १६६२ साहू शिव शक्ति शरण कोठीवाल स्मारक समिति, मुरादाबाद।

उल्लेख:– १. हिन्दी साहित्य का इतिहास
लेखक–डा० आलोक रस्तोगी एवं श्री शरण देहली १६८८
२. आर्य समाज के प्रखर व्यक्तित्व
दिव्य पब्लिकेशन, केसर गंज, अजमेर १६८६
३. आर्य लेखक कोश
दयानन्द अध्ययन संस्थान, जोधपुर १६६१

४. संस्कार दीपिका,

सम्पादक, डा० अजय 'अनुपम', मुरादाबाद १९९२

सामाजिक कार्यः—

१. आर्य कुमार सभा, उप मंत्री व कोषाध्यक्ष

२. आर्य समाज, मण्डी बांस मुरादाबाद, प्रधान, मंत्री, कोषाध्यक्ष, पुस्तकाध्यक्ष व आय–व्यय निरीक्षक

३. आर्य वीर दल, मुरादाबाद शाखा, नायक, बौद्धिक नायक।

४. मुरादाबाद इन्टर कालेज–उपाध्यक्ष

५. १३ सौ जाटव परिवारों की शुद्धि १९४८ उसके पश्चात् अनेकों का शुद्धिकरण किया।

संस्थापक :—

१. यज्ञ प्रचार समिति १९४८

२. वेद संस्थान १९९१

संकल्पः— १९४८ हिन्दी का प्रयोग और चमड़े का त्याग

पत्रिकाओं में लेखः—

यज्ञ योग ज्योति, रोहतक, भाव विभोर, धर्मवीर, दैनिक हिन्दुस्तान, स्मारिका :—मुरादाबाद बर्तन सप्लायर्स एसोसियेशन, संस्कार दीपिका, मुरादाबाद।

सम्पर्क : राजोगली, मुरादाबाद

विशेष

ऋषि के शिष्य महात्मा नारायण स्वामी जी के अनुयायी पंडित गोपी नाथ जी ने श्री भूषण शरण जी को आर्य समाज में प्रवेश कराया था। फलतः लाला भूषण शरण जी के पुत्र श्री बृजनाथ ने सम्वत् १९९० में दैनिक कर्म पद्धति के सम्पादन से आर्य समाज मुरादाबाद में रचनात्मक योगदान कर आर्य साहित्य का प्रकाशन सम्पादन प्रारम्भ किया। इस क्रम में लाला जी के शेष तीन पुत्रों स्व० श्री विश्वनाथ, श्री वीरेन्द्र नाथ गुप्तः एवं श्री राजेन्द्र नाथ को प्रेरणा मिली। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी द्वारा आर्य समाज को केन्द्र में रख कर सतत किया जा रहा लेखन, सम्पादन, प्रकाशन उसी का परिणाम है। भविष्य में श्री राजेन्द्र नाथ के पुत्र श्री विजय कुमार भी एक अध्ययन शील एवं साहित्यिक रुचि के आर्य सभासद हैं। (सम्पादक)

शत्–शत् अभिनन्दन



सुकुमार

यह योग–सुयोग अभिवन्दन का,
मन में एक गर्व जगाता है।
नन्हीं कोमल किरणों को प्रभु
जब ज्योतित प्रखर बनाता है।

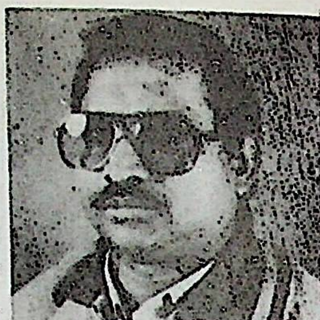
छँट जाता है तब अकस्मात,
अज्ञान भरा तन घनीभूत।
यह देख–देख विधि का कौतुक,
मन हो जाता है अभिभूत पूत।

किस तरह सतत् साधना युक्त,
है वेद मयी जीवन–धारा।
वीरेन्द्र गुप्तः जलती मशाल,
वेदों पर है जीवन वारा।

हो शत्–शत् उनका अभिनन्दन,
वह हों शतायु प्रभु से वन्दन।
हो अन्त समय तक जीवन में,
वैदिक गरिमा का अभिवर्द्धन।

२०३, लाजपत नगर,
मुरादाबाद

नाम केवल व्यक्ति का परिचय नहीं होता


डा० अजय अनुपम

समय की गति पर किसी मनुष्य का नियन्त्रण नहीं होता किन्तु घटनाओं को स्मृति में सुरक्षित रखकर उन्हें सदा के लिये प्रेरक बनाया जा सकता है, उन्हें हम संस्मरण कह देते हैं। कुछ संस्मरण अमिट के साथ अमूल्य भी होते हैं। ऐसे ही एक अवसर की मुझे याद आ रही है–जब मुरादाबाद के पाक्षिक पत्र 'प्रदेश पत्रिका' के स्वामी एवं प्रकाशक श्रीयुत राजनारायण मेहरोत्रा जी के स्टेशन रोड स्थित आवास पर १९७८ ई० में शरद पूर्णिमा की रात्रि में एक काव्य सभा का आयोजन हुआ था। साहित्यिक संस्था 'ज्योत्स्ना' द्वारा आयोजित शरदोत्सव रात्रि लगभग नौ बजे प्रारम्भ हुआ। मैं भी एक कवि के नाते इस आयोजन में आमन्त्रित था। वहां एक साहित्यकार से मेरा प्रथम परिचय हुआ और केवल नमस्कार का आदान प्रदान ही हुआ।

कविता–पाठ के क्रम में मैंने अपना मुक्तक और गीत प्रस्तुत किये। उस समय मैंने एक मुक्तक पढ़ा जो इस प्रकार था–

"धरती के युग क्रम में चुभ न शूल जाय।
पत्र शाख उपक्रम में खो न मूल जाय।
झुर्रियां सफेदी तो याददाश्त हैं,
उम्र का चढ़ाव आदमी न भूल जाय।"

रचनाएं पढ़ते समय नए परिचित साहित्यकार अग्रज बन्धु द्वारा की गई प्रशंसा में सौम्यता व शालीनता दोनों का पुट था। एक अन्य कवि बन्धु श्री शंकर दत्त पाण्डेय जी ने भी इस विशिष्टिता का स्पष्ट अनुभव किया था। रचना पाठ के बाद मैं यथा पूर्व अपने स्थान पर बैठ गया। नए परिचित साहित्यकार महोदय ने काव्य पाठ नहीं किया तो पता लगा कि वे गद्य–साहित्य के रचनाकार हैं। रात्रि में पूर्ण चन्द्र की ज्योत्स्ना के प्रसारित हो जाने पर कवि सभा सम्पन्न हुई। प्रसाद वितरण के बाद घर लौटते समय हम लोग स्टेशन रोड स्थित महाराज नारायण कोठी से एक साथ ही वापिस चले थे। तब मैंने ध्यान पूर्वक देखा कि वह जिनका नाम श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी कागज व्यवसायी हैं–अत्यन्त सरल हैं। देखने में धुले, प्रेस किये हुए साधारण वस्त्र धोती, कुर्ता, टोपी और जवाहर कट पहने हुए, पांव में कपड़े के जूते, लम्बा चेहरा, उन्नत ललाट, उठी हुई नासिका, काजल युक्त आयत नेत्र, दन्त पंक्ति सामान्य से कुछ अलग प्रकार की छोटी और पतली मूंछे और दाड़ी सफाचट। बोलचाल में स्पष्ट उच्चारण, शब्दों पर पकड़ के साथ संतुलन का भाव जुड़ा हुआ था।

इस प्रथम मिलन ने ही बता दिया था कि हम एक ही पन्थ के ऐसे सहयात्री हैं। इस सहयात्रा में कुछ विशेष दिखाई देने या बनने का प्रयत्न करने की आवश्यकता

नहीं होगी। यदि कुछ भी आवश्यक या अनिवार्य हुआ तो केवल हृदय की शुद्धता जनित आन्तरिक स्नेह और निष्कपट अनुराग ठीक विस्तृत दिगन्तों तक एक समान फैली हुई पूर्ण चन्द्र की चांदनी की तरह निर्भय, निष्कलंक अनुराग। रचनाओं के सम्बन्ध में उन्होंने कुछ कहा सुना और फिर मैंने उन्हें आदर पूर्वक नमस्ते की। वे मुझ से लगभग २० वर्ष आयु में बड़े हैं, अतः ससम्मान प्रणाम करके मैने बिदा ली। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी से यह मेरी प्रथम भेंट थी।

इसके बाद तो आज तक यह पता ही नहीं चला कि यह लगभग १६ वर्ष का समय कब बीत गया। इस मध्य साहित्यिक गोष्ठियों, सभाओं, आर्य समाज द्वारा आयोजित कार्यक्रमों तथा अनेक पुस्तकों के लोकार्पण के आयोजनों में उनसे भेंट हुई है, उनकी दुकान पर भी अब तो अनेकानेक बार जाना होता ही है। उनकी सरलता भरी मुस्कान वही है जो प्रथम दर्शन के समय थी। उनके स्वभाव का विशेष गुण संकोच शीलता है। वे अपने बारे में कोई चर्चा नहीं करते, हां दूसरों से उनके दुःख सुख की अथवा अन्य किसी के दुःख–सुख की जानकारी अवश्य प्राप्त करते हैं। अपने निजी व्यक्तिगत दुःख, सुख स्थिति या समस्या के बारे में पूछने पर भी हंसकर टाल देना उनका स्वभाव है। संभवतः विद्वानों का यह विशिष्ट लक्षण होता है, मुझे इस सन्दर्भ में याद आ रहा है मुरादाबाद नगर के ख्यातिलब्ध दार्शनिक, ज्योतिषी, कवि, वितीन दर्शन के उद्गाता स्व० श्री अम्बालाल नागर की जिनके पास मैं लगभग २२ वर्ष तक उठता बैठता रहा परन्तु उनके भीतर का कष्ट मैंने न बहता हुआ देखा, न शब्दों में गूंजता हुआ सुना। पति– पत्नी दोनों ही समाज का दुःख तो बांट कर दुखी मन का बोझ हलका करना चाहते रहे परन्तु अपने भीतर का दुःख कभी प्रगट भी न होने दिया। यही बात श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी में पाता हूं। उनका स्तर मेरे मन में कहीं बहुत उच्च होकर अत्यन्त समादरणीय का हो जाता है। एक बार जब मैंने उनसे पूछा कि "आपके संस्थान के नाम में 'अश्विनी कुमार' प्रकाशन मन्दिर क्यों है?" तब उन्होंने अपने एक मात्र पुत्र के काल कवलित होने की बात बताई थी। सम्प्रति उनकी एक मात्र सन्तति आयुष्मति इन्दिरा गुप्ता एम०ए० (हिन्दी) जो नगर के प्रसिद्ध व्यवसाई स्वर्गीय श्री भूखन सरन जी के सुपुत्र श्री वीरकान्त जी एम०एस०सी०, बी०एड, स्वामी ललित मेडिकल स्टोर मुरादाबाद की विवाहिता हैं।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी सरल हैं, उदार हैं और जिसे स्नेह करते हैं मन से करते हैं। जिस पर अपना अधिकार समझते हैं उसे पूर्ण रूप से अपना मानते हैं। यह बात मैं तब ठीक से जान पाया जब २६ जनवरी, १९९४ को उनके मौलिक कहानी संग्रह 'आनुषक्' का विमोचन कराने का कार्यक्रम निश्चित हो रहा था। गुप्तः जी ने मुझे बुलाकर इस अधिकार भाव से कार्य सौंप दिया कि मुझे सहसा अपने पर विश्वास नहीं हुआ। २६ जनवरी, १९९४ को जब आर्य समाज, गंज, स्टेशन रोड, मुरादाबाद के शहीद भवन के हाल में कार्यक्रम सम्पन्न हुआ तो सब यह जान रहे थे कि इतने विस्तृत विचार और व्यक्तित्व के धनी यह वीरेन्द्र गुप्तः जी कितने सुपरिचित हैं, लोकप्रिय हैं क्योंकि उस आयोजन में नगर की अनेक सामाजिक, व्यापारिक, धार्मिक व साहित्यिक संस्थओं के प्रतिनिधि उपस्थित थे। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के छोटे भाई श्री राजेन्द्र नाथ गुप्तः भी

सामाजिक कार्यों में तन–मन–धन से संलग्न रहते हैं। श्री राजेन्द्र नाथ जी के पुत्र श्री विजय कुमार गुप्तः भी साहित्यिक रुचि के व्यक्ति हैं, वे शौकिया पत्रकार भी हैं। परिवार में स्वाध्याय और साहित्यिक रुचि का वातावरण संभवतः श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के विचारों का ही सुपरिणाम है।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के सन्दर्भ में विचार करने पर कुछ बिन्दु उभर कर आते हैं जो उनके चरित्र का मर्म उद्घटित करते हैं, यदि उन बिन्दुओं के सहारे व्यक्तित्व की रेखाएं मिलाई जायें तो एक ऐसा चित्र उभर कर सामने आता है जो निश्चय ही अद्वितीय है।

वेद पथ के पथिक :– श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी वैदिक ज्ञान के साधक हैं। आजीविका के लिये पूज्य पिता जी से उत्तराधिकार में मिले व्यवसाय में पूरी तन्मयता से लगे रहते हुए भी वे दैनिक जीवन के आवश्यकीय कार्य के रूप में संहिताओं का स्वाध्याय, चिन्तन एवं मनन करते रहते हैं। दुकान पर ही वे लेखन कार्य में भी व्यस्त रहते हैं। 'कामायनी' के प्रणेता महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' जी अपने व्यवसाय में व्यस्त रहते समय भी काव्य रचना किया करते थे। यहाँ तक कि अपने बही खाते के पन्नों पर ही कविता लिख लिया करते थे। कैसा विलक्षण संयोग है कि वीरेन्द्र जी भी बही खाते बेचते हुए ही वैदिक सिन्धु का अवगाहन करते रहते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि पूज्य 'प्रसाद' जी गंगा के किनारे बसी काशी नगरी में साहित्य–साधना करते थे और श्रीयुत् वीरेन्द्र गुप्तः जी परशुराम–गंगा के तीर पर बसी मुरादाबाद नामक पीतल नगरी में साहित्य–साधना करते हैं।

योग–साधकः– श्री गुप्तः जी का कार्य विशिष्ट येण साधना है। एक साथ कई कार्य करना और उनमें भी लेखन जैसा काम निर्बंध रूप से करना सरल नहीं है। प्रायः मैं उनकी दुकान पर स्वयं यह द्रश्य देखता रहता हूँ कि वे लेखन में व्यस्त होते हैं, ग्राहक आ जाता है तो उससे व्यावसायिक लेन–देन, वार्तालाप आदि करते हैं और फिर पूर्ववत लेखन में संलग्न हो जाते हैं। जैसे कुछ हुआ ही नहीं। भारी कोलाहल में व्यापार करना तो अलग बात है पर व्यवधान के रहते हुए भी लेखन कार्य को निरन्तर बनाए रखना गहन मनोयोग का ही उदाहरण माना जायेगा।

दृढ़ संकल्प के धनीः– श्री गुप्तः जी दृढ़ संकल्प के धनी हैं। कोई भी व्रत लेकर निर्वाह करना अत्यन्त दुष्कर होता है। किन्तु जैसे जीवन के लिए श्वांस लेना और चलने के लिए पाँव का उठाना अपरिहार्य रूप से अनिवार्य होता है उसी प्रकार श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी अपने संकल्पों का निर्वाह करते हैं। १९४७ में स्वाधीनता आन्दोलन के सफल हो जाने के समय जब देश में नया दौर प्रारम्भ हो रहा था तब उन्होंने हिन्दू जाति एवं धर्म को छोड़कर जाने वालों को पुनः धर्म में वापस लाने का संकल्प लिया था। इससे पूर्व १९१५–१९२५ के दशक में मुरादाबाद के ही पंड़ित गोपी नाथ जी यह कार्य कर रहे थे। इस समय श्री वीरेन्द्र जी ने आर्य समाज के कार्य कर्ता के रूप में 'यज्ञ प्रचार समिति' की स्थापना १९४८ में की थी, उसमें श्री बाबूराम दाल वाले, श्री राम चन्द्र, श्री शम्भू नाथ एवं श्री धनीराम के साथ मिलकर वीरेन्द्र जी ने धर्म परिवर्तन करने वाले

१३ सौ परिवारों को पुनः अपने मूल धर्म में वापस लौटाने में सफलता प्राप्त की। इतना ही नहीं उन्होंने उन लोगों को यज्ञोपवीत धारण कराकर तथा यज्ञ सम्पन्न कराकर हिन्दू समाज में पुनः उनका स्थान भी प्राप्त कराया। १६४८ में ही गुप्तः जी ने चमड़ा प्रयोग में न लाने की शपथ ली थी, उसी समय हिन्दी का प्रयोग करने के लिए किसी संस्था द्वारा शपथ पत्र भरवाए गये थे। वीरेन्द्र जी ने वह शपथ पत्र भरा था। तब से अब तक वे दोनों ही वचनों का विधिवत निर्वाह कर रहे हैं।

सदाचारीः— श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी सदाचारी व्यक्ति हैं। वर्तमान समाज जिन दुर्व्यसनों से ग्रसित एवं त्रस्त है, वीरेन्द्र जी उनसे बहुत दूर हैं। उनकी सदाचारिता व कर्त्तव्य निष्ठा के बारे में आर्य समाज मुरादाबाद की आर्य कुमार सभा के १६३७–३८ में उपमन्त्री रहे साहू जगदीश शरण अग्रवाल मिर्च वाले जो गुप्तः जी को पिछले लगभग पचास वर्ष से जानते हैं ने बताया कि "आज तक कभी भी गुप्तः जी किसी भी प्रकार के दुर्व्यसन के शिकार नहीं हुए, साथ में आज तक किसी भी ग्राहक से अनुचित रूप से पैसा लेने की इच्छा नहीं रखी और न ही संस्था के धन का हरण करने की कामना की और सदैव शुद्ध आय पर ही संतोष रखा। उनका एक ही व्यसन था। पहले 'आर्य समाज के द्वारा वेद का प्रचार' और अब वही 'वैदिक ज्ञान का प्रचार' साहित्य के द्वारा कर रहे हैं।" रामचरित मानस में तुलसीदास जी ने ठीक ही कहा है– "जे आचरहिं ते नर न घनेरे" वीरेन्द्र जी जैसे निश्चय ही संख्या में बहुत कम होंगे।

मितभाषीः— गुप्तः जी मितभाषी हैं। ग्राहक से भी बहुत कम शब्दों में काम चलाना चाहते हैं। उनकी दुकान पर बिकने वाली सामग्री के दाम निश्चित होते हैं। कोई मोलभाव करता है तो वे माल नहीं बेचते। कोई ग्राहक पैसा कम देना चाहता है तो वे कम नहीं लेते, किसी ग्राहक का पैसा अतिरिक्त रखते भी नहीं। ऐसी दशा में अतिरिक्त लाभ का तो प्रश्न ही नहीं उठता। हाँ ग्राहक की अतिरिक्त वाचालता या नियम विरुद्धता के कारण कभी–कभी गुप्तः जी के शब्दों में झुंझलाहट या कड़वाहट अवश्य उतर आती है। भले ही ग्राहक वापिस चला जाय, परन्तु ठीक बात ही कहना और सुनना उन्हें प्रिय है। गलत बात न करेंगे न दूसरे से सुनेंगे। मित्रों साहित्यकारों से मिलने में भी स्तरहीन या अनावश्यक वार्तालाप का भी कोई अवसर वे उपस्थित नहीं होने देते।

समयपालकः— गुप्तः जी की सफलता का रहस्य उनके समय पालन में निहित है। व्यवसाय भी उनके लिये यज्ञ है, और यज्ञ में समय व नियम दोनों ही अपरिहार्य होते हैं। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के एक मित्र साहू मुहल्ला निवासी ७८ वर्षीय लाला ओम प्रकाश जी अग्रवाल (प्रतिष्ठान लालमन दास ओम प्रकाश बर्तन वाले) जो स्वयं गत आधी शताब्दी से अधिक समय से नियत समय पर प्रातः ४ बजे से प्रभात फेरी लगाने और सांयकाल सन्ध्या–अर्चना का नियत समय से पालन करने के लिए इस क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं–वे यह बताते हैं कि वीरेन्द्र जी का तो जीवन ही यज्ञ है। निश्चित समय पर दुकान खोलना, दोपहर को भोजनादि के लिए जाना व रात्रि काल निश्चित समय दुकान बन्द करना प्रायः घड़ी की सुई के साथ–साथ चलता है।

लोकहिताय समर्पितः— श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के बारे में यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण

है कि वह लोकहित के कारण ही साहित्य सेवा में रत हैं। किसी प्रकार का कोई स्वार्थ इसमें निहित नहीं है। वैद्य श्री बुद्धा सिंह जी के प्रश्न "उत्तम सन्तान का जन्म कैसे हो" से उनके मन की वह जिज्ञासा तीव्रता से सक्रिय हो गई थी, जो 'नारी दर्पण' पुस्तिका में 'आज भी श्री कृष्ण, भीष्म, अर्जुन एवं द्रोणाचार्य जैसी सन्तान जन्म ले सकती है?' पढ़कर उसका उपाय जानना चाहती थी। इसी का परिणाम था 'इच्छानुसार सन्तान' पुस्तक का प्रणयन। इसके बाद राष्ट्रीय सामाजिक व अन्य समस्याओं के निदान हेतु, 'पुत्र प्राप्ति का साधन', 'गर्भावस्था की उपासना', 'सीमित परिवार' पुस्तकें लिखीं गईं। सब का लक्ष्य अन्ततः भारत राष्ट्र की उन्नति ही रहा। व्यक्तिगत यश या कीर्ति या अर्थ लाभ का इसमें कोई विचार कभी नहीं रहा। हाँ, अपनी ही सम्पत्ति का व्यय इसका साधन बना हुआ है।

अन्त में श्री गुप्तः जी की कुछ पुस्तकों के बारे में दो एक वाक्य कहना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। 'अदीनास्याम' के द्वारा गुप्तः जी राष्ट्र के हर नागरिक के हृदय से दीनता दूर करके सबल नागरिक का निर्माण करना चाहते हैं। 'संस्कार' के द्वारा नागरिकों में पशुओं से भिन्नता प्रदर्शित करने वाला विवेक जागृत करना उनका लक्ष्य प्रतीत होता है। 'मनुर्भव' पुस्तक में उन्होंने इस सत्य को स्पष्ट किया है कि विवेकवान द्वारा अनीति का आचरण अत्यन्त कष्टप्रद होता है। वर्तमान समाज और राजनीति में आज ऐसे अनेक उदाहरण द्रष्टिगत हो रहे हैं। जहाँ विवेक अनीति के पक्ष में खड़ा हो और राष्ट्र को पतन की ओर धकेल रहा हो इस चिन्ता के निवारण के लिए 'मनुर्भव' अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। १९६३ ई० में प्रकाशित पुस्तक जिसका नाम 'नव–सम्वत्सर' है उसके द्वारा भारतीय काल गणना की वैज्ञानिकता को सरल शब्दों में समझाते हुए राष्ट्रवाद की चेतना को नव स्फुरण देने का स्तुत्य प्रयास गुप्तः जी ने किया है। 'वेद–दर्शन' तो ऐसा ग्रन्थ है जिसके द्वारा गुप्तः जी ने वेद का सार सरल भाषा में जन सामान्य के लिये प्रस्तुत किया है।

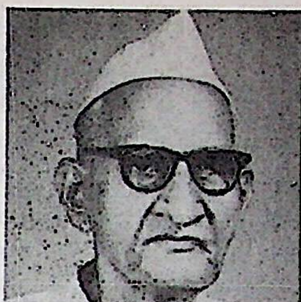
अपनी सभी कृतियों के द्वारा श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने समाज को शिक्षित करने का गुरुतर कार्य किया है, निश्चय ही वे गुरु तुल्य हैं। परिवार में गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए भी वे ज्ञान साधना में संलग्न रहते हैं। इस नाते वे पूर्व कालीन ऋषि कोटि के लिये अधिकारी विद्वान माने जाएंगे। मैं निष्ठा पूर्वक कह सकता हूं कि अपनी ऋजुता के कारण भी वे ऋषि हैं, ज्ञान पिपासा के कारण भी वे ऋषि हैं और मानव मात्र के लिये वे स्वंय प्रकाश की किरण के समान हैं। अतः गुण तथा कर्म की उपयोगिता के कारण वे शब्दशः ऋषि हैं। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का अभिननदन करना, तथा अभिनन्दन ग्रन्थ का प्रकाशन करना–इन कार्यों से विद्वत् समुदाय के साथ समस्त मुरादाबाद नगरी को गौरव प्राप्त होगा।

पास या दूर से देखकर या सुनकर श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी को जानना अत्यन्त कठिन है, उनके व्यक्तित्व के सम्बन्ध में मुझे अपना ही एक मुक्तक स्मरण हो रहा है।

रूप से विश्वास का समुदय नहीं होता।
दूर केवल शब्द से संशय नहीं होता।

क्रमशः पृष्ठ ३८

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
श्री वीरेन्द्र गुप्तः के व्यक्तित्व एवं कृतित्व
के अभिनन्दन के सु–अवसर पर



भगवत सहाय शर्मा
आचार्य

देव–त्रयी

ओऽम्। स्वस्ति पन्था मनु चरेम सूर्या चन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सङ्.मेमहि।।

वैदिक एवं लौकिक दोनों प्रकार के संस्कृत वाङ्.मय में त्रित्व संख्या का बड़ा व्यापक स्थान है। सर्व प्रथम वेदत्रयी (ज्ञान–कर्म–उपासना रूप काण्ड त्रय की दृष्टि से) को लीजिये, जिससे स्व–समाज तथा राष्ट्रोत्थान के सभी उपाय निर्दिष्ट हैं। २–वेद त्रयी के बाद गुणात्रयी को लेते हैं, ये तीन गुण हैं–सत्व–रजस्–तमस्। सांख्य दर्शन के अनुसार इन तीनों गुणों की साम्यावस्था को प्रकृति कहा है, उसी से जगत् उत्पत्ति की प्रक्रिया का प्रारम्भ होता है। ३–आगे हम दुःखत्रयी को लेते हैं, जिनके अभिघात से जीवात्मा आक्रान्त रहता है तथा उनसे मुक्ति पाने के लिये उपाय जानना चाहता है, वे तीन दुःख हैं आधिदैविक आधिभौतिक तथा आधिदैहिक। सन्त गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी कहा है 'दैविक–दैहिक–भौतिक तापा, राम राज्य काहू नहीं व्यापा।' ४–तदन्तर काल को लीजिये, जिसे न्याय दर्शन ने जन्य वस्तुओं का जनक तथा जगत् आश्रय माना है, 'जन्या नां जनकः कालो जगतामाश्रयो मतः।' इस काल को भी तीन भागों में विभक्त किया है–भूत, वर्तमान तथा भविष्यत्। यद्यपि मनुष्य का समस्त कार्यक्रम वर्तमान पर आधारित रहता है, फिर भी मनुष्य भूत से प्रेरणा लेता है तथा वर्तमान के अनुभव से भविष्यत् की योजना बनाता है। ५–अब हम तीन ऋणों को लेते हैं–ऋषि ऋण, देव ऋण तथा पितृ ऋण। इनमें स्वाध्याय के द्वारा ऋषि ऋण से, यज्ञादि वैदिक अनुष्ठान के द्वारा देव ऋण से तथा पुत्रोत्पत्ति के द्वारा पितृ ऋण से मुक्ति मिलती है। इन तीनों से मुक्ति पाकर ही मोक्ष में मन लगाना चाहिये। 'ऋणानित्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्' मानव मात्र का 'धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष', रूप चारों पदार्थों की प्राप्ति जीवन का लक्ष्य होना चाहिये।

अब हम उस त्रित्व पर आते हैं. जो हमारा विवेचन का मुख्य विषय है देवत्रयी (तीन देव)।

(मातृ देवोभव, पितृ देवोभव, आचार्य देवोभव) माता को देव मानो, पिता को देव मानों, आचार्य को देव मानों।

यतः 'मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान पुरूषो वेद' यहां तीनों शब्दों से मलुप् प्रत्यय प्रशस्त अर्थ में है। अतः यह अर्थ हुआ = अच्छी माता वाला, अच्छे पिता वाला तथा अच्छे आचार्य वाला पुरुष विद्वान बनता है। इन तीनों पदों में माता को प्रथम स्थान दिया है। क्योंकि वह गौरव की दृष्टि से सर्वोपरि स्थान रखती है। जैसा कि मनु महाराज ने कहा है–

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याण शतं पिता।
सहस्रं तु माता पितृन् गौरवेणातिरिच्यते।।

बालक के निर्माण में माता का सर्वप्रथम स्थान है, माता गर्भ में रक्त के द्वारा तथा जन्म देने के पश्चात स्तन पान द्वारा बालक में जो सत्य संस्कार आरोपित करती है उनका बालक के जीवन में अमिट प्रभाव रहता है इतिहास ऐसे अनेक उदाहरण देता है कि बालक किस प्रकार माता की शिक्षा से गणमान्य मानव बना है तथा सामान्यातीत प्रगति एवं उन्नति प्राप्त की। छत्रपति शिवाजी अपने उत्थान में अपनी माता जीजाबाई को श्रेय देते थे। इस प्रकार और भी अनेक उदाहरण हैं। माता की महिमा में जितना भी कहा जाये, कम ही रहेगा। वस्तुतः 'माता की शिशु को देन' यह विषय तो निबन्ध ा रूप में स्वतन्त्र रूप से विवेच्य है। माता के पश्चात् शिशु के निर्माण में पिता का स्थान आता है। वेद का कहना है 'आत्मा वैपुत्रतामासि' पुत्र आत्मज ही नहीं, पिता की आत्मा माना जाता है। अतः पिता के सभी संस्कारों और गुणों का अधिकारी बन जाता है। बालक, जीवन में संबल बनने वाली व्यावसायिक शिक्षा को पिता से ही ग्रहण करता है। माता–पिता बालक के जन्म के विषय में जो कष्ट उठाते हैं उसका बदला सैकड़ों वर्षों में भी बालक से नहीं चुकाया जा सकता।

यं माता–पितरौ क्लेश सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्यां कर्तुवर्षशतैरपि।।

अब बालक के निर्माण में तीसरा स्थान आचार्य का आता है। बालक आचार्य का अन्तेवासी बनकर जो ग्रहण करता है, उससे देश, जाति तथा धर्म का उद्धार करता है। ऐसे महापुरुषों में स्वामी दयानन्द अग्रगण्य हैं, वे वे स्वामी विरजानन्द की देन थे। इसी प्रकार स्वतन्त्रता प्राप्ति में छत्रपति शिवाजी समर्थ गुरु रामदास की देन थे। अतः–

मानवेन सदाध्येया पितरौ व गुरोर्गिरः।
एतज्जीवन पाथेयं दुर्गेभ्यस्तरणोतरी।।

मन्तव्य की माता–पिता तथा गुरु की वाणी का सदाध्यान रखना चाहिये। ये जीवन के लिये पाथेय हैं तथा कष्टों से पार होने के लिय नाव है।

अब हम श्री वीरेन्द्र गुप्तः के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की चर्चा करेंगे, जो अभिनन्दन का विषय है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने 'वैदिक धर्म' को प्रतिष्ठित करने के लिये आर्य समाज की स्थापना की। कई आर्य समाजों की आधार शिला उन्होंने स्वयं अपने पावन करों से रखी उनमें आर्य समाज, मण्डी बांस, मुरादाबाद भी एक है। श्री गुप्तः जी ने एक लम्बे समय तक इस समाज की ठोस सेवा की। आर्य समाज का शताब्दी समारोह आपके मन्त्रिकाल में ही मनाया गया। महर्षि ने आर्य समाज की स्थापना कर उस के दस नियम बनाये जिनमें विश्व कल्याणकारी भावना स्पष्ट रूप में परिलक्षित होती है देखिये 'छठा नियम'। व्यक्तित्व के निर्माण में तीन मुख्य आधार हैं, माता–पिता से प्राप्त सत् संस्कार, स्वाध्याय और विद्वज्जन सेवा। गुप्तः जी के पैतृक संस्कार उनके लिये अमोघ वरदान सिद्ध हुए। आपके पूज्य पिता जी एक धर्म निष्ठ एवं समाज सेवी व्यक्ति

थे, जो 'पत्र—वणिक' के नाम से प्रसिद्ध थे। गुप्तः जी अभी तक उसी व्यवसाय को अपनाये हुए हैं। संस्कार वश आपकी वैदिक स्वाध्याय में रुचि जागी। जिसे प्रतिफलित करने के लिये आपने लिखना प्रारम्भ किया। आपके प्रकाशन जनता के सामने आये। उनसे आर्य जगत में अच्छा प्रचार हुआ। आपके प्रतिनिधि ग्रन्थ 'इच्छानुसार सन्तानोत्पत्ति' जो आज इच्छानुसार सन्तान के नाम से जानी जाती है, को विज्ञजनों ने बड़ा आदर दिया। विद्या वयोवृद्ध श्री पं० गोपी नाथ जी के निर्देशन पर इसकी भूमिका आपने मुझ से लिखवायी। आगे चल कर प्रायः सभी ग्रन्थों एवं पुस्तकों की भूमिका मुझ से लिखवाते रहे। आपका 'वेद—दर्शन' ग्रन्थ आपके गहन वेदाध्ययन का परिचय देता है। आपकी 'नींव के पत्थर' नामक पुस्तक तो अत्यन्त जन प्रिय सिद्ध हुई। इसमें आपका इतिहास का गूढ़ अध्ययन परिलक्षित होता है इसी प्रकार आपके सभी ग्रन्थ अपनी अपनी छटा लेकर सामने आये। हमारे यहाँ प्राचीन काल से ही स्वाध्याय पर विशेष बल दिया जाता है समावर्तन संस्कार 'दीक्षान्त समारोह' के समय आचार्य ने अन्य उपदेशों के साथ 'स्वाध्यायान्माप्रमदः' कहकर स्वाध्याय पर विशेष बल दिया है।

इसका श्री गुप्तः जी ने पूरा पालन किया, और एक 'योग परिणति' ग्रन्थ की रचना की, उसकी भूमिका भी मैंने लिखी है, वह अभी प्रकाशित नहीं हो पाया सम्भवतः शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है, इसमें गुप्तः जी ने बहुत से अछूते प्रश्नों को छुआ है, जैसे आत्मा का स्वरूप, गुण—दोष, आत्मा का स्वभाव, कर्मक—अकर्मकता, परमात्मा का स्वरूप, ईश और जीव एक नहीं, सूक्ष्म शरीर नहीं, मुक्ति से पुनरागमन, मुक्ति की अवधि आदि विषयों को बड़े तार्किक रूप से प्रस्तुत किया है। इस ग्रन्थ की रचना से यह स्पष्ट होता है कि गुप्तः जी एक योगिक व्यक्ति हैं, केवल पठनीय नहीं, स्वयं साधक है और औरों को योग में दीक्षित भी किया है जो अन्यत्र स्थानों पर योग का अभ्यास कराते हैं।

व्यक्तित्व के निर्माण का तीसरा आधार है विद्वज्जन सेवा—इस में गुप्तः जी की विशेष अभिरुचि रही। समय—समय पर अनेक विद्वानों से आपका सम्पर्क बना रहा विशेष कर श्रद्धेय पं० गोपी नाथ जी से। पण्डित जी का वेदों का अध्ययन अच्छा था, वही आपने शिष्य के रूप में उनसे ग्रहण किया।

मैं आवश्यक समझ कर माननीय डा० राधा कृष्णन् की, महाभारत विषयक सम्मति अवश्य प्रस्तुत करना चाहूंगा।

"महाभारत कूटनीति का ग्रन्थ है, उसमें युद्ध की विभीषिकाओं को देखकर प्रायः दम घुटने लगता है, पर महाभारत में पद—पद पर यह ध्वनित (अभिव्यक्त) होता है कि बिना धर्म के राज्य टिक नहीं सकता। किन्तु हमारा राष्ट्र 'धर्म निरपेक्ष' घोषित है। जब हमारे संविधान निर्माताओं ने अंग्रेजी के 'सैक्यूलर' शब्द का हिन्दी अनुवाद किया तब इस पर काफी विवाद रहा, अब भी विवेकशील मनीषी इस पर अपने विचार व्यक्त करते रहते हैं।"

मेरे इस लेख के दो भाग हैं पूर्व भाग में मैंने 'देवत्रयी' का यथा मति विवेचन किया है, उत्तर भाग में श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डाला है। ईश्वर से प्रार्थना है कि गुप्तः जी का स्वाध्याय सत्र बराबर चलता रहे, लेखनी रुके

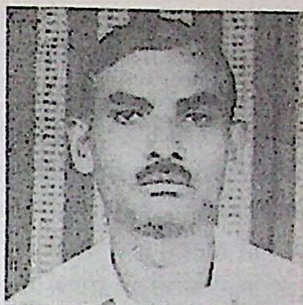
स्वाध्यायी,
श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी


डा० योगेन्द्र कुमार शास्त्री

श्री वीरेन्द्र जी से मेरा परिचय मुरादाबाद में बाँस मण्डी आर्य समाज के कार्यक्रम पर हुआ। उनकी बहुमुखी प्रतिभा में नम्रता, स्वाध्याय शीलता, कवित्व शक्ति, वेदाध्ययन, औषधि–विज्ञता, समाज सेवा, लेखक एवं प्रचारक के गुण समाहित हैं। उनके साहित्य में दस नियम, दैनिक पंच महायज्ञ एवं वेद–दर्शन सराहनीय हैं। वेद दर्शन अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है। इसमें चुने हुए उपयोगी विषयों से सम्बन्धित सूक्त संग्रहित हैं। वेद प्रेमी सरलता से स्वाध्याय और मनन कर सकते हैं। श्री वीरेन्द्र जी ने वेद दर्शन में वेद वेदांगों का परिचय तथा भाष्यकारों के नाम एवं संसार की दृष्टि में वेद, ये विषय जोड़कर स्वाध्याय प्रेमियों का बड़ा उपकार किया है। एक स्थान पर ही इतनी जानकारी हो जाती है। श्री वीरेन्द्र जी अन्य साधनों से भी वैदिक धर्म के प्रचार प्रसार में संलग्न रहते हैं। ओ३म् नाम तथा गायत्री मन्त्र को जन–जन तक पहुंचाने के लिये भी श्रेयस्कर प्रयास किये हैं। आपने विविध विषयों पर अब तक ३१ ग्रन्थ लिखे हैं। सम्पूर्ण साहित्य जीवनोपयोगी हैं। आप निष्काम भावना से यह कार्य कर रहे हैं। भविष्य में भी आप स्वस्थ रह कर साहित्य और समाज सेवा करते रहे तथा महर्षि दयानन्द का ऋण उतारने का प्रयास करते रहें, यही मेरी भगवान से प्रार्थना है। आपके सम्मान में एक स्मृति ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। मुझे इस समाचार से प्रसन्नता हुई। मेरी शुभ कामनाएं श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के साथ हैं।

एम०ए०, पी०एच०डी०
विद्या भास्कर, व्याकरण वाचस्पति,
साहित्य रत्न, सिद्धान्त शास्त्री
म०न० १३२–पुराना हस्पताल
जम्मू–१८०००१

वीरेन्द्र गुप्तः
व्यक्तित्व और कृतित्व


डा० सीताराम शर्मा बन्धु

व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। किसी के कृतित्व में उसका व्यक्तित्व परोक्ष रूप से समाविष्ट रहता है। व्यक्ति चाहे कितना भी यह प्रयास करे कि उसके कृतित्व से उसके व्यक्तित्व का बोध न हो, परन्तु बोध तो हो ही जाता है।

व्यक्तित्व में शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक एवं सामाजिक घटकों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है। इन्हीं घटकों अथवा तत्वों के आधार पर समीक्षक किसी की समीक्षा करने में न्याय कर सकता है।

कृतित्व किसी की मानसिक भावनाओं की सृष्टि का मूर्त रूप है। अदृश्य भावनाओं को जब कोई अनुभूति एवं परिस्थिति की चोट से दृश्याकार कलेवर प्रदान करता है तो वह कृति (रचना) उसका कृतित्व होती है। अपने जीवन में मनुष्य जो कुछ निर्माण करता है वह सब कुछ उसका कृतित्व ही होता है। इस कृतित्व में यदि साहित्य श्रेणी का कृतित्व हो तो वह व्यक्तित्व को अन्य कृतित्वों से अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित करता है। साहित्यिक अमरता अपने रचयिता को अमरत्व प्रदान कर देती है।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का व्यक्तित्व सरलता, सहजता, साधुता, सत्य निष्ठता एवं आर्यत्व के गुणों से युक्त है। महाकवि तुलसी के शब्द उनके प्रति पूर्ण रूपेण सटीक लगते हैं।

साधु चरित शुभ सरिस कपासू।
निरस विसद गुणमय फल जासू।।

अर्थात् सज्जन पुरुषों का चरित्र कपास के पुष्प के समान सरल एवम् आकर्षण हीन होता है परन्तु उसका गुण बड़ा विशद होता है, क्योंकि उसके बने कपड़े से हम सब का शरीर ढकता है।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का व्यवहार मृदु एवं स्वभाव सरल है। उनकी प्रकृति परोपकारी है। शारीरिक क्षीणता उनके अध्ययन का प्रतीक है। धोती, कुर्ता एवं टोपी भारतीयता, शुचिता एवम् स्वदेशीय संस्कृति–पोषकता का स्पष्ट प्रमाण है। उनका मस्तिष्क दर्शन प्रधान है। अतः वाह्य शुचिता से मुद्रित आपका व्यक्तित्व किसी को आकर्षित करने में सहज समर्थ है। व्यक्तित्व की इन्हीं सीमा रेखाओं से परिभाषित श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी अनेक सामाजिक संस्थाओं से जुड़े हैं। मुख्य रूप से आर्य समाज से। आर्य समाज का कार्य क्षेत्र व्यापक है। आर्य समाज के सभी क्षेत्रों में किये गये कार्य अपने आप में महत्वपूर्ण हैं, परन्तु चेतना जागृति का कार्य इन सभी कार्यों में अति महत्वपूर्ण है, क्योंकि चेतना का सम्बन्ध ज्ञान से है। ज्ञान ही मानव को अन्य जीवों से श्रेष्ठता प्रदान करता है।

जो व्यक्तित्व अपने साहित्य सृजन द्वारा यह कार्य करे वह निश्चित ही मानव मात्र का परोपकारी है।

आज विश्व के परिवर्तित परिवेश में भौतिकता की प्रतिष्ठा जन मानस में हुई है। सभी के पास भौतिकता के लिये समय है। आध्यात्मिकता के लिये नहीं। जिसके पास थोड़ा बहुत समय है भी तो वह साहित्य के विशाल सागर से भयभीत हो जाता है। ऐसी स्थिति में ज्ञान और धर्म के सार से भिज्ञ कराने का दायित्व चिन्तन शील लेखकों का ही होता है। जो लेखक अपने सारगर्भित लेखों से सुधी पाठकों की ज्ञान पिपासा को शान्त करने के प्रयास में रत हैं वास्तव में वे धन्यवाद के पात्र हैं।

धार्मिक दृष्टि से हमारे राष्ट्र में विपुल साहित्य का सृजन हुआ है। सम्पूर्ण साहित्य में गहरी पैठ कर कुछ उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करना श्रम साध्य एवं व्यय साध्य दोनों हैं। इस दृष्टि से श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने जो लघु एवं बृहद् पुस्तकें अपनी लेखनी से रची हैं वे उपयोगी एवं महत्वपूर्ण हैं। श्री गुप्तः जी ने विपुल वैदिक साहित्य में से विभिन्न वैचारिक सिद्धान्त रत्नों को निकाल कर धर्म पिपासुओं की तृषा शान्त की है। कहानी एवं संवाद शैली में लिखे गये आपके लेख लघु परन्तु बड़े प्रभावी हैं। जिस ज्ञान की बूँटी को छोटे–छोटे बच्चे नहीं ग्रहण करना चाहते, गुप्तः जी ने अपनी सरल सुबोध शैली से उनके लिये यह ज्ञान ग्राह्य बना दिया है। आनुषक् की अत्यन्त लघु कहानियाँ इस दृष्टि से बड़ी रोचक एवं सराहनीय हैं।

कुछ प्राचीन परम्परागत कृतियों को नवीन परिवेश में चित्रित कर गुप्तः जी ने धार्मिक न्याय प्रस्तुत कर अपनी साहित्यिक पैंठ का परिचय दिया है। इन कृतियों में 'पाणिग्रहण संस्कार विधि', 'बोध रात्रि', 'दैनिक पंच महायज्ञ', 'दस नियम', 'वेदांग परिचय' तथा 'संस्कार' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके कृतित्व में उनका व्यक्तित्व स्व मुखरित हुआ है। 'कर्म चर्चा', 'ज्ञान–कर्म–उपासना', 'निराकार' साकार के स्वरूप का दिग्दर्शन, गायत्री साधन, तथा 'नव सम्वत्' में उनके दार्शनिक स्वरूप के दर्शन होते हैं।

उपरोक्त कृतियों के अतिरिक्त भी गुप्तः जी की अनेक कृतियां प्रकाशित हैं। इन सभी कृतियों में वैदिक वाङ.मय की संक्षिप्त परन्तु सारगर्भित अभिव्यक्ति हुई है। आपका कृतित्व हर आयु के व्यक्ति के लिये उपयोगी है। वैदिक और गहन चिन्तन के विषय को भी आपने अपनी अनुभूति से इतना सरल कर दिया है कि अल्पायु के बच्चों को भी विषय बोधगम्य हो जाता है।

अन्ततः मैं यही कहूँगा कि श्री गुप्तः जी ने अपने कृतित्व में जीवन के वरेण्य गुणों को चरितार्थ किया है। उनका यह प्रयास स्तुत्य है। उनके जीवन की साध हम सबकी प्रेरक एवं पथ दर्शिका है। ऐसे समर्पित व्यक्तित्व के प्रति मैं सादर नमन करता हूँ। साथ ही ईश्वर से उनके दीर्घ आयुष्य की कामना करता हूँ।

इति अलम् विस्तरेण किम् ।

सम्पर्क : मण्डी चोब का चौराहा
अमरोहा–२४४२२१

स्मृति के झरोके से


डा० श्रीमती कौशल कुमारी

मेरे बालपन के अबोध मानस पर मुस्कान भरा मुखमण्डल, ज्ञान दीप्त परन्तु सौम्य आकृति एवं अत्यनत व्यस्त कर्मनिष्ठ जीवन शैली से पूर्ण जो व्यक्तित्व छवि अंकित है उसका नाम है श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी कागज वाले। मेरे पिता जी लाला ओमप्रकाश अग्रवाल के निकट मित्र के रूप में मैं उन्हें प्रायः नित्य ही देखती रहती हूँ। मेरे पिता जी एवं श्री वीरेन्द्र नाथ गुप्तः जी आर्यवीर दल के सहयोगी व सक्रिय कार्यकर्ता रहे हैं। मुझे याद है कि बचपन में पूर्वान्ह में अथवा सायंकाल जब मैं अपने पूज्य पिता जी की अंगुली थाम कर मन्दिर जाती थी या बाजार से कोई वस्तु लेने जाती थी अथवा निरुद्देश्य भ्रमणार्थ अपने पिता को बरबस ले जाती थी तो मण्डी चौक से होकर आना ही होता था और हर बार गुप्तः जी को कार्य व्यस्त देखती थी। वही छवि आज भी जीवन्त है।

बड़े होकर मैंने जाना कि वे अत्यन्त संयमी, मितभाषी और मिलन सार विद्वान् व्यक्ति हैं। जब यह जाना कि वे लेखक हैं तो आश्चर्य मिश्रित हर्ष का अनुभव किया। आश्चर्य इस कारण कि लेखक होना मेरी दृष्टि में कठिन कार्य था और हर्ष इस लिये कि मेरा उनसे आत्मीयता एवं अधिकार पूर्ण परिचय था। एक विद्वान् लेखक को चाचा जी कहकर सम्बोधन करने के पीछे कैसा सुख भाव रहता होगा इसे सहृदय बन्धु सहज ही अनुभंव कर सकते हैं।

मेरा विवाह इसी नगर में एक व्यवसायी परिवार में हुआ। विवाह के समय यह तो जानती थी कि मेरे पतिदेव डा० अजय अनुपम जी कवि हैं किन्तु श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी से उनका भी परिचय है यह मुझे ज्ञान नहीं था। कुछ काल बाद पति के मित्रों में श्री गुप्तः जी का नाम जान कर मुझे फिर सुखद आश्चर्य हुआ। १९७८ से १९८२ तक मैं सपरिवार अपने पति के नौकरी के केन्द्र ठाकुरद्वारा में निवास करती रही। उसके बाद १९८३ ई० के फरवरी माह में मुरादाबाद के गोकुलदास महाविद्यालय में संस्कृत प्रवक्ता के पद पर मेरी नियुक्ति हो जाने से मैं सपरिवार मुरादाबाद में रहने लगी, तब से नित्य प्रति सांयकाल साहू मुहल्ला स्थित मन्दिर माता अन्नपूर्णा में देव दर्शन हेतु जाने का नित्य कार्यक्रम बना हुआ है। इसी सान्ध्य भ्रमण में प्रायः मण्डी चौक स्थित श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी की दुकान की ओर जाना होता है। यदा–कदा वहां बैठे हुए विद्वानों से नमस्कार प्रणाम का भी सुअवसर मिलता है, साथ ही चाचा जी अर्थात् श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी की नव प्रकाशित पुस्तक का उपहार भी प्राप्त हो जाता है।

श्री गुप्तः जी की अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं, अब तक उनकी ३२ पुस्तकें आई हैं। इनमें नैतिक एवं चारित्रिक प्रभाव की दृष्टि से 'वेद दर्शन' तथा राष्ट्र निर्माण की दिशा में सहायक अनिवार्य विचारों एवं भावनाओं की वृद्धि करने के उद्देश्य से

'नींव के पत्थर' नामक पुस्तक ने मुझे सर्वाधिक प्रभावित किया है। ईश्वर से मैं प्रार्थना करती हूँ कि वे ऐसा ही साहित्य समाज को निरन्तर प्रदान करते रहें ताकि बचपन से मैंने जो असीम स्नेह एवं ज्ञान के अमृत बिन्दु श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के अल्पकालिक सान्निध्य में प्राप्त किये हैं तथा जो ज्ञान बाद के समय में उनसे मुझे मिलता रहा है, कभी उनके साहित्य से, तो कभी उनकी प्रत्यक्ष वाणी से, मेरी कामना है कि वैसा ही ज्ञान समस्त मानव समुदाय तक उनके लेखन, कार्य–कलाप एवं कीर्ति के द्वारा पहुँचता रहे।

मेरा यह निश्चित मत है कि भारत एवं विश्व का कल्याण तभी संभव है जब हम वैदिक ज्ञान का अनुशीलन करने में समर्थ होंगे। समाज के मध्यवर्गीय संस्कारों में इसके प्रचार प्रसार की अत्याधिक आवश्यकता है। यहाँ यह कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है कि यह कार्य करना सबके बस की बात नहीं है। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी निरन्तर वैदिक साहित्य में वर्तमान समय के लिये अनुकूल प्रसंगों, विवरणों व संदेशों की खोज में लगे रहते हैं तथा उक्त सम्पदा को जनकल्याण हेतु अपने व्यय पर निस्वार्थ भाव से समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। परमपिता परमात्मा से मेरी प्रार्थना है कि वे दीर्घकाल तक प्रभु की इच्छा से मानव समुदाय की सेवार्थ वैदिक ज्ञान का प्रचार–प्रसार करते रहने में समर्थ रहें और हम सब को उनकी कृपा का प्रसाद यथावत प्राप्त होता रहे। यही हमारा सुख है और यही हमारी प्रभु से प्रार्थना है।

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता
शतक्रतो व भूविथ।
अघाते सुमनभीमहे।।

ऋग्वेद ८/६८/११

एम०ए०,पी०एच०डी० (संस्कृत)
स्वर्ण पदक लब्ध
संगीत प्रभाकर एवं विशारद
प्रवक्ता संस्कृत
गोकुलदास गर्ल्स कालिज
मुरादाबाद

श्री वीरेन्द्र गुप्तः की

दयालुता पर मनोद्‌गार



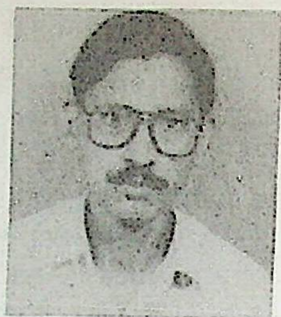
(स्व०) विश्व गुप्त

निश्चय ही तुम वीर पिता सम,
पालन करने वाले।
काले दिन पर देखे तुम कुछ
गिने चुने उजियाले।।
द्वेष जीत! तुम भाई, गुरु अरु
मित्र सभी के सच्चे।
सागर से गम्भीर, कभी मन,
से हो भावुक बच्चे।।
रहो जगत में सदा सर्वदा,
धर्म—दीप तुम बनकर।
मानवता को अमृत दो,
जीवन—मंथन विष पीकर।।
मुद्रा का मुद्रा से बदला,
हो सकता है, होगा।
मन का सबसे भारी बोझा,
कभी न हलका होगा।।
प्रेम—भार इतने हैं सिर पर,
कवि गिनने में अक्षम।
बदला देने हेतु, एक क्या,
कई जन्म भी हैं कम।।

मुरादाबाद निवासी कवि श्री विश्व गुप्त १९४० से १९४८ ई० के मध्य बम्बई में फिल्म निर्माण, संवाद पट्कथा एवं गीत लेखन के क्षेत्र में सिने जगत की प्रतिष्ठित हस्ती माने जाते थे।

(सम्पादक)

अग्रणी दिव्य पुरूष



सुक्खन सिंह

वर्ष १९८६ की बात है कि मेरे पिता जी की आरष्टी का दिन था। उस दिन मैंने स्वामी नरदेव आर्य ग्राम फ़र्रकपुर वालों को दोपहर २ बजे के लिए आमन्त्रित किया था। चूंकि वे एक अच्छे उपदेशक थे, इसलिये उनको विशेष रूप से बुलाया गया था, तब उन्होंने मध्यान्ह के समय मुझे पढ़ने के लिए 'धर्मनिर्णय' का प्रथम भाग दिया। उससे पहले भी वे हमारे यहां आते रहते थे, तो मेरे ऊपर आर्य समाज की छाप पहले से ही थी। इससे उनसे मेरे विचार मिलते थे। क्योंकि मैंने इससे पहले बहुत सी पुस्तकें धर्म विषय पर पढ़ी थीं। तब उन्होंने मुझे श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी की सेवाओं के बारे में बताया था कि यह 'धर्म निर्णय' पुस्तक जो प्रायः लुप्त हो गई थी उनके सौजन्य से ही प्रकाशित होती है। मैंने जब 'धर्म निर्णय' के प्रथम भाग को पढ़ा तो मेरे अन्दर ज्ञानाग्नि सी प्रदीप्त हो गई और मैं उन चारों भागों को पढ़ने के लिये व्याकुल हो गया। उसी वर्ष अमरोहा में आर्य समाज का वार्षिकोत्सव था तब स्वामी ओमानन्द जी हरियाणा गुरुकुल झज्जर वाले बहुत सा साहित्य लेकर आये थे, अचानक मेरी दृष्टि उनके साहित्य पर पड़ी तब मैंने 'धर्म निर्णय' के चारों भागों को देखा तब मैंने उन चारों भागों को खरीद लिया और खूब अच्छी तरह पढ़े। मेरा यह स्वभाव है कि मैं अपने उत्तम साहित्य को अपने मित्रों को पढ़ने की सलाह देता हूँ अतः मैंने अपने प्रिय साथी को 'धर्म निर्णय' प्रथम भाग पढ़ने को दिया जब मैंने उनसे वापिस लौटाने को कहा तो उसने कई बार कहने पर भी वापिस नहीं दिया तब मैंने जान लिया कि उस पवित्र ग्रन्थ को वापिस करने की नियत नहीं है। जब मैंने यह देखा कि यह पुस्तकें जिला मुरादाबाद में श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के यहाँ से प्रकाशित होती हैं तब मैंने उस प्रथम भाग की खोज प्रारम्भ कर दी। पहली बार में निराश हो गया और टक्कर मार कर अपने घर वापिस चला आया। अचानक मेरा स्थानान्तरण प्रथमा बैंक शाखा डयोढ़ी उर्फ़ हादीपुर से प्रमोशन होकर वरिष्ठ लिपिक पद के लिये शाखा बंगला गांव, मुरादाबाद को हो गया तब मुझे अति प्रसन्नता हुई। चूंकि शनिवार को बैंक से २ बजे छुट्टी हो जाती है तब मैंने पता नोट कर पूछता–पूछता बड़े परिश्रम के पश्चात् आप के पास पहुँचा तक यह अपनी दुकान पर कई मित्रों सहित बैठे किसी विषय पर शंका समाधान कर रहे थे। तब मैं भी इनके पास बैठ गया। आपने मुझसे आने का कारण पूछा तब मैंने कहा कि आपके पास 'धर्म निर्णय' का प्रथम भाग उपलब्ध है? तब इन्होंने कहा कि इस समय प्रथम भाग उपलब्ध नहीं है। शेष तीनों भाग मिल सकते हैं। जब कि मुझे प्रथम भाग की ही आवश्यकता थी। इसके बाद मैंने आपसे बहुत सी बातों का समाधान पाया। इनसे जब मैं वार्तालाप करता था तो मुझे बड़ा आनन्द आता था और इनके पास से उठने को मन नहीं करता था। इनके पास जाने से मुझे वे लाभ होते थे जो कहीं नहीं हो सकते

थे, इसमें पहला यह था कि बहुत सी शंकाओं का समाधान होता और बड़ी–बड़ी बारीकियाँ योगादि से सम्बन्धित मिलती थीं। दूसरी बात यह थी कि मेरी गाड़ी शाम पाँच बजे छूटती है तो मेरे समय का भी सदुपयोग हो जाता है। इसके बाद मैं प्रत्येक शनिवार को इनके पास आने लगा और कोई भी धर्म से सम्बन्धित बात को छेड़ देता, तो उसका उत्तर (समाधान) इतनी बुद्धिमत्ता से देते कि मैं पूर्ण सन्तुष्ट हो जाता। आपके समझाने की विधि इतनी उत्तम है कि मानों मैं किसी महान ऋषि के सम्मुख बैठा हुआ ब्रह्म विद्या सीख रहा हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि मेरे जन्म जन्मान्तरों के शुभ संस्कार थे जो मुझको आपके पास ले आये और मैंने अपने आपको धन्य समझा। इसके बाद मेरा यह सम्बन्ध सुयोग्य गुरु और शिष्य के रूप में बदल गया। जब कभी मैं आपके पास किसी शनिवार को नहीं आता तब आप मुझसे न आने का कारण पूछते। शाखा में अधिक कार्य होने के कारण मैं आपके पास नहीं आ पाता तो मुझे ग्लानि होती। आपका मेरे प्रति वात्सल्यपूर्ण व्यवहार है, अतः वह अन्य व्यक्तियों से बात न करके मुझसे ही अधिक वार्तालाप करते क्योंकि आप जानते हैं कि यह व्यक्ति धर्म का प्यासा है अतः आप अपने अनुभवों को मुझ पर प्रकट कर देते हैं। इसके बाद मैंने आप के प्रथम रचित ग्रन्थ 'इच्छानुसार सन्तान' का गहराई से अवलोकन किया और पाया कि आपके इस ग्रन्थ में कितनी गहराई है। आपने उत्तम सन्तान के लिये इसमें बेजोड़ नुस्खे एवं बड़ी–बड़ी दुर्लभ बातें व्याख्या रूप से समझायी हैं। इस ग्रन्थ में आपने आयुर्वेद, वेद, स्मृति, सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि आदि ग्रन्थों का सार लेकर जो अपनी पुस्तक बनाई है, वह अद्वितीय है। यदि इसको द्वितीय संस्कार विधि मान लिया जाये तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। अन्तर केवल इतना है कि संस्कार विधि में १६ संस्कारों के बारे में बताया गया है, लेकिन इसमें केवल उत्तम सन्तान के उपायों का वर्णन बड़ी सरल रीति से किया गया है। इसके अतिरिक्त आपकी कृतियों में, आर्य समाज के दस नियम, दैनिक पंच महायज्ञ, मनुभर्व, अदीनास्याम, गायत्री साधन, नव–सम्वत्, वेद–दर्शन आदि का अवलोकन करने का अवसर प्राप्त हुआ, प्रत्येक कृति का अपना विशेष महत्त्व है, मुख्य रूप से वेद–दर्शन का मैंने बहुत ही गहन अध्ययन किया है। मैंने एक माह का अवकाश लेकर वेद–दर्शन का गहराई से सिहाँवलोकन किया एवं उनके सरस्वती सूक्त का यज्ञ सहित पाठ किया तब मैंने पाया कि मेरा शरीर मानों ताँबे की तरह से देदीप्तमान हो रहा है। उस औषधि को मैंने यज्ञोपरान्त दोनों समय ग्रहण किया जैसा कि वेद–दर्शन में वर्णित है, तब देखा कि मैंने अपने आपको स्वस्थ एवं निरोगी पाया, मेरे मस्तिष्क की रगें मानों पुष्ट हो गयी हैं। ऐसा मैंने ४० दिन निरन्त किया। मेरे एक शाखा के मित्र ने अपनी पत्नि के गर्भ काल में इच्छानुसार सन्तान नामक ग्रन्थ से शिक्षा लेकर उसका पालन किया। उसने मुझ से कहा कि यह ग्रन्थ वास्तव में अत्यन्त उत्तम ग्रन्थ है, इसमें लिखित शिक्षा का मैंने पूर्ण पालन किया और फलस्वरूप उत्तम पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। वास्तव में श्री गुप्तः जी ने जो अपने अनुभव वेद–दर्शन में दिये हैं वे अत्यन्त ही लाभप्रद हैं। जो–जो बात उन्होंने कही है वह शत प्रतिशत ठीक है, मैंने उनकी हर बात का प्रेक्टिकल किया है। मुझे ऐसा लगता है कि मानों उनमें कोई दैविक शक्ति

है जो समय–समय पर प्रेरणा करती है। उनके लेखन कार्य एवं कृतियों की जितनी भी प्रशंसा की जाय वह कम है। अन्तिम ग्रन्थ आनुषक् कहानियाँ पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ, उसको पढ़कर मुझे कई बार अश्रुपात हुआ और वह पुस्तक मैंने कई व्यक्तियों को पढ़ने को दी, जिसने भी पढ़ा अत्यन्त मनोहर और उपयोगी पुस्तक बताया। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि जब तक प्रारम्भ से अन्त तक नहीं पढ़ी जाती तब तक उसे छोड़ने को मन नहीं चाहता। ऐसा मैंने कंई साथियों को देखा, जिन्होंने शुरु से अन्त तक पढ़कर ही मुझे लौटाया।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज की कृति आर्याभिविनय जिसमें ऋषिवर ने चुने हुए १०८ मन्त्रों को दिया उस ग्रन्थ का काव्यानुवाद कराकर ऋषि की व्याख्या सहित 'विनयामृत सिन्धु' के नाम से जिसमें ईश्वर का स्वरूप, ज्ञान और भक्ति, धर्मनिष्ठा, व्यवहार शुद्धि के प्रयोजन से हमारे लिये छपवा रहे हैं। जो बड़े परिश्रम से तैयार कराई गयी है और प्रत्येक आर्य के लिये उसका अध्ययन करना आवश्यक है। वास्तव में आप एक सच्चे आर्य ऋषि के सच्चे अनुयायी बन कर जो कार्य कर रहे हैं उससे लगता है कि श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी दिव्य पुरूष हैं। मुझे आशा है कि ऐसे महान लेखक, महान विचारक, सच्चे देशभक्त कार्यशील, वैदिक संस्कृति के अग्रणी दिव्य पुरुष की दीर्घायु हो। जिससे इनके पवित्र साहित्य से समाज एवं देश को लाभ होता रहे।

एम०एस०सी० (गणित) बी०एड०
प्रथमा बैंक, शाखा बंगला गांव,
मुरादाबाद

दो पुष्प

डा० राम प्रसाद मिश्र

'नव-सम्वत्' शीर्षक पुस्तक में श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने भारत की प्राचीन मन्वन्तर एवं युग-मान्यताओं को सरल सुबोध रूप में प्रस्तुत किया है। भारत के सृष्टि सम्वत् की विज्ञान से निकटता का बिंदु राहुल सांकृत्यायन जैसे बौद्ध, वाममार्गी एवं साम्यवादी महापंडित तक ने स्वीकार किया है। समग्र मन्वन्तर, कल्प, युग प्रभृति पर वैज्ञानिक ऊहापोह अपेक्षित है। श्री गुप्तः जी ने विवरण एकत्र कर प्रशंसनीय कार्य किया है। पुतिस्का भारतीय काल चिंतन को उजागर करती है।

'आनुषक्' (यथाक्रम क्रमबद्ध) श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी की प्रेरक लघु कथाओं का पठनीय संग्रह है। ये लघुकथायें आज के ढहते मानव-मूल्यों के युग में, आज के भयावह अपसंस्कृतिवादी वातावरण में छात्र-छात्राओं एवं सर्वसामान्य बालक बालिकाओं को अच्छी प्रेरणा दे सकती है। इनमें न कला है, न शिल्प, न आधुनिकता। किन्तु इनमें प्रभावी प्रेरणा विद्यमान है। ईसप् की कथाऐं याद आती हैं, यद्यपि वे रोचकता एवं प्रभावान्विति में अतुलनीय हैं तथा ये अपेक्षाकृत उपदेशात्मक एवं रूढ़। इनके लिये लेखक साधुवाद के पात्र हैं।

सम्पर्क : १४, सहयोग अपार्टमेंट
मयूर विहार-१
देहली - ११००६१

सर्वोपकारी प्रकाश



डा० सुरेन्द्र नाथ सिंह
प्राचार्य

हमारी भारतीय संस्कृति सदा से ही विश्व की संस्कृतियों में सिरमौर रही है। इसका एक मांत्र कारण यही है कि हमारी संस्कृति का मूल आधार 'वेद' है जिनको हमारे मनीषी पूर्वजों एवं ऋषियों ने युगों की साधना एवं अपने अनुभवों के आधार पर बड़े परिश्रम और मनोयोग पूर्वक संसार के उपकार हेतु सुरक्षित रखा था।'वेदों' में वह सब कुछ है, जिसे विश्व के वैज्ञानिक अनेक प्रयास और अकूत धन व्यय करने के उपरान्त भी आज तक प्राप्त नहीं कर पाये हैं। ज्ञान –विज्ञान, अर्थशास्त्र, नीति शास्त्र, गणित, समाज शास्त्र, आदि विषय, विद्याएं एवं कलाएं आदि सभी कुछ तो निहित हैं 'वेदों' में। हमारे चारों 'वेद' ज्ञान के असीमित और अथाह भण्डार हैं। वे अनादि हैं और मानव मात्र की उन्नति के लिये दिव्य प्रकाश स्तम्भ हैं।

हमारे मनीषी पूर्वजों ने आध्यात्मिक दृष्टि से जहां वेदों को मोक्ष का मार्ग बताया है, वहीं उन्हें लौकिक दृष्टि से सभी प्रकार के ऐश्वर्यों के भण्डारों से परिपूर्ण कर दिया है, ताकि उनके वंशज आनन्दपूर्वक लौकिक जीवन यापन कर आध्यात्मिकता की ओर बढ़कर आत्मिक उन्नति भी कर सकें।

यथार्थ तो यह है कि जब से हमने वेदाज्ञाओं की अवहेलना करनी प्रारम्भ की है, तभी से हम शान्ति के लिये इधर–उधर भटक रहे हैं। सूर्य का प्रकाश जिस प्रकार सर्वोपकारी है और उसके अभाव में अन्य कृत्रिम प्रकाश हानिकारक तो हैं हीं साथ ही वे घनघोर अंधकार को दूर करने में भी सक्षम नहीं होते। ठीक इसी प्रकार 'वेदों' के ज्ञान–सूर्य को विस्मृत कर हम भी कृत्रिम ज्ञान के घनघोर अज्ञानांधकार के भ्रम जाल में फंस कर रह गये हैं, जिससे मुक्ति पाना सरल नहीं है।

विद्वान लेखक श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने अपने ग्रन्थ 'वेद दर्शन' में चारों 'वेदों' में से मानव उपयोगी विषयों एवं सूक्तों को चुन–चुन कर संकलित किंया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में अन्य विषयों के अतिरिक्त लेखक ने मनः सूक्त, मनस पाप शुद्धि सूक्त, शान्ति सूक्त, पाप विमोचन सूक्त, मानवता सूक्त, संजीवन सूक्त, काल सूक्त, दान सूक्त, आदि विविध विषयक पैंतीस सूक्तों का बड़ा सुन्दर चयन किया है। चयनित सूक्तों के मन्त्रों की दृष्टान्तों सहित बड़ी ही सटीक, सार्थक, उपयोगी और सरल भाषा द्वारा व्याख्या की गई है, ताकि साधारण पाठक भी अपनी इच्छा पूर्ति हेतु वांछित ज्ञान धारा का चयन कर लौकिक एवं आध्यात्मिक लाभ उठाकर स्वयं के कल्याण के साथ अन्यों का भी कल्याण कर सके।

इस ग्रन्थ में इन सूक्तों के मन्त्रों के अतिरिक्त भी श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने 'गायत्री साधना', 'यज्ञ का महत्व', 'वेद–वेदांग', 'बाईबिल और विज्ञान', जैसे महत्वपूर्ण विषयों

को भी सम्मिलित किया है। यह लेखक की चयन सामर्थ्य का ही प्रतीक है कि उसने इतने जनोपयोगी मुक्ता रूपी विषयों को, गूढ़ और अथाह वेद सागर से चुन–चुन कर लाने का प्रयास कर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है, यह पाठक के ज्ञान पर निर्भर करता है कि वह कौन से मुक्ता का कितना मोल लगावे और उसका किस रूप में उपयोग करे।

लेखक श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी बड़ी ही सरलता पूर्वक अपने चयनित सूक्तों के मन्त्रों द्वारा भौतिकता में लिप्त रहकर सभी प्रकार के सुख और ऐश्वर्य का भोग भोगने वाले किन्तु अतृप्त और भोग की मृग मरीचिकाओं में भटकते रहने वाले तथा सच्ची शान्ति से बहुत अधिक दूरी का अनुभव करने वाले आज के मानव के लिये इन मन्त्रों के रूप में अमृत वर्षा लेकर आये हैं, जिसका अनुभव करने पर अलौकिक एवं असीम शान्ति की प्राप्ति होती है।

'यज्ञ साधना' और 'यज्ञ का महत्व' प्रकरणों में श्री गुप्तः जी ने यज्ञों के महत्व पर प्रकाश डाला है। इसमें यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि जिस प्रकार कोई भी कमी आ जाने से समग्र शरीर का संतुलन बिगड़ जाता है उसी प्रकार यज्ञों के अभाव में समस्त विश्व असंतुलित हो गया है और अपने अभीष्ट से बहुत अधिक दूर पहुँच गया है। इसी प्रकार 'सृष्टि वर्णन सूक्त', 'पुत्र कामना सूक्त', 'चरित्र निर्माण सूक्त' आदि से भी संबन्धित विषयों को बड़े ही अनूठे ढंग से प्रतिपादित किया गया है। एक समय ऐसा था, जब भरतवंशियों से सम्पूर्ण विश्व चरित्र और आचरण की दीक्षा लेता था। वही विश्व के गुरु थे, पर आज 'वेद' ज्ञान के अभाव में सब कुछ स्वप्नवत हो गया है।

पुस्तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वीरेन्द्र जी ने चारों 'वेदों' का मनन और मंथन कर 'वेद दर्शन' के रूप में सर्वथा सभी दृष्टियों से उपयोगी ग्रन्थ पाठकों को भेंटकर उन्हें वास्तविक सुख–शान्ति की ओर अग्रसरित करने का सफल प्रयास करते हुए धर्म और विज्ञान की सच्चाईयों पर प्रकाश डाला है।

यह हमारा गौरव है कि हमारे ही विद्यालय के पूर्व छात्र श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का आज नागरिक अभिनन्दन किया जा रहा है।

एम०ए०,पी०एच०डी०
हिन्दू कालिज,
मुरादाबाद

को भी सम्मिलित किया है। यह लेखक की चयन सामर्थ्य का ही प्रतीक है कि उसने इतने जनोपयोगी मुक्ता रूपी विषयों को, गूढ़ और अथाह वेद सागर से चुन-चुन कर लाने का प्रयास कर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया है, यह पाठक के ज्ञान पर निर्भर करता है कि वह कौन से मुक्ता का कितना मोल लगावे और उसका किस रूप में उपयोग करे।

लेखक श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी बड़ी ही सरलता पूर्वक अपने चयनित सूक्तों के मन्त्रों द्वारा भौतिकता में लिप्त रहकर सभी प्रकार के सुख और ऐश्वर्य का भोग भोगने वाले किन्तु अतृप्त और भोग की मृग मरीचिकाओं में भटकते रहने वाले तथा सच्ची शान्ति से बहुत अधिक दूरी का अनुभव करने वाले आज के मानव के लिये इन मन्त्रों के रूप में अमृत वर्षा लेकर आये हैं, जिसका अनुभव करने पर अलौकिक एवं असीम शान्ति की प्राप्ति होती है।

'यज्ञ साधना' और 'यज्ञ का महत्व' प्रकरणों में श्री गुप्तः जी ने यज्ञों के महत्व पर प्रकाश डाला है। इसमें यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि जिस प्रकार कोई भी कमी आ जाने से समग्र शरीर का संतुलन बिगड़ जाता है उसी प्रकार यज्ञों के अभाव में समस्त विश्व असंतुलित हो गया है और अपने अभीष्ट से बहुत अधिक दूर पहुँच गया है। इसी प्रकार 'सृष्टि वर्णन सूक्त', 'पुत्र कामना सूक्त', 'चरित्र निर्माण सूक्त' आदि से भी संबन्धित विषयों को बड़े ही अनूठे ढंग से प्रतिपादित किया गया है। एक समय ऐसा था, जब भरतवंशियों से सम्पूर्ण विश्व चरित्र और आचरण की दीक्षा लेता था। वही विश्व के गुरु थे, पर आज 'वेद' ज्ञान के अभाव में सब कुछ स्वच्छन्द हो गया है।

पुस्तक के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वीरेन्द्र जी ने चारों वेदों का मनन और मंथन कर 'वेद दर्शन' के रूप में सर्वथा सभी दृष्टियों से उपयोगी ग्रन्थ पाठकों को भेंटकर उन्हें वास्तविक सुख-शान्ति की ओर अग्रसरित करने का सफल प्रयास करते हुए धर्म और विज्ञान की सच्चाईयों पर प्रकाश डाला है।

यह हमारा गौरव है कि हमारे ही विद्यालय के पूर्व छात्र श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का आज नागरिक अभिनन्दन किया जा रहा है।

एम०ए०पी०एच०डी०
हिन्दू कालेज,
मुरादाबाद

क्रियाशील प्राणी


श्रीमती मनोरमा

अन्धकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है।
मुर्दा है वह देश, जहाँ साहित्य नहीं है।।

मानव स्वभाव से ही क्रियाशील प्राणी है। उसमें अपने भावों की अभिव्यक्ति की तीव्र इच्छा रहती है। अभिव्यक्ति की इस इच्छा ने साहित्य का निर्माण किया है। वस्तुतः साहित्य मन और स्वभाव की उपज है।

मानव ने अपनी जीवन यात्रा में जो अनुभव तथा ज्ञान प्राप्त किया, उसे विभिन्न माध्यमों से व्यक्त किया है। यदि कहीं उसने पत्थरों को तराशकर सजीव मूर्ति निर्मित की है तो कहीं रंगों के मेल से सुन्दर चित्र उभारे हैं। यदि कहीं वीणा के तारों में स्वर भरे हैं तो कहीं शब्दों को साकार रूप प्रदान किया है। साहित्य भी एक कला है जो भाषा द्वारा मानव के भावों एवं विचारों को व्यक्त करती है।

"हितेन सहितम् सहितस्यभावः साहित्यम्" के अनुसार साहित्य में हिंत की भावना सन्निहित है। साहित्य में अमूर्त भावों को मूर्त रूप में चित्रित किया जाता है।

आचार्य मम्मट ने—काव्य या साहित्य का प्रयोजन यश के लिये, अर्थ के लिये, व्यवहार ज्ञान के लिये, कल्याण एवं रक्षा के लिये, सीमित सुख के लिये तथा उपदेश के लिये होता है—इस प्रकार छः प्रयोजन बताये हैं।

वर्तमान परिस्थितियों में स्वस्थ सामाजिकता प्रदान करना ही साहित्य का प्रयोजन है। साहित्यिक दृष्टिकोण से ऐसा ही शुद्ध वातावरण एवं वेद दर्शन तथा आध्यात्मिकता की अपूर्व ललक श्रद्धेय वीरेन्द्र गुप्तः जी में दृष्टिगोचर होती है। व्यवसाय से जुड़े होने पर भी चिन्तन व मनन की प्रक्रिया ने चमत्कार कर दिखाया है और यह भी सिद्ध किया है कि स्नातक व स्नातकोत्तर उपाधियाँ प्राप्त कर लेने से ही किसी के द्वारा उच्च साहित्य का निर्माण करना असम्भव है।

ईश्वर की महती अनुकम्पा से ही गुप्तः जी आज अपनी लेखनी का प्रयोग कर इतना आगे बढ़ चुके हैं कि रुकना या अवरोध की स्थिति उनके लिये सह्य नहीं है।

गुप्तः जी जन्मजात सुसंस्कारों से ओतः प्रोत हैं और फिर बचपन से ही विद्वत् मण्डल के सान्निध्य ने आपके व्यक्तिव में चार चाँद लगा दिये हैं। वेद तथा वैदिक सिद्धान्तों के मनन करने का आपको सौभाग्य प्राप्त हुआ और शनैः—शनैः आपने लेखन कार्य प्रारम्भ किया। साथ ही वेद गंगा की लहरों को सर्वत्र फैलाने का अभूतपूर्व कार्य आपने अपनी रचनाओं के द्वारा किया है।

गुप्तः जी ने अपनी लगभग ३१ रचनाओं के माध्यम से समाज व देश को नई दिशा प्रदान की है। आपकी रचनाओं ने एक ओर तो ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित की है, वहीं दूसरी ओर अपनी निष्ठापूर्ण खोज से "पुत्रप्राप्ति का साधन, इच्छानुसार सन्तान, सीमित परिवार, गर्भावस्था की उपासना, पाणिग्रहण संस्कार विधि" आदि पुस्तकों के

सृजन द्वारा समाज को यथेष्ट कामनाओं की पूर्ति करने में भी मदद की है जो बहुत बड़ी उपलब्धि है। उन्होंने अपने लेखन से राष्ट्रीय मूल्यों की रक्षा करने का भी सफल प्रयास किया है। शुद्ध सरल व सरस भाषा के प्रयोग से उनका साहित्य जन साधारण के लिये भी सुगम है।

वर्तमान परिपेक्ष्य में यह और भी उत्तम है कि गुप्तः जी ने ऋग्वेद, यर्जुवेद, सामवेद व अर्थववेद की प्रमुख ऋचाओं का संग्रह कर संक्षेप में उनका सार 'वेद दर्शन' नामक पुस्तक के रूप में प्रस्तुत किया है। भौतिकता के युग में जहां मानव अर्थ की दौड़ धूप में सबसे आगे निकलने को आकुल है, उसके पास स्वाध्याय, चिन्तन, मनन का समय ही नहीं है ऐसे समय में वेदों का सार ही उसके लिये ज्ञान का श्रेष्ठ व सुलभ साधन है।

इसके साथ ही गुप्तः जी ने 'आनुषक्' की शिक्षाप्रद कथाओं द्वारा बच्चों में जन्म से ही सुसंस्कार डालने पर बल दिया है। छोटी–छोटी बातें जिन पर अक्सर ध्यान नहीं दिया जाता। लेकिन वही छोटी बातें बड़ा रूप ले लेती हैं और जीवन को बेकार और पशुवत् बनाने में सहायक होती हैं। उदाहरण के लिये चोरी, झूठ बोलना, सेवा भाव की प्रवृत्ति से परे रहना, परिश्रम से बचना, ईश्वर में विश्वास न रखना आदि दुर्गुणों को इन लघु कहानियों के माध्यम से सहज ढंग से दूर करने का प्रयास किया गया है, अनेक कहानियों के द्वारा बच्चों की जिज्ञासा को भी शान्त किया गया है।

गुप्तः जी ने नियमित ढंग से अपने जीवन की कार्य शैली प्रतिपालित की है। शुद्ध आचार–विचार का ही परिणाम है कि आपकी लेखनी सदैव साहित्य सृजन की ओर अग्रसर रही है। आहार–विहार तो नियमित है ही, साथ ही नित्य सन्ध्योपासना, यज्ञ व आध्यात्मिक चिन्तन आपके जीवन का प्रमुख अंग रहा है।

मैंने बचपन से ही आपको सौम्य, शान्त, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ व सदाचारी पाया है, क्योंकि मुझे शैशवावस्था में सौभाग्य से आपके पास पहुँचने का अवसर प्राप्त हुआ था। श्री गुप्तः जी मेरे पिता जी द्वारा मुझे दिये गये आदेश का पालन कराने हेतु छोटी–छोटी उपदेशात्मक पंक्तियों को कागज के अक्षर काटकर आकार देने का कार्य अत्यन्त सुन्दर तरीके से किया करते थे। यह मेरे लिये आज भी स्मरणीय है।

मन की एकाग्रता व सादा जीवन उच्च विचार, आपके जीवन के आदर्श हैं। जो बाहर है वही अन्तःकरण में विद्यमान है। आपकी कथनी व करनी में अन्तर नहीं है। आपके व्यवहार व आचरण ने "नारिकेलसमाकारः दृश्यन्ते भुविसज्जनाः" अर्थात् सज्जन लोग संसार में नारियल की आकृति के समान बाहर से कठोर, और अन्दर से मृदु स्वभाव होते हैं इस उक्ति को भी सार्थक सिद्ध किया है।

शास्त्रों में भी आचरण को परम महत्व प्रदान कर सत्य ही कहा गया है–

आचाराल्लभते ह्यायुः आचाराल्लभते श्रियम्।
आचारात् कीर्तिमाप्नोति पुरुषः प्रेत्य चेह च।।

इन समस्त गुणों की विद्यमानता के कारण ही श्री गुप्तः जी सदैव एकनिष्ठ आर्य समाज से जुड़े हैं। प्रधान, मन्त्री आदि पदों पर तो आप अनेक बार आसीन रहे। सही

को सही व गलत को गलत कहने में आप कभी कतराये नहीं भले ही इसके लिये संघर्षों का सामना करना पड़ा हो। आपका सम्पूर्ण जीवन ही आर्य समाज को समर्पित है। सेवा भाव से प्रेरित होकर ही गुप्तः जी ने सदा निष्काम भाव से समाज के कार्यों को प्राथमिकता दी है। सदैव सुख व दुःख में समान रहना भी आपके व्यक्तित्व की एक विशेषता है।

उदेति सविता ताम्रः ताम्रमेव उस्तमेति च।
सम्पत्तौ विपत्तौ च महतामेकरूपता।।

आज समाज व देश को श्रेष्ठ मार्ग पर अग्रसर करने के लिये आप जैसे व्यक्तित्व की परमावश्यकता है।

मैं श्री गुप्तः जी की दीर्घायु, स्वस्थ परिवार व उज्ज्वल भविष्य की परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करती हूँ।

वदनं प्रसादसदनं सदयं हृदयं सुधामुचो वाचः।
करणं परोपकरणं मेषां केषां न ते वन्द्यः।।

प्रवक्ता
प्रताप सिंह हि०ग०इ० का०
महामंत्री
महिला कल्याण समिति, मुरादाबाद

'मृत्योर्माऽमृतं गमय'

उमेश अग्रवाल

मृत्यु दो प्रकार की होती है, एक शारीरिक, दूसरी आत्मिक। शारीरिक मृत्यु अन्न दोष से अर्थात् अखाद्य सेवन से होती है। अखाद्य सेवन से रोगावस्था, जरावस्था उत्पन्न हो जाती है जिस कारण शरीर जीर्ण–शीर्ण होकर समाप्त हो जाता है। आत्मिक मृत्यु चारित्रिक पतन दोष के कारण होती है, इससे मनुष्य दूसरों की दृष्टि में तो गिरता ही है और जब यह दोष चरमसीमा तक पहुँच जाता है तो वह स्वयं की दृष्टि में भी गिर जाता है, यह उसके पतन की पराकाष्ठा होती है। शारीरिक मृत्यु से चारित्रिक मृत्यु अधिक भयंकर और कष्ट साध्य होती है। यह श्लोक आत्मिक मृत्यु के दोषों का स्पष्ट वर्णन करता है।–

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्चमृत्युर्विप्रान् जिघांसति।।

१–वेद के अनभ्यास से, २–आचार त्यागने से, ३–आलस्य से, ४–अन्न के दोष से, विद्वान् की मृत्यु हो जाती है।

यह चारों दोष ही आत्मिक मृत्यु के वास्तविक कारण हैं। प्रत्येक आत्मस्वाभिमानी व्यक्ति को इस कसौटी पर अपने आपको कसकर देखना चाहिये, चिन्तन करना चाहिये कि वह स्वयं कहां खड़ा है। इस कसौटी पर श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का जीवन पूरी तरह खरा उतरता है।

१. वेद का अभ्यास–श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का सारा जीवन और समय वेद के अभ्यास करने और कराने में ही लगा रहता है। उनका सारा लेखन वेदानुकूल है। उन्होंने सदैव वेद विरुद्ध विचारों का खण्डन ही किया है। इस विषय में तो उनकी दिनचर्या खुली किताब जैसी है, और सारा साहित्य उनके विचारों का खुल कर बिगुल बजा रहा है। साहित्य विचारों का दर्पण होता है, लेखन से किसी व्यक्ति के सारे विचार, क्रियाकलाप रहन–सहन, खान–पान, व्यवहार, दिनचर्या सभी स्पष्ट हो जाते हैं और वह पाठकों को कैसा विचार देना चाहता है आदि का भी स्पष्ट दिग्दर्शन हो जाता है, उसका एक–एक शब्द उसकी भावनाओं को प्रकट करता है कि वह क्या करता है और दूसरों से क्या कराना चाहता है। श्री गुप्तः जी अपनी पुस्तकों में स्पष्टतः लिख चुके हैं कि साहित्य किसे कहते हैं, वह कैसा होना चाहिये? उसकी सच्ची कसौटी क्या है?

२. आचार पालन–जो व्यक्ति दूसरों को आचारवान देखना चाहता है, वह आचार को स्वयं कैसे त्याग सकता है, आचार का अर्थ केवल पापवृत्ति से ही नहीं है। आचार बड़ा व्यापक शब्द है। मनीषियों ने कहा है "आचारः परमोधर्मा" मनुष्य के लिये आचार ही परम धर्म है। सत्य बोलना, सत्य मानना, दूसरे की वस्तु को किसी भी प्रकार से हरण नहीं करना, धर्मार्थ दिये दान के धन का भी हरण नहीं करना। केवल अपने पुरुषार्थ से अर्जित धन, वस्तु पर ही सन्तोष करना आदि–आदि और भी अनेक व्यवहार हैं जो आचार की श्रेणी में आते हैं। इस कसौटी पर श्री गुप्तः जी का जीवन आचार से सम्पृक्त

सिद्ध होता है।

३. आलस्य त्याग—वास्तवित बात है कि आलस्य बड़ा ही दुःखदायी होता है, आलस्य से ही प्रणमादादि दोषों की उत्पत्ति होती है। मेरी व्यक्तियों से चर्चा होती है कि आप प्रातः काल किस समय निद्रा का त्याग करते हैं? उत्तर मिलता है ८—८" बजे। मैं प्रश्न करता हूँ क्यों? उत्तर मिलता है सबेरे ही उठ कर क्या करें, कोई काम नहीं, उठकर शौच, स्नान कर के दुकान, कार्यालय आदि चले जाना। यही तो काम होता है। वास्तविकता यही है कि जिसके पास प्रातः उठकर व्यायाम, उपासना आदि करने योग्य कार्यों में रुचि नहीं तो वह सबेरी क्यों उठे। वह नहीं जानता कि प्रातः जल्दी उठने से क्या लाभ होता है और कोई उसे बताता भी नहीं, जाने बिना कोई बताए भी कैसे। जिस समय श्री राम जी वन जा रहे थे तो उन्हें घर लौटाने के लिये भरत जी गये और उन्होंने कहा "भाई! मैंने स्पप्न में भी यदि यह विचार किया हो कि आप वन जायें और मैं राजगद्दी पर बैठूँ तो मुझे वह पाप लगे जो सूर्योदय के पश्चात् सोकर उठने वाले को लगता है।" अब आप अनुमान लगा लीजिये आलस्य त्याग की प्रथम चर्चा को त्यागने से कितनी बड़ी हानि होती है। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी अपने प्रवचनों में इसकी चर्चा करते ही रहते हैं। जब वे चाहते हैं कि सब आलस्य रहित हों तो वह कैसे आलसी हो सकते हैं।

४. अन्न दोष का त्याग—अन्न के दोष दो प्रकार के हैं। एक अखाद्य, दूसरा संस्कार रहित। अखाद्य अन्न दोष उसे कहते हैं जो हिंसा से प्राप्त हो, रक्त से निर्मित हो, तामस हो। संस्कार रहित अन्न दोष उसे कहते हैं जो अशुद्ध प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न किया गया हो, जो पाप की आय से प्राप्त हो। अखाद्य अर्थात् मांसाहार मनुष्य का भोजन ही नहीं है। जब मांसाहारी जन्तुओं के शरीर की रचना और शाकाहारी मानव और जन्तुओं की शारीरिक रचना की तुलना की गई तो उसमें सब कुछ एक दूसरे के विपरीत ही पाया गया। अर्थात् मांसाहारी जन्तुओं के शरीर जिस प्रकार के हैं वैसे शाकाहारी जन्तुओं के नहीं होते। जब मांसाहारी सिंह, रीछ, भालू, चीता आदि जन्तु शाकाहार को नहीं छूते, इसका स्पष्ट मन्तव्य है कि इसी प्रकार जब मानव की रचना शाकाहार के अनुसार की गई है तो उसे भी मांसाहार नहीं करना चाहिये।

अन्न दोष का मन्तव्य है कि शुद्ध अन्न हो। गला—सड़ा और दुर्गन्ध युक्त न हो साथ में सुपाच्च हो, शीघ्र पच जाने वाला हो, स्वास्थ्यवर्धक, बलकारक, बुद्धि दायक हो, साथ में उपार्जन का साधन भी शुद्ध हो अर्थात् पाप से अर्जित धन से प्राप्त अन्न न हो। आप कह सकते हैं कि पाप के धन का अन्न पर क्या प्रभाव पड़ सकता है? मैं आपके सामने एक ऐतिहासिक घटना प्रस्तुत करता हूँ।

प्राचीनशाल, सत्ययज्ञं, इन्द्रद्युम्न, जन, बुडिल यह पांचों पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि विस्तृत कुटुम्बी, विशाल सम्पदा, भवनों और यज्ञशालाओं वाले सदाचारी महागृहस्थ आपस में बैठकर यह विचार कर रहे थे कि 'आत्मा' और 'ब्रह्म' कौन हैं, क्या हैं? यह पांचों महागृहस्थ आरुणी उद्दालक ऋषि के आश्रम पर पहुंचे और अपनी जिज्ञासा रखी। आरुणी उद्दालक ऋषि ने प्रश्न का उत्तर देने में अपने को असमर्थ जाना अतः ऋषि

सहित ये सब महाराजा अश्वपति के पास पहुंचे जो 'वैश्वानरात्मा' के ज्ञान को भली प्रकार जानते थे। महाराजा अश्वपति ने सबका स्वागत किया और भेंट भी दी। महागृहस्थों ने कहा महाराज हम पर सब कुछ है हम गृहस्थी हैं, ऐसा कहकर वह भेंट स्वीकार करने से मना कर दिया। आरुणी उद्दालक ऋषि ने भी द्रव्य लेने से मना कर दिया। राजा ने कहा—महाराज! मेरे राज्य कोष में अपवित्र धन नहीं है, मेरे राज्य में कोई पापी नहीं, कोई दुराचारी नहीं, कोई चोर नहीं, कोई कृपण नहीं, बिना अग्नि होत्र के कोई नहीं रहता। मेरे राज्य कोष में पाप का धन नहीं आता, आप इसे ग्रहण कर सकते हैं यह पवित्र धन है। इससे स्पष्ट होता है कि अपवित्र आय के धन का प्रभाव होता है। मैंने भी देखा है कि यदि माता-पिता ने पापार्जित धन से अपनी सन्तान का पोषण किया है तो वही सन्तान बड़ी होकर माता पिता के रक्त की प्यासी बन जाती है।

इस दोष से भी गुप्तः जी मुक्त हैं जब वे दूसरों के जीवन को उत्तम, पवित्र, सुखी, आदर्श जीवन जीने के लिये साहित्य देते हैं तो क्या कभी उनकी मृत्यु हो सकती है? नहीं! वह सदैव जीवित रहेंगे। उसी प्रकार जैसे कि कुन्ती के पुत्र जीवित रहे।

महाभारत में प्रसंग आता है कि गान्धारी और कुन्ती युद्ध की समाप्ति के पश्चात् बैठी बातें कर रही थीं, गान्धारी ने पूछा—बहिन! जबसे मुझे मालूम हुआ कि मेरे पति अन्धे हैं, तभी से मैंने अपनी आँखों से पट्टी बाँध ली, मैंने पूरा पतिव्रत धर्म पाला परन्तु मेरे सारे पुत्र युद्ध में मारे गये, ऐसा क्यों? कुन्ती ने उत्तर दिया—तुमने पतिव्रत धर्म का पालन किया, उसका फल तुम्हें मिला है कि तुम्हारे पति जीवित हैं। तुम्हारे पुत्रों ने मुझ सहित मेरे पुत्रों को लाक्षागृह में भस्म करने की योजना बनाई थी और हम लाक्षागृह से बचकर निकल गए। हमने एक अन्य राज्य में एक ब्राह्मणी के घर पर वास किया था उस राज्य में एक नरभक्षी दानव रहता था जिसके आहार के लिये नित्य एक व्यक्ति को भेजा जाता था, जिस दिन मैं उसके घर पर टिकी थी उस दिन उसके लड़के की बारी थी। वह बहुत चिन्तित थी। परन्तु मैंने उसके पुत्र की रक्षा की और भीम को भेज दिया। मैंने पतिव्रत धर्म का पालन नहीं किया तो मेरे पति नहीं हैं। मैंने दूसरे के पुत्र की रक्षा की तो मेरे पुत्र जीवित हैं।

इस प्रकार जब श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने आदर्श जीवनोपयोगी निर्माण के लिये सभी प्रकार से सर्वांगिक साहित्य जनता-जनार्दन को दिया तो फिर क्यों कर उनको अमरता नहीं मिलेगी? जब तक उनका साहित्य है तब तक वह भी अमर हैं। साहित्य कभी नष्ट नहीं होता। हां! साहित्य के नाम पर विषाक्त और कलंक लगाने वाला लेखन कभी साहित्य नहीं होता और न वह कभी जीवित रह पाता है।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने इस कसौटी पर अपने आपको कस कर देखा है, और मैं गर्व से कह सकता हूँ कि वह इस पर खरे उतरे हैं।

प्रवक्ता
महाराजा अग्रसेन इण्टर कालिज,
मुरादाबाद

पारस मणि श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी



अमर नाथ

**ओ३म् विश्वानि देव सवितर्दुरितानी परासुव।
यद् भद्रं तन्न आ सुवा।।**

हे परमेश्वर! हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण दुर्व्यसन और दुख दूर हों और जो कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ हैं वह हम सबको प्राप्त करायें।

बात उस समय की है जब मैं शिक्षा अध्ययन करने हेतु अपने पिता जी के साथ मुरादाबाद पहली बार आया था। मैं मुरादाबाद के बारे में उस समय केवल इतना जानता था कि यहाँ पर बड़े सुन्दर बर्तन बनाये जाते हैं तथा यह बर्तन विश्व में अपनी अलग पहचान के लिये प्रसिद्ध हैं। परन्तु मुझे क्या पता था कि मुरादाबाद में केवल बर्तन ही नहीं बनाये जाते बल्कि बर्तन बनाने वाले असंख्य कारखानों के अलावा एक ऐसा कारखाना भी है जहाँ पर दूषित द्रष्यों के गर्त में पड़े मनुष्यों के अन्तःकरण को अपनी तपस्या से प्राप्त ज्ञान द्वारा शुद्ध करके वेदसान की चमचमाती पालिश की जाती है, वह मण्डी बाँस में स्थित एक दुकान है तथा मानव निर्माण करने वाले युग शिल्पी हैं श्री वीरेन्द्र नाथ गुप्तः जी–मेरे जीवन का निर्माण भी इसी कारखाने में हुआ। वैसे तो ऋषिवर दयानन्द सरस्वती का आर्य समाज मानव निर्माण करने वाला विश्व प्रसिद्ध कारखाना है ही जिसने अपना उद्देश्य ही बनाया "शारीरिक आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना"। (आर्य समाज का छठा नियम)

उपरोक्त नियम का आधार पवित्र वेदवाणी की घोषणा थी–"कृण्वन्तो विश्वमार्यम्" अर्थात सम्पूर्ण संसार को आर्य (श्रेष्ठ मानव) बनाओ। इतिहास साक्षी है इस कारखाने में लाखों मानवों को महामानव बनाया गया जिनके नाम यदि लिखे जायें तो एक विशाल ग्रन्थ की रचना हो जायेगी। परन्तु समय ने पलटा खाया आर्य समाज रूपी इस कारखाने के मानव निर्माण करने वाले कारीगर (शिल्पी) एक–एक करके इस संसार से बिदा होते चले गये और उनके स्थान पर आर्य समाज की बागडोर केवल आर्यों के हाथ में न रहकर नेताओं तथा राजनीतिक अवसरवादियों के हाथों में सिमटती गयी, परिणामतः आर्य समाज का काम दिनों दिन चौपट होता गया। ऐसे गम्भीर समय में भी इस कारखाने में कुछ कुशल शिल्पी बच रहे हैं जिनमें एक नाम श्री वीरेन्द्र नाथ जी का है जो मुरादाबाद में वेद ज्ञान की एक ज्योति जलाए हुए हैं।

मेरी ज्ञानपथ की यात्रा इस प्रकार प्रारम्भ हुई कि मैं मुरादाबाद में आकर इन्टर में पढ़ने लगा। मन में धार्मिक श्रद्धा होने के कारण मैं जहाँ भी कोई धार्मिक कार्यक्रम, शेरावाली के जागरण से लेकर यज्ञ, प्रवचन आदि में अपने पढ़ाई के समय में से कुछ समय निकाल कर जाता अवश्य था। मुरादाबाद कम्पनी बाग में उस समय शंकराचार्य जी महाराज के आने का कार्यक्रम था मुझे जब पता चला तो मैं भी कम्पनी बाग पहुंच

गया और अग्रिम पंक्ति में जाकर बैठ गया। थोड़ी देर बाद हवन प्रारम्भ हुआ मैं देखता रहा, परन्तु मन में लालसा उठी कि मैं भी हवन में शामिल हो जाऊँ, फिर सोचा कहीं कोई पण्डित मेरी इस धृष्टता पर डाँट न दे क्योंकि पौराणिकों में हवन का अधिकारी ब्राह्मण ही होता है, परन्तु मन नहीं माना, मैं धीरे–धीरे हवन वेदी तक खिसकते–खिसकते पहुँच गया, परन्तु अब भी मन में भय था कि कहीं कोई कुछ कह न बैठे। हवन होते समय जब भी गायत्री मन्त्र आता तो मैं भी सबके साथ जोर से बोलने लगता, इसी बीच वहाँ बैठे एक वृद्ध सज्जन जो हवन करा रहे थे ने मेरी ओर देखा। मैंने मन में सोचा अब शामत आई, परन्तु वह बड़े प्यार से बोले–तुम्हें तो मन्त्र बोलने आते हैं? मैं बोला हाँ कुछ कुछ। वे बोले यह हवन की पुस्तक लो और मन्त्र बोलो। इतना सुनते ही मैं खुशी से फूला न समाया। मैंने उन वृद्ध सज्जन जिनकी आयु लगभग ६० वर्ष से ऊपर लग रही थी चेहरे पर युवाओं जैसा तेज था तथा वाणी में मधुरता थी–के हाथ से हवन की पुस्तक ले ली, और मैं मन्त्र बोलने लगा। जब हवन सम्पन्न हो गया तो मैंने उन वृद्ध सज्जन से कहा–क्या आप यह पुस्तक मुझे दे सकते हैं? वे बोले इसका मूल्य ७५ पैसे है, दे दो और पुस्तक रख लो। मैंने ७५ पैसे देकर पुस्तक अपने पास रख ली। इसके पश्चात् शंकराचार्य जी का प्रवचन हुआ, बड़ा अच्छा लगा। प्रवचन समाप्त होने पर मैं घर चला गया। अब मैं रोजाना उन समस्त मन्त्रों का सुबह शाम गीता की भांति बड़ी श्रद्धा के साथ पाठ करने लगा जैसे पौराणीक करते हैं परन्तु यह कार्य केवल पाठ तक ही सीमित रहा, इसके आगे कुछ लाभ न मिला, तो मन में विचार आया कि कुछ अन्य धार्मिक ग्रन्थों को पढ़ना चाहिये जिनसे और अधिक ज्ञान प्राप्त हो सके। एक दिन मैं यही सोच रहा था कि कौन से ग्रन्थ खरीदें जायें। तभी मेरी नजर हवन वाली पुस्तक के पीछे छपी कुछ पुस्तकों पर पड़ी जो मुझे बड़ी सुन्दर और उपयोगी लगीं और दाम भी कम थे मैंने सोचा क्यों न इनको ही पहले खरीदा जाये। पुस्तकों का प्राप्ति स्थान लिखा था–वीरेन्द्र नाथ अश्विनी कुमार, प्रकाशन मन्दिर, मण्डी चौक, मुरादाबाद।

अतः मैं इन पुस्तकों की खोज में दो बार मण्डी चौक तक आया परन्तु मुझे दुकान नहीं मिल सकी। तीसरी बार जब आया तो एक दुकानदार से पूछने पर दुकान का पता चल गया। मैं दुकान पर पहुँच गया, दुकान पर पहुँच कर मुझे ऐसा लगा जैसे मैं किसी सन्त महात्मा के आश्रम पर आ गया हूँ। सामने ही वेद रखे थे कहीं पर गायत्री मन्त्र लिखा है कहीं पर अन्य धार्मिक ग्रन्थ रखे हैं। यह सब देख कर मुझे लगा कि मैं सही स्थान पर आ गया हूँ। मैंने पुस्तकों के बारे में पूछा तो श्वेत वस्त्रधारी धोती कुर्ता पहने, चेहरे पर दिव्य आभा से युक्त श्री गुप्तः जी के मुखारविन्द से वाणी की जो मधुर धारा प्रस्फुरित हुई उसने कानों को ही नहीं मन एवं आत्मा को भी मधुरता से शराबोर कर दिया। ऐसा हो भी क्यों नहीं क्योंकि श्री गुप्तः जी तो सच्चे वैदिक पथिक थे जो वेद कहता है–

जिह्वाया अग्ने मधु मे जिह्वामूले मधुलकम्।
ममदह क्रतावसो मम चित्तमुपायसि।।

मधुमन्ये निक्रमणं मधुमन्ये परायणम्।
वाचा वदामि मधुमद् भूयांस मधुसदृशः।।

अथर्ववेद १/३४/२–३

अर्थ–मेरी जिह्वा के अग्रभाग में मधु सदृश्य मधुरता रहे और जिह्वा मूल में अति अधिक मधुरता रहे, मधुरता मेरे चित्त तथा आत्मा में व्याप्त रहे। मेरा कार्यों में प्रवृत्त होना मधु के समान मधुर हो, मेरा कार्यों की समाप्ति तक पहुँचना मधु सदृश्य हो, वाणी से मैं मधु समान मधुर वचन बोलूँ और सब प्रकार से मधु के समान देखने वाला और दिखाने वाला मधुर दृष्टि वाला हो जाऊँ।

पहले तो मैं उनके दिव्य व्यक्तित्व को देखते ही प्रभावित हुआ परन्तु जब मधुरता से शराबोर वाणी सुनी तो और भी अधिक प्रभावित हुआ इसके पश्चात् बारी आई व्यवहार की, तो सुनिये–मैंने पुस्तकें ले लीं दाम पूछा तो बोले ले जाइये पढ़िये, मैंने दाम लेने को जब अधिक आग्रह किया तो उत्तर मिला आप विद्यार्थी हैं पहले इन पुस्तकों को पढ़ें यदि आपको पसन्द आयें तो मूल्य ले लेंगे।

मैं आदरणीय गुप्तः जी के इस व्यवहार को देखकर दंग रह गया, मैंने मन में सोचा मैं प्रथम बार इनसे मिला हूँ और इन्होंने लगभग ५०/– रु० की पुस्तकें मुझे बिना मूल्य के ही दे दीं! मैं पुस्तको को ले गया पढ़ा बड़ी अच्छी लगीं। अब यह क्रम बन गया कि नई–नई पुस्तकें ले जाना और पढ़ना। इस प्रकार मैं कई पुस्तकों को पढ़ चुका था। अब मेरे ऊपर से पौराणिकता की आस्था समाप्त हो चुकी थी परन्तु हिन्दुओं में व्याप्त जात–पात, ऊँच–नीच का भेद, बहुदेवताओं की पूजा आदि पाखण्डों के कारण हिन्दुओं के प्रति अनास्था और इस्लाम के प्रति आस्था मेरे अन्दर व्याप्त थी। इसी चीज को लेकर एक दिन मैं दुकान पर श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी से मिला और मैंने इस्लाम की प्रशंसा की, तब इस भ्रान्त धारणा का जो पर्दाफाश हुआ कि मेरी आँखे खुल गईं। मुझे यह ज्ञान हुआ कि इस्लाम में एकेश्वरवाद को मानते हुए भी कब्र की पूजा की जाती है। जाति प्रथा, ऊँच–नीच के नाम पर शिया, सुन्नी, बहावी, कादियानी, आगाखानी, बरेलवी, देववन्दी आदि हैं। जिस प्रकार एक ब्राह्मण अपनी बेटी को एक निचले वर्ग को नहीं विवाहता वैसे ही एक शेख अपनी बेटी को एक जुलाहे को नहीं विवाह सकता अर्थात जो बीमारी हिन्दुओं में है, मुसलमानों में भी वह महामारी की तरह व्याप्त है।

मैं आपकी प्रेरणा से आर्य समाज मन्दिर भी जाने लगा। वहीं पर एक दिन वही वृद्ध सज्जन दिखाई दिये जिन्होंने मुझे कम्पनी बाग में हवन की पुस्तक दी थी। यही महापुरुष योगाचार्य श्री रामसरन जी वानप्रस्थी थे। इन्हीं से मैं योगासन एवं प्राकृतिक चिकित्सा सीखने लगा। आदरणीय गुप्तः जी के बाद मुरादाबाद में मुझे यह दूसरे महापुरुष मिले। यह जान कर मुझे अति प्रसन्नता हुई कि योगाचार्य जी भी गुरुदेव श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के ही शिष्य हैं, इन्हीं से हवन, संस्कार, योग साधना और चिकित्सा की दीक्षा उन्होंने प्राप्त की है। इसी कड़ी में एक तीसरे महापुरूष मिले श्री वैद्य बनवारी लाल जी। वह अच्छे प्रवक्ता, निःस्वार्थ मिशनरी तथा प्रकाण्ड विद्वान् थे, उनके प्रवचनों में उनके स्वाध्याय की गहराई का पता नहीं लग पाता था। मैं उनके पास जब भी जाता,

आओ आर्यवीर! कह कर मुझे प्यार से पुकारते थे एवं वैदिक ज्ञान के रहस्यों को बतलाते थे। दुर्भाग्य से वे महापुरुष आज हमारे बीच नहीं हैं, उनकी केवल स्मृतियां ही शेष हैं, जो मुझे रह–रह कर याद आती हैं।

इस प्रकार से मुरादाबाद आकर मेरे जीवन की दिशा ही बदल गई। मैं जो घोर अज्ञानता के गर्त में डूबा हुआ था उन समस्त पाखण्डों को त्याग कर अपूर्व वेद ज्ञान मुझे प्राप्त हुआ जिससे वास्तव में जीवन का लक्ष्य क्या है यह पता चला। यह सब आदरणीय गुरूदेव श्री गुप्तः जी की कृपा से हो पाया जिन्होंने मुझ जैसे सैकड़ों नौजवानों का पथ प्रदर्शन किया और करते रहेंगे, आपकी मैंने जहाँ अन्य विशेषतायें देखीं वहाँ एक यह कि जो आपके पास आया वह आपका होके रह गया। इसी लिये मैंने श्री गुप्तः जी को 'पारसमणि' लिखा है। आपके पास जो आया वह खरा सोना बन गया। अब तक लगभग १५ वर्षें से मैं आपके सम्पर्क में रहा इस लम्बे समय में मैंने आपको जितनी निकटता से समझा, परखा है उतना सम्भवतः ही किसी ने समझा हो, गलती करने पर आपने किसी को छोड़ा नहीं, चाहे वह छोटा हो या बड़ा, समाज मन्दिर में कई बार मैंने स्वयं देखा कि वैदिक सिद्धान्तों के विपरीत किसी उपदेशक या कार्यकर्ता को बोलते या यज्ञ पर नियम विरुद्ध कार्य करते समय आपने तुरन्त टोका है।

मुझे याद है एक बार कुछ नौजवानों की एक सभा समाज मन्दिर में हुई जो पौराणिक विचारधारा के थे, उन्होंने अपना कार्यक्रम प्रारम्भ करने से पूर्व सरस्वती वन्दना गाई, तो गायन के तरीके को देखकर आपने तुरन्त कहा यह वन्दना वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध है, इसे न गाओ।

कवि जी का कविता पाठ—समाज मन्दिर के साप्ताहिक सत्संग में एक युवा कवि ने एक कविता सुनाई। कविता में एक पंक्ति यह थी "दीमक लग गयी है वेद की ऋच्चाओं को" यह पंक्ति सुनकर आप तुरन्त स्वाभिमान से खड़े हो गये और बोले—कवि जी कृपया इस पंक्ति में संशोधन कर लें, वेद तो अनादि है उसे दीमक कैसे लग जायेगी। हम प्रातः काल उठते ही 'प्रातरग्निम्' का पाठ, इसके बाद 'शनोदेवि०' से सन्ध्या, पश्चात् हवन, रात्रि को सोते समय 'यज्जाग्रतो' से शयन करते हैं। प्रातः से उठकर रात्रि को सोते समय तक की सारी दिनचर्या वेद मन्त्रों से भरपूर है, तो वेद की ऋच्चाओं को कैसे दीमक लग गई।

एक बार एक बन्धु सत्यार्थ प्रकाश लेकर आये, बोले इसमें स्वामी जी ने वेद के विपरीत लिखा है, आपने कहा दिखाओ कहाँ पर है? उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश खोलकर दिखाया, आपने पढ़ा और पैन निकाल कर वाक्य में एक कौमा लगा दिया और कहा अब पढ़िये, अब उन वृद्ध बन्धु जी ने जब पढ़ा तो तुरन्त बोले अरे! अब तो यह आपकी ही बात हो गयी, जो आप कह रहे थे। स्वामी जी ने वेद विरूद्ध कहीं पर नहीं लिखा।

एक मौलाना आपके पास आकर बोले—आप लोग दूध को शाकाहार बताते हो परन्तु वह गाय के खून से बनता है, इसलिये वह मांसाहार है। आपने कई तरह से समझाया, गाय जो चारा खाती है, उसके बने रस की दो गतियाँ होती हैं, एक से रक्त बनता है दूसरे से दूध। यदि खून से दूध बनता है तो रोजाना गाय जितना दूध देती

है उतनी ही मात्रा में रक्त निकल जाने पर गाय कुछ ही दिनों में मर जायेगी परन्तु दूध देती गाय मरती नहीं। यदि गाय को न दुहा जाये तो वह बेचैन हो जाती है, और दूध दोहन के बाद उसे शान्ति मिलती है और रक्त निकलने पर जीवन ही चला जाता है। मौलाना अपनी जिद पर अड़े रहे तब आप बोले–आपने अपनी माँ का दूध पिया है? वह बोले पिया है। आपने कहा–तब आपके कथनानुसार आपने अपनी माँ का रक्त पिया जो कि इस्लामी शरियत के खिलाफ है, क्योंकि कुरान शरीफ के सूरावकर के अनुसार खून पीना हराम है। जब आपने कुरान शरीफ में खोल कर दिखाया तो मौलाना दंग रह गये।

आपकी दुकान पर एक जैनी आते थे, जो कुतर्क के लिये विख्यात थे–एक दिन बोले आप गौ–पालन को कहते हैं परन्तु इससे हिंसा होती है, गाय के दूध पर पूरा अधिकार उसके बच्चे का होता है। मनुष्य द्वारा दोहन कर लेने से बच्चे की हिंसा होती है। आप तपाक से बोले–जैन साहब! गाय बच्चे की आवश्यकता से कई गुना दूध अधिक देती है और बच्चे को जितना दूध चाहिये उतना वह पी लेता है शेष को मनुष्य दोहन कर उसका सदुपयोग ही करता है। पहले तो बच्चा गाय का सारा दूध पियेगा ही नहीं और यदि जबरना पिला भी दिया गया तो वह बीमार पड़ जायेगा। और जैसे–जैसे बच्चा चारा खाने लगता है वैसे–वैसे दूध को पीना कम कर देता है। ऐसी अवस्था में शेष दूध का दोहन कर लेना क्या हिंसा हो सकती है? जैन साहब चुप हो गये और बात टालने के लिये कहने लगे–कर्मफल देने वाला कोई ईश्वर या भगवान नहीं है, जीव स्वयं भोगता है जिस प्रकार सुरा पीने पर उसे नशा कोई और नहीं देता स्वयं ही हो जाता है इसी प्रकार कर्म अपना फल जीव को स्वयं देता है। आपने उत्तर दिया यदि यह बात सत्य है तो इसमें बड़ा अनर्थ हो जायेगा–जैन साहब क्यों? आपने कहा–जिस प्रकार सुरा न पीने वाले को एक दो चम्मच में बहुत नशा और पूरे पियक्कड़ को एक बोतल में कुछ नशा होता है। इस न्याय व्यवस्था के अनुसार अधिक पाप करने वाले को कम दण्ड और किन्चित मात्र पाप करने वाले को अधिक दण्ड मिला, क्या यह उचित है? कर्मफल का न्याय करने वाला अलग से ही होता है, वहीं न्यायकारी परमेश्वर है।

एक बार एक मौलाना ने कहा कि तनासुख (पुनर्जन्म) से हानि होती ही है। आपने कहा कैसे? मौलाना बोले आज आप भारत में पैदा होकर वेद की तरफदारी कर रहे हैं, मरने के बाद आप अमरीका में पैदा होने पर ईसाई मत की, चीन में पैदा होने पर नास्तिक मत की और अरब में पैदा होकर कुरान शरीफ की तरफदारी करेंगे। इस प्रकार आपको निजात (मुक्ति) तो कभी नहीं मिलेगी, और फिर सच्चाई क्या रही? आप बोले पहली बात तो यह है कि मैंने मरने के बाद अरब में जन्म लिया तो मैं कुरान की बात मानूंगा? मौलाना बोले हाँ। आपने कहा तो कुरान में तनासुख नहीं और वेद में है, तो बात कौन सी सही रही? रही मुक्ति की बात तो मुक्ति कर्म से मिलती है पुस्तकों पर ईमान लाने से नहीं, सार्वभौमं सत्य को मानने से मिलेगी और मैं सब जगह उसे ही स्वीकार करूँगा। पुनर्जन्म से कोई हानि नहीं सत्य ही उजागर होता है।

मैं आपकी दुकान पर बैठा हुआ था कि रिक्शा पर माँ के साथ बच्चे बैठे थे, भीड़

अधिक होने के कारण जब रिक्शा रुका तो पीछे वाले रिक्शा की टक्कर लगी, और एक बच्चा निकलकर जमीन पर गिर पड़ा। दुकानदार आदि सब देख कर हँसने लगे। आपने तुरन्त नंगे पैर दौड़ कर बच्चे को जमीन पर से उठा कर उसकी माँ को दे दिया। यह था आपका वात्सल्य।

आपकी दुकान पर एक अपरिचित मुस्लिम बुजुर्ग वहीखाता लेने आये, खाता तोल कर मूल्य बताया, उनके पास पैसे कुछ कम थे। बुजुर्ग ने कहा—मेरे पास कुछ पैसे कम हैं, यदि आपको मेरा यकीन हो तो आप लिख लें मैं दे जाऊँगा, इतना सुनकर आप बोले—मुझे यकीन की कोई आवश्यकता नहीं न लिखने की, हाँ यदि आपको अपने ऊपर यकीन है तो ले जाइये, मैं आपका नाम नहीं लिखूँगा, यदि आपको देना है तो बिना लिखे ही दे जायेंगे और यदि नहीं देना है तो लिखने पर भी नहीं मिलेगा, मैं लिखकर क्यों परेशानी मोल लूँ? इस उत्तर को सुनकर वह मुस्लिम बुजुर्ग बोले—"माशाः अल्लाह! इस जमाने में आप जैसे नेक इन्सान भी इस दुनिया के पर्दे पर हैं।"

मुनि कुटिया समान दुकान पर मैं गुरुवर श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी से भेंट करता ही रहता हूँ। मैं कह सकता हूँ कि इन जैसा विद्वान्, स्वाध्यायशील, मननशील, वेद का मन्थक, आर्य सिद्धान्तों का मर्मज्ञ और चिन्तक दूर—दूर तक नहीं है। इनसे वेद के विषय में, आर्य सिद्धान्तों के विषय में और अन्य ऐतिहासिक, व्यक्तियों के बारे में अथवा महापुरुषों के सम्बन्ध में चर्चा कर पूरी जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। मैंने स्वयं ऐसा देखा है। मैंने भी एक दिन गुरूदेव से निवेदन किया कि आर्य समाज, मण्डी बाँस, मुरादाबाद की कोई विशेष घटना बताने की कृपा करें। तब उन्होंने बताया—

आर्य समाज, मण्डी बाँस, मुरादाबाद का वार्षिकोत्सव सदैव से दीपावली पर ही होता रहा है, १६३१ ई० के वार्षिकोत्सव पर प्रथम दिन कोई भी विद्वान् न आ सका। प्रातःकालीन सभा जैसे—तैसे पूर्ण हो गई। रात्रि की सभा को सफल बनाने के लिये आर्य समाज मंडी बाँस के तद्कालीन प्रधान जी किसरौल गंगा मन्दिर के महन्त कृष्णानन्द जी से मिले और रात्रि की सभा में उपदेश करने को कहा। महन्त जी ने इसे स्वीकार किया और न्याय दर्शन पर ढाई घन्टे बराबर बोलते रहे।

मुरादाबाद के साहू श्याम सुन्दर जी ने गुरूकुल महाविद्यालय को धन दिया था, जिसके ब्याज से प्रतिवर्ष कक्षा दस और स्नातकोत्तर परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण छात्र को एक—एक स्वर्ण पदक दिया जा सके। यह दोनों पदक आर्य समाज मण्डी बांस के पूर्व मन्त्री श्री आत्म स्वरूप जी वैद्य को मिले थे जो आज तक उनके पास सुरक्षित रखे हैं। श्री आत्म स्वरूप जी ने गुरूकुल महाविद्यालय में १६२० ई० में प्रवेश किया था।

महन्त कृष्णानन्द जी गुरूकुल महाविद्यालय में १६१० ई० से १६२४ ई० तक न्याय दर्शन के अध्यापक रहे थे। महन्त जी के पढ़ाने और समझाने का प्रकार बड़ा ही विचित्र था। एक बार कुछ छात्रों के साथ घूमने निकले, खेत के पास पहुँच कर खरबूजे खरीद कर सबको खिलाये बाद में छात्रों से कहा कि यह छिलके और बीज गंगा में बहा दो वह बहा आये। सब छात्रों को बैठाकर महन्त जी ने कहा—बच्चों तुम यह सिद्ध करो कि तुमने खरबूजे खाये हैं। इस प्रकार क्रियात्मक रूप से तर्क करने और उसका

समाधान खोजने की सामर्थ्य बुद्धि में उत्पन्न होती है। सन् १९२४ ई० में महन्त जी गुरुकुल छोड़ कर मुरादाबाद गंगा मन्दिर के महन्त बन गये।

सनातन धर्म सभा के कार्यक्रम पर मुरादाबाद में १९३३ ई० में श्री गिरधर शर्मा महामहोपाध्याय जयपुर निवासी आये थे। सनातन धर्म सभा की ओर से इनके सम्मान में श्री गोपाल दत्त पन्त साहित्याचार्य, राजकीय माध्यमिक विद्यालय के अध्यापक ने संस्कृत भाषा में एक सम्मान पत्र छापा था। महन्त कृष्णानन्द जी ने कहा "संनातन धर्म" शब्द नहीं बनता, यह शब्द ही गलत है। 'सनातन धर्म' में समास नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें सामर्थ नहीं है। इस प्रकार 'सनातन' तो सदा से रहने वाला है परन्तु 'धर्म' परिस्थिति जन्य होता है। इस विषय पर महन्त जी ने आर्य समाज की ओर से पं० गिरधर शर्मा जी को शास्त्रार्थ के लिये चुनौती दी। इस पर गिरधर शर्मा ने कहा—आप न्यायिक हैं मैं आपसे शास्त्रार्थ करने में समर्थ नहीं। इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि 'सनातन धर्म' शब्द गलत है सही नहीं।

इसके पश्चात काशी में महन्त कृष्णानन्द जी से इसी विषय पर जोरदार शास्त्रार्थ हुआ, काशी का कोई भी विद्वान् पण्डित उन्हें परास्त नहीं कर सका। इस प्रतिभा से चिढ़ कर प्रतिशोध की ज्वाला काशी के पं० वर्ग में भड़क उठी। फलस्वरूप रात्रि के समय दूध में विष देकर उस तार्किक दिव्य विभूति महन्त कृष्णानन्द को सदा—सदा के लिये काशी में ही सुला दिया गया।

इस प्रकार की सैकड़ों घटनायें आपके जीवन की हैं, सब को दे पाना सम्भव नहीं, हांडी का पता एक दो चावल से ही लग जाता है। आपने सैकड़ों युवकों को वैदिक धर्म की ओर प्रेरित करने के लिये निःशुल्क साहित्य ही नहीं दिया बल्कि उनका पिता तुल्य बनकर संरक्षण भी किया, गुरुकुल भिजवा कर वैदिक धर्म की विचार धारा का पथिक बनाया। अनेक परिवारों की शुद्धि करके वैदिक धर्म में प्रवेश दिलाया। आर्य समाज के प्रचार—प्रसार हेतु आप सदैव अपने पैसे से पुस्तकें छपवाकर निःशुल्क बांटते रहते हैं। नई आर्य समाजों को सदैव सहायता रूप कुछ न कुछ देते ही रहते हैं।

आप एक अच्छे लेखक हैं अब तक ३५ पुस्तकें लिखी हैं जिनमें से सन्तति निर्माण हेतु आपने जो अमूल्य साहित्य लिखा वह इस युग को आपकी एक अमूल्य देन है। वैदिक ज्ञान से परिपूर्ण होने के साथ—साथ बाइबिल एवं कुरान मजीद के अच्छे जानकार हैं। आपकी अपूर्व तर्क शक्ति एवं विद्वत्ता का पता तो शंका समाधान के समय पर चलता है। सबसे बड़ी बात यह है कि शंका समाधान आप जिस मधुरता के साथ करते हैं, उसे देखकर पूज्य पं० रामचन्द्र देहलवी जी की स्मृति हो आती है।

आप सिद्धान्तों के साथ—साथ कर्मकाण्ड में भी आस्था रखते हैं, ऋषि के बताये कर्मकाण्ड पर चलते हैं। प्रातःकाल उठकर सबसे पहले 'प्रातरग्नि' का पाठ, स्नान करते समय मन्त्र पाठ, गायत्री जाप, सन्ध्या, यज्ञ, योगाभ्यास करते हैं तथा वर्ष में एक बार ५ दिन का वृहद यज्ञ सत्संग का आयोजन स्वयं अपने साधनों से अपने ही घर पर रखते हैं। आपका सम्पूर्ण जीवन श्रेष्ठ आर्य वैदिक मिशनरी जैसा बीता है।

क्रमशः पृष्ठ ६९ पर

बोधगम्य अभिव्यक्ति



ईश्वर चन्द गुप्त 'ईश'

श्री वीरेन्द्र गुप्त: जी मुरादाबाद नगर के प्रतिष्ठत एवं प्रतिभावान व्यक्तित्व के सुयोग्य तथा सहृदय आर्य धर्मानुरागी साहित्यकार हैं। शिष्टता तथा शालीनता आपके स्वभाव की विशेषता है।

आश्चर्य तो यह है कि, अल्प शिक्षित, सामान्य व्यापारी वर्ग में, मध्यम श्रेणी के गार्हस्थ्य धर्म की परिपाटी को संजोते, जीवन–संघर्ष से जूझते हुए भी आपने छोटी–बडी ३४ पुस्तकों की रचना कर डाली है, और गंगा–प्रवाह की भांति वह धारा अब भी हँसती खेलती अविरल रूप से तरंगित हो रही है। यह आपके कठिन परिश्रम, लगन तथा भारतीय संस्कृति एवम् धर्म के प्रति अटूट निष्ठा का परिचायक है। नगर में, महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के सत्य–पथ की ज्योति जगाने में आपका योगदान सचमुच सराहनीय है। वैसे आप नगर की कई प्रतिष्ठित संस्थाओं से भी जुड़े हुए हैं।

लगता है–आपका वेद, शास्त्र, उपनिषद् आदि संस्कृत के प्राचीन सारगर्भित ग्रन्थों का अध्ययन गम्भीर है। इसीलिये शास्त्रोक्त रहस्य विषय की जटिलता को आप अपनी सरल लेखनी से इतनी बोधगम्य अभिव्यक्ति दे पाए हैं। सटीक भाषा में, कठिन से कठिन सिद्धान्तों को अपनी सहज भाषा में सोदाहरण स्पष्ट कर पाये हैं। वन्द्य 'श्री राम चरित मानस' के अलभ्य 'पुत्रेष्टि यज्ञ' का विधान, मन्त्र तथा समीक्षा भी प्रस्तुत करने में आपने अथक परिश्रम किया है। 'इच्छानुसार सन्तान' पुत्र प्राप्ति का साधन, गर्भावस्था की उपासना, आदि में आपने काम–शास्त्र सम्बन्धी विषय को प्राचीन, संस्कारित रूप से प्रदर्शित किया है। सच तो यह है कि भारत–माता के सुपुत्र सत्यान्वेषक स्वामी दयानन्द जी के प्रशस्त–पथ के अनुसरण का दायित्व आपने संभाल रखा है। आदि ग्रन्थ वेदों की क्लिष्ट संस्कृत वाणी को अपनी रचनाओं में मुखरित कर, उसे अपनी सरल भाषा में पिरो कर स्पष्ट, सुगम तथा बोधगम्य बना दिया है। 'आनुषक्' लघु कहानी संग्रह में तो आपने बालकों को नैतिकता तथा शिक्षा की घूँटी ही पिला दी है साथ में बच्चों के द्वारा बडों को भी अच्छी सीख दी है। बड़ी ही उपयोगी एवम् पठनीय पुस्तक है।

अन्त में, मेरी जगन्नियन्ता से प्रार्थना है कि आज के भटके सभ्य समाज को आप की मार्ग–दर्शक मूक वाणी, आपके साहित्यिक स्तम्भ से इस धरा को सदा ही आलोकित करती रहे जिससे नैतिकता की सत्य ज्योति का पथ दर्शन होता रहे।

एम०ए०, बी०टी०
सेवा निवृत प्रधानाचार्य
पी०एल०जे०एस० रस्तोगी इ० कालिज
८८, फैजगंज, मुरादाबाद

श्रेष्ठ आर्य कौन है?


डा० सेवाराम त्यागी

मैं सन् १९७१ से १९८८ तक जनपद मुरादाबाद में पुलिस प्रशिक्षण महाविद्यालय में प्राध्यापक के पद पर एवं लोक अभियोजक के पद पर कार्यरत रहा। इसी बीच श्री वीरेन्द्र जी गुप्तः के सम्पर्क में आया। मुरादाबाद नगर, जनपद मुरादाबाद, उ०प्र० एवं भारतवर्ष के आर्य समाजियों में यदि मुझ से पूछा जाये कि कौन श्रेष्ठ है तो मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूँ कि श्री वीरेन्द्र जी मुरादाबाद नगर में और जनपद मुरादाबाद में प्रथम श्रेणी के क्रमांक १ पर आर्य समाजी हैं।

भारतवर्ष में यदि मुझसे कोई १० व्यक्तियों के नाम पूछे तो मैं उनमें एक नाम श्री वीरेन्द्र जी का लूँगा। श्री वीरेन्द्र जी की प्रेरणा से ही मैंने हरथला आर्य समाज, मुरादाबाद में स्वामी विज्ञानानन्द जी सरस्वती के निर्देशन में चारों वेदों का महापरायण यज्ञ अर्थ सहित सम्पन्न कराया। इन्हीं की प्रेरणा से स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा रचित प्रथम संस्करण सत्यार्थ प्रकाश जो कि स्वामी ज़ी ने सन् १८७४ में अपना सदुपदेश लिपिबद्ध कराया था, जो अद्‌भुत संग्रह है। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की एक–एक लाइन सुरक्षित करने योग्य है। इसी उद्‌देश्य से श्री वीरेन्द्र जी की प्रार्थना से मैंने सम्पूर्ण सत्यार्थ प्रकाश की छाया प्रति करायी इसमें राजा जय कृष्णदास के परिवार का पूरा सहयोग रहा। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने स्वामी ओमानन्द जी, जो गुरुकुल, झज्जर, रोहतक तथा कन्या गुरुकुल, नरेला, दिल्ली के संस्थापक हैं तथा परोपकारिणी सभा के प्रधान रह चुके हैं और इस समय कार्यवाहक प्रधान हैं, की प्रेरणा से "धर्म निर्णय" पुस्तक के चारों भागों का प्रकाशन कराया। इस धर्म निर्णय पुस्तक को ही पढ़कर स्वामी ओमानन्द जी ने आर्य समाज में प्रवेश किया था और आज समस्त भू–लोक में उन्हें सर्वश्रेष्ठ आर्य समाजी कहने में मुझे कोई संकोच नहीं है।

श्री स्वामी सत्यप्रकाश जी, बी०एस०सी० के पूज्य पिता श्री स्व० गंगाप्रसाद जी का जीवन चरित्र (भूलोक में सूर्य के समान चमकते हुए आर्य समाजी प्रोफेसर राजेन्द्र जिज्ञासु) जी द्वारा लिखित का प्रकाशन कराया। आर्य जगत के प्रबुद्ध आर्य समाजियों को यह भलीभांति ज्ञान है कि स्वामी ओमानन्द सरस्वती एवं स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती के अपने निजी प्रकाशन हैं और उन्होंने अनेकों पुस्तकें प्रकाशित की हैं परन्तु उपरोक्त दोनों पुस्तकें प्रकाशित करने का श्रेय श्री वीरेन्द्र जी गुप्तः को ही प्राप्त हुआ। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के अपने ही ३० से ऊपर प्रकाशन हैं। श्री गुप्तः जी ने गुरुदेव दयानन्द सरस्वती जी महाराज द्वारा रचित आचार्याभिविनय के भाष्य का काव्यानुवाद 'विनयामृत सिन्धु' के नाम से प्रकाशित कर एक बहुत बड़ा साहसिक कार्य किया है जिसका श्रेय उन्हीं को है। उस विषय में कुछ भी कहना मेरे लिये उचित नहीं है। स्वामी विज्ञानानन्द जी सरस्वती, संचालक वैदिक साधन आश्रम, रोहतक की प्रेरणा से श्री वीरेन्द्र जी गुप्तः

ने आर्य समाज, मण्डी बांस में चारों वेदों का महापारायण यज्ञ कराया एवं अपने निवास पर भी चारों वेदों का महापारायण यज्ञ स्वयं सम्पन्न किया और पुनः कर रहे हैं।

इस भूलोक पर हमें परमात्मा ने १०० वर्ष सुखपूर्वक रहने के लिये भेजा है परन्तु हम अपनी ही गलतियों से वैदिक धर्म का पालन न कर के कभी—कभी दुःख उठाते हैं। महापुरुषों के जीवन चरित्र भूलोक पर सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिये प्रकाश स्तम्भ का कार्य करते हैं। जो समस्यायें उनके सामने आयीं, उन्होंने उनका किस प्रकार निदान किया, उसी अनुभव को हमें ग्रहण कर के अपने जीवन को एवं अन्यों के जीवन को सुखी बनाने के लिये प्रयत्न करते रहना चाहिए। इसी कारण मैंने श्री वीरेन्द्र जी गुप्तः के विषय में अपना उपरोक्त मत दिया है।

एक घटना का मैं प्रत्यक्षदर्शी नहीं हूँ। मुझे श्री बलदेव अग्निहोत्री शास्त्री जी ने सुनाई थी। वीरेन्द्र जी पर पारिवारिक सम्बन्धियों एवं कथित आर्य समाजियों ने अनेक बार ऐसे विचार व्यक्त किये कि कोई सामान्य शक्ति का आर्य होता तो सहन शक्ति खो देता। एक मात्र युवक पुत्र के अन्तेष्टि संस्कार में वेद मन्त्रों के उच्चारण जब सम्पूर्ण मन्त्रों से आहुति दी जा चुकी तो वीरेन्द्र जी ने पुनः—पुनः और आहुतियाँ दिलवाकर अपना तथा परिवार व परिचितों का शोक दूर किया।

एक वाक्य में मैं कहूँ तो वीरेन्द्र जी स्वयं में एक संस्था हैं। इन्होंने आर्य समाज को सींचा है।

विधि परामर्शी
अपराध शाखा, अपराध अनु० विभाग
उ० प्र० लखनऊ

वाह! गुप्तः जी



मेरा भाव श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी "प्रकाशन मन्दिर मण्डी चौक, मुरादाबाद" से है। मैं मुरादाबाद में ५ बार प्रचार करने गया हूँ, दो बार उस समाज में जिसका सम्बन्ध वीरेन्द्र जी के साथ है तथा इस आर्य समाज की स्थापना महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने अपने पवित्र कर कमलों से की थी, और तीन बार वैदिक सत्संग सभा के उत्सवों पर प्रचारार्थ गया हूँ, लिखने का भाव यह है कि श्री वीरेन्द्र जी लगभग हर सभा में आते थे, तथा नोटबुक भी साथ रखते थे, किसी विद्वान् ने हृदय स्पर्शी बात कही, वहीं नोट कर लेते अर्थात् मोती चुनते रहते थे।

महात्मा प्रेम प्रकाश वानप्रस्थी

संसार में ऐसे व्यक्ति बहुत हैं जो बहुत विद्वान हैं, परन्तु अपनी विद्वत्ता से किसी को लाभ नहीं पहुँचा सकते, कई विद्वान् तो कोई बात पूछने पर क्रोधित हो जाते हैं, कई लेखक तो हैं परन्तु क्या लिखना चाहिये नहीं जानते। मेरा भाव यह है कि विद्वान् में जो गुण होने चाहिये विशेषकर प्रसन्नचित्त और नम्रता, वह गुण भी आप में शोभा पाते थे। मुझे याद है कि जब हम आपके घर भोजन करने जा रहे थे आप भी साथ ही चल रहे थे तथा घर में भोजन से पहले और बाद में भी नम्रता का समुद्र उछल रहा था।

आपने अपनी कृति को लगभग तीस पुस्तकों की आकृति दी अर्थात् लिखीं जिन में वैदिक सिद्धान्तों का मर्म और दर्शन होता है। महर्षि के ग्रन्थों से प्रेरणा लेकर आपने सच्चे हृदय से समाज सेवा की भावना और प्रेरणा देने के लिये पुस्तकें लिखी हैं। लूट खसोट करने के लिये नहीं जो आपकी महानता है। आपकी विशेषकर पुस्तक "वेद–दर्शन" आपके स्वाध्याय की पूंजी और कुंजी है। आपने जो परिश्रम वेद मन्त्रों को ढूँढ कर विषय के अन्तर्गत चयन किया है इसके लिये पुरोहित वर्ग आपका युगों तक ऋणी रहेगा। वेद मन्त्रार्थ करने में हृदय स्पर्शी भाषा है तथा पवित्र प्रेरणा देने वाली है। पुस्तक में आध्यात्मिकता के साथ कर्मठता भी झलकती है। निश्चय ही प्रयास बहुत ही स्तुत्य है अतः सफलता अवश्यम्भावी है।

एक कहानियों की पुस्तक 'आनुषक' मिली जिसमें बच्चों को प्रश्न करने, समझाने के ढंग के साथ–साथ प्रेरणा भी मिलती है। जो महान सेवा की है। बड़ों का साहित्य बहुत दिया अतः एक पुस्तक बच्चों को भी देकर बहुत ही अच्छा कार्य किया है। भगवान श्री वीरेन्द्र जी को युगों–युगों तक निरोग रखें जिससे ज्ञान की गंगा बहती रहे।

श्री आचार्य भगवत सहाय जी, आचार्य ऋषि पाल जी, मन्त्री अम्बरीष कुमार जी आपने जो "श्री वीरेन्द्र जी गुप्तः" के सम्मानार्थ ग्रन्थ निकालने का संकल्प किया है, यही एक आवश्यक और प्रशंसनीय पग है क्योंकि हम देखते हैं कि स्कूल में यदि कोई लड़का मैरिट में आता है तो प्रिंसिपल महोदय उसकी खूब प्रशंसा करते हैं परन्तु

श्री वीरेन्द्र जी ने तो सबको मैरिट में लाने के लिये साहित्य का सृजन किया है। अतः आपका प्रयास स्तुत्य है।

आर्य कुटिया
धूरी (पंजाब) १४८०२४

पृष्ठ ६४ का शेष

कर्मकाण्ड पर चलते हैं। प्रातः काल उठकर सबसे पहले 'प्रातरग्नि' का पाठ, स्नान करते समय मन्त्र पाठ, गायत्री जाप, सन्ध्या, यज्ञ, योगाभ्यास करते हैं तथा वर्ष में एक बार ५ दिन का वृहद यज्ञ सत्संग का आयोजन स्वयं अपने साधनों से अपने ही घर पर रखते हैं। आपका सम्पूर्ण जीवन श्रेष्ठ आर्य वैदिक मिशनरी जैसा बीता है।

वीरेन्द्र गुप्तः एक ऐसे व्यक्तित्व का नाम है जिसका यश संसार में फैला है और फैलता रहेगा। मुरादाबाद नगर का यह गौरव और हम सब का सौभाग्य है कि श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी वैदिक मिशनरी विद्यमान हैं।

परमेश्वर करे वह हमेशा हम लोगों के बीच विद्यमान रहें और दिव्य ज्योति स्तम्भ के रूप में हम लोगों का मार्ग दर्शन करते रहें और हम 'पारस मणि' से छूकर सोना बनते रहें।

मिमाहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः।
गाय गायत्रमुक्थ्यम्।। ऋग् १/३८/१४

हे विद्वान! तू वेद वाणी को मुख में ले कण्ठस्थ करके मेघ के समान गर्जन करते हुए दूर–दूर तक फैला।

सिद्धान्त शास्त्री
वैदिक प्रवक्ता
ग्राम गौढा (बदायूँ)

अध्ययन और सम्पादन के धनी श्री वीरेन्द्र गुप्तः

जीवन और लेखन के उत्कर्ष को प्राप्त श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी अपने अनुगामियों और विशेषकर आर्य समाज में कार्यरत सभी स्वयं सेवकों के बीच एक मेधावी गद्यकार हैं। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी उन चिन्तनशील अध्ययन कर्ताओं में से हैं, जो लेखन के क्षेत्र में उपस्थित होकर किसी एक पक्ष पर ही स्थिर नहीं रह जाते, बल्कि यह एक ऐसे गद्यकार हैं जो समाज की चेतना से निरन्तर जुड़े रहते हैं।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी उत्तर भारत में स्थित मुरादाबाद नगर में निवास करते हैं। हिन्दी साहित्य में मुरादाबाद नगर का एक ऐतिहासिक स्थान है। हिन्दी कहानी के जन्म दाताओं में एक पं० ज्वालादत्त शर्मा और कविता के बदलते स्वरूप में छन्द और गति के पक्षधर श्री जगदीश, एम०ए० (ज्ञान पीठ से सम्बद्ध रहे), मुरादाबाद नगर के ही व्यक्तित्व थे। वर्तमान में भी मुरादाबाद का साहित्यिक योगदान कम नहीं है। जहाँ तक मेरा अध्ययन है मुझे मुरादाबाद के तीन साहित्यकारों की रचनायें पढ़ने का अवसर मिला है। कहानी व नाटक के क्षेत्र में श्री वीरेन्द्र मिश्र, कविता के श्रेत्र में भी पुष्पेन्द्र वर्णवाल और निबन्ध शैली में हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे श्री वीरेन्द्र गुप्तः, आधुनिक काल में मेरे अध्ययन में आये मुरादाबाद के चर्चित साहित्यकार हैं। यद्यपि तीनों का क्षेत्र भिन्न–भिन्न है, परन्तु वीरेन्द्र गुप्तः जी का लेखन एक ओर जहाँ वैज्ञानिक अध्ययन का 'इच्छानुसार सन्तान" और 'पुत्र प्राप्ति का साधन' नामक दो पुस्तकों में प्रस्तुत करता है, वहाँ उनकी अधिकांश पुस्तकें आर्य समाज के सिद्धान्तों को लक्ष्य करके प्रस्तुत की गयी हैं, जो वैदिक परम्परा को एक प्रकार से जन–साधारण में अवगत कराने का प्रयास है। वैसे वीरेन्द्र गुप्तः जी ने एक हिन्दी उपन्यास 'लौकिट' भी लिखा है।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी की नवीनतम साहित्यिक कृति 'आनुषक्' है, जो एक कहानियों का शिक्षाप्रद संग्रह है। लेखक ने अपनी इन कहानियों में मन की जिज्ञासाओं को अनुबद्ध कर लेखन को नई दिशा दी है। यह सूत्रात्मक कहानियाँ अत्यन्त प्रभावकारी व रचनात्मक हैं।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी द्वारा सम्पादित एक कृति 'वेद–दर्शन' अत्यन्त महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके अध्ययन से श्री गुप्तः जी के गहन अध्ययन और सम्पादन क्षमता का बोध होता है। इस विशाल ग्रन्थ में श्री गुप्तः जी ने अपनी सम्पादन क्षमता से वेद–साहित्य के उन अज्ञात सूक्तों को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का लेखकीय चमत्कार इस बात में भी है कि वह बुरा लिख ही नहीं सकते। आर्य समाज की यह ज्योति हमें स्तम्भित कर देने वाली गद्य क्षमता

क्रमशः पृष्ठ ७३

व्यक्तित्व का परिष्कार ही प्रतिभा परिष्कार है



सुरेन्द्र कुमार 'सुकुमार'

किसी भी मनुष्य के व्यक्तित्व, कृतित्व का मूल्यांकन करते समय यह ध्यान में रखना चाहिए कि उसका विकास किस परिस्थिति एवं परिवेश में हुआ है। किन दुस्तर अवरोधों को पार कर वह वर्तमान स्तर तक पहुँचा है, इस का भी अपना महत्व है। प्रतिभा का विकास अनायास ही नहीं होता। सोना भट्टी में तपकर ही कुन्दन बनता है।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी की स्कूली शिक्षा बहुत साधारण रही। इन को बचपन से ही अपने पिता श्री भूकन सरन जी के व्यवसाय में सहयोगी के रूप में संलग्न होना पड़ा। उसी व्यवसाय से वह अब तक जुड़े हैं एवं उस कार्य में दिन के बारह घंटे का समय लगाते हैं।

बचपन से ही आर्य समाज की विचार धारा के सूक्ष्म जल बिन्दु के रूप में विकसित होते हुए वह आज आर्य समाज की विशाल वेगवती जलधारा के रूप में परिलक्षित हो रहे हैं।

अपने परिवार के प्रमुख होने के नाते परिवार के दायित्व का निर्वाह भी सफलता पूर्वक कर रहे हैं। इन सबके बाद शेष बचे समय का सदुपयोग करके वैदिक ज्ञान के प्रचार एवं प्रसार में इस स्तर तक पहुँचना साधारण मनुष्य के लिये अत्यन्त दुष्कर है। यह तो साधना है।

किसी व्यक्ति का साहित्यिक मूल्यांकन उसके द्वारा सृजित साहित्य से ही किया जा सकता है। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का साहित्य तथ्य पर आधारित है। तथ्य कल्पना प्रसून न होकर अध्ययन का नवनीत होता है। जिसके लिये समय श्रम एवं साधना का बल आवश्यक है।

बहुत कम साहित्यिक व्यक्तियों के साहित्य एवं निजी वैचारिक जीवन में एक रूपता के दर्शन हो पाते हैं वरन् विरोधाभास ही दृष्टिगत होता है। स्वयं को गर्वपूर्वक सरस्वती पुत्र कहने वाले अधिकतर व्यक्ति लक्ष्मी की आराधना में तत्पर दिखाई देते हैं। माँ सरस्वती की उपासना उनके लिये साधन मात्र होती है, साध्य नहीं।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी तन से गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी मन से ऋषि समान वेद एवं वेद संस्कृति के विस्तार विकास के लिये समर्पित जीवन यापन कर रहे हैं।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी की एक विशेषता यह है–वेद एवं वेद संस्कृति के उद्घोषक होते हुए भी उनमें दूसरे व्यक्ति के विचारों को नकारने की दुराग्रह पूर्ण प्रवृति नहीं है। दूसरे व्यक्ति के विचारों को धैर्य पूर्वक सुनने के उपरान्त वह उसके विचारों का तर्क पूर्ण खंडन अथवा मंडन करते हैं।

आज कल के स्वार्थ पूर्ण अवसर वादी युग में पग–पग पर वैचारिक मतभेद होते हुए भी अपने सुविचारित पथ पर अडिग रह कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने वाले बिरले ही होते हैं।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी स्वभाव के नम्र, मिलनसार, मृदुभाषी, सत्यानुरागी एवं सादा जीवन उच्च विचार की प्रतिमूर्ति हैं। अधिकतर साहित्यकार आत्मानुरागी, एकान्तवासी होते हैं, इसके विपरीत श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी सामाजिक क्रियाकलापों के प्रति सचेष्ट, हर परिचित प्रिय व्यक्ति के सुख–दुःख में समभागी रहते हुए अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने में तत्पर रहते हैं।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी कथन एवं आचरण में एक रूपता के पक्षपाती हैं। इनके जीवन का ध्येय वेदवाणी का सार्थक प्रसार करना है।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के साहित्य से मेरा सर्वप्रथम परिचय १९८८ में प्रकाशित उनकी पुस्तक 'वेद वेदांग परिचय' के माध्यम से हुआ। इस पुस्तक में वेद एवं वेद के रचयिताओं से पाठकों का परिचय कराने का सफल प्रयास किया गया है, इस के माध्यम से पाठकों को बताया गया है कि वेद क्या है? वेदों का भाष्य किस–किस ने किया? वेदों की शाखा–उपशाखायें क्या हैं? उन के क्या नाम हैं? इनके भाष्यकारों का विस्तृत परिचय एवं संसार के उच्चकोटि के दार्शनिक, चिंतकों की दृष्टि में वेदों का क्या महत्व है? दूसरे धर्म ग्रन्थों पर वेदों का प्रभाव, पाश्चात्य विद्वानों, मनीषियों द्वारा वेद गौरव का गान, आदि का विस्तृत वर्णन उक्त ग्रन्थ में किया गया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने मानव–जीवन के कल्याण हेतु जिन दस नियमों की घोषणा की है, गुप्तः जी ने उन्हीं दस नियमों की सरल भाषा में व्याख्या कर जन–जन का जीवन अनुशासित एवं सुखमय बनाने हेतु प्रयत्न किया है। दूसरे शब्दों में उन्होंने आर्य समाज के मूलभूत दस नियमों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की है। भारतीय संस्कृति के प्राचीनतम उद्घोष "वसुधैव कुटुम्बकम्" का निर्देश इन नियमों की व्याख्या में स्पष्ट ध्वनित हो रहा है।

"निराकार साकार के स्वरूप का दिग्दर्शन" पुस्तक में आत्मा का स्वरूप, उस स्वरूप से साक्षात्कार की अनुभूति का विस्तृत स्पष्ट वर्णन है।

"अदीनास्याम" पुस्तक में आयुर्वेद की बहु प्रचलित औषधियों के प्रामाणिक प्रयोग की व्याख्या है। यह पूर्व प्रकाशित "इच्छानुसार सन्तान", "पुत्र प्राप्ति का साधन", "सीमित परिवार" पुस्तक क्रम में आती है।

"पाणिग्रहण संस्कार विधि" में शुद्ध एवं विधि सम्मत संस्कार की व्याख्या है। आज कल के पुरोहितों द्वारा गलत तरीके से संस्कार विधि के प्रयोग से क्षुब्ध होकर इस पुस्तक की रचना की गई है।

"वेद में क्या है"? "वेद की चार शक्तियां", "यज्ञों का महत्व", "दैनिक पंच महायज्ञ", "दिव्य दर्शन", एवं "विवेक कब जागता है" पुस्तकों में ईश्वरीय कृपा प्राप्त होने के माध्यम की व्याख्या की गई है।

"वेद दर्शन" पुस्तक उपयोगी एवं वैज्ञानिक अनुसन्धानात्मक अन्वेषण ग्रन्थ है।

जिसमें चारों वेदों में से मानव उपयोगी विषयों को संग्रहीत कर सरल भाषा में व्यक्त किया गया है जो मानव हृदयों को अपनी ओर आकर्षित करने में अपना विशेष स्थान रखता है। इस ३८४ पृष्ठीय ग्रन्थ में प्रभु की मित्रता, वेदार्थ की आवश्यकता, गायत्री साधना, यज्ञ का महत्व, दाम्पत्य सूक्त, संजीवन सूक्त, पुत्रेष्टि यज्ञ, सरस्वती सूक्त, राष्ट्र भूमि सूक्त, संसार की दृष्टि में वेद आदि विषयों को अंकित किया गया है। वास्तव में यह अवलोकनीय ग्रन्थ है।

"गायत्री साधन" में गायत्री मन्त्र क्या है? इसका क्या प्रभाव है? इसकी क्या उपयोगिता है? किस प्रकार इसका जाप करना चाहिए, जाप करने के उपकरण साधन आदि के सम्बन्ध में भी विशद व्याख्या की गई है।

"आनुषक" नामक कृति हितोपदेश शैली में कहानियों की पुस्तक है। यह बहुत ही सरल ढंग से प्रेम का सन्देश देती है। यह कथा शिल्प में एक नये ढंग का सार्थक प्रयास है। इसमें मानव मन की जिज्ञासाओं को अनुबद्ध कर सूत्रात्मक कहानियों के माध्यम से अत्यन्त प्रभावकारी रचनाएं प्रस्तुत की गई हैं।

६८ वर्षीय श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ३१ पुस्तकों का विशद साहित्य अर्थोपार्जन की दृष्टि से नहीं अपितु वैदिक साहित्य के प्रति अनुराग एवं समर्पण की भावना से सृजित किया है।

मैं ईश्वर से कामना करता हूँ कि श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी शतायु हों जिससे आगे भी इस सत् साहित्य का अभिवर्द्धन हो सके।

२०३, लाजपत नगर
मुरादाबाद

पृष्ठ ७० का शेष

प्राप्त करने के लिये अत्यन्त प्रोत्साहित करती है। इनके द्वारा लिखी गयी छोटी–छोटी पुस्तकों में भी अलग–अलग बिखरे हुये कुछ ऐसे शब्द और विषय प्रतिपादित हुये हैं जो किसी समर्पित लेखक की इच्छा से ही एक स्थान पर खिंच आये हैं, और उन्होंने एक आकर्षक रूप ग्रहण कर लिया है। श्री गुप्तः जी की पुस्तकों को पढ़ कर कभी–कभी तो ऐसा लगता है मानो ये रचनायें जीवन और प्रकृति में कहीं आवश्यक हो गयी हैं। वह अपने समकालीन साहित्यकारों और निर्माणकारी वातावरण में जीते हैं और साथ–साथ दूसरे वर्गों से भी जुड़ कर जीते हैं।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी की साहित्यिक निधि का मूल्यांकन छोटे–छोटे लेखों में कर पाना कठिन है। इनकी कृतियाँ अनेक बिन्दुओं वाली शक्तिशाली श्रृंखला है। मैं श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के दीर्घायु होने की कामना करता हूँ और उनसे और भी अधिक शुद्ध–प्रबुद्ध लेखन की आशा करते हुए अपनी ओर से शुभकामनाएं करता हूँ।

जमालपुर
लुधियाना–१४१०११

विदुषामनुचरः श्री गुप्तः जी



जयदेव शर्मा

मेरे पूज्य पिता जी पं० गोपीनाथ जी ने आर्य समाज, मण्डी बाँस, मुरादाबाद के ३१ वें वार्षिकोत्सव पर अन्य १४ व्यक्तियों सहित आर्य समाज का प्रवेश पत्र भर कर दिया। उस समय के प्रधान थे श्री नारायण प्रसाद जी, जो बाद में नारायण स्वामी के नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने कहा "श्री पं. गोपी नाथ जी ब्राह्मण वर्ग में पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने आर्य समाज में प्रवेश किया है।" उनका जन्म ब्राह्मण कुल में २५ नवम्बर १८८२ ई० में हुआ था। स्वजातीय बहिष्कार आदि महाकष्टों को भी सहन कर वैदिक सिद्धान्तों की लगन नहीं छोड़ी। १९१० ई० से आर्य पुरोहित का कार्य आरम्भ किया और १९६४ तक निरन्तर समस्त संस्कारों को संस्कार विधि के अनुसार कराते रहे।

नगर मुरादाबाद में मनिहारो गली (जिसे आज कल भट्टी स्ट्रीट के नाम से जाना जाता है) में चूड़ियों का बहुत बड़ा व्यापार होता था। दूर–दूर तक यहाँ से माल भेजा जाता था। एक बार एक दम्पति मुरादाबाद स्टेशन पर सायँकाल के समय उतरे। उन्हें आगे जाने के लिये यहाँ से गाड़ी बदलनी थी। पुरुष ने अपनी पत्नी से कहा–अभी गाड़ी मिलने में देरी है, तुम यहीं पर बैठी रहो, मैं चूड़ियां देख आऊँ। यदि माल कुछ मिल गया तो दूसरी गाड़ी से चलेंगे। यह कहकर वे चले गये। पास में खड़ा एक कुली उनकी सब बातें सुन रहा था। उसने एक नाटक रचा। कुछ ही देर के बाद वह कुली आया और उसने कहा–आपको बुलाया है, माल अधिक और अच्छा मिल गया है, सुबह को जाने का विचार है; आप मेरे साथ चलिये। सीधे स्वभाव वाली स्त्री अपना सामान तांगे में रखकर उस कुली के साथ चली आई। असालतपुरा के चौराहे पर ताँगा रुका और किशोर दवाखाने के ऊपर जो क्वाटर बने थे और जिसका जीना गली में से था, कुली ने ऊपर ले जाकर एक क्वाटर में सामान रखा और महिला से कहा–आप यहाँ बैठिये वह यहीं माल लेकर आयेंगे। महिला अन्दर गई, कुली ने झट से बाहर आकर दरवाजे पर ताला लगा दिया। कमरे में बन्द महिला सटपटा गई तथा घबरा गई। वहाँ कोई सुनने वाला भी नहीं था। उसने सारी रात जागते हुए काटी। अपनी मूर्खता पर पश्चात्ताप कर रही थी कि मैं धोखे में आ गई।

उधर महिला का पति कुछ देर बाद स्टेशन पर आया पत्नी को स्टेशन पर न देखकर घबरा गया, उसने सोचा हो सकता है अकेले बैठे–बैठे ऊबकर कहीं पहली गाड़ी से ही न चली गई हो, वह दूसरी गाड़ी से चला गया। प्रातःकाल ६ बजे के लगभग महिला ने किवाड़ों की झिरी में से झाँककर देखा, उसी समय एक महिला सफाई कर्मचारी अगले क्वाटरों में गई। जब वह लौटकर आई तो महिला ने अन्दर से किवाड़ों पर हाथ मारते हुए कहा कि एक कुली मुझे धोखा देकर यहाँ बन्द कर गया है। मैं रात से यहाँ बन्द पड़ी हूँ। तुम किसी आर्य से कह दो। सफाई कर्मचारी महिला ने कहा कि मैं किसी

आर्य को नहीं जानती, तब महिला ने कहा कि तुम किसी हिन्दू से कह दो कि मैं यहाँ बन्द हूँ और वह आर्य समाज में खबर कर दे। सफाई कर्मचारी महिला ने नीचे आकर सामने ही चने भून रहे भुर्जी से सारी बात कह दी। रामचन्द्र भुर्जी मेरे पिता जी पं० गोपीनाथ जी से आर्य समाज की पाठशाला में पढ़ चुका था। इस कारण वह उसी समय पं० गोपीनाथ जी के पास गया। पण्डित जी उस समय के आर्य समाज के प्रधान बाबू बृजनाथ वकील के पास गये। तुरन्त ही दोनों कोतवाली गये और रामचन्द्र से कहा कि वह वहीं ध्यान रखे कि कोई महिला को वहाँ से निकाल कर कहीं और न ले जाये।

पुलिस ने ताला तोड़कर महिला को बाहर निकाला और मजिस्ट्रेट के सम्मुख प्रस्तुत किया, मजिस्ट्रेट द्वारा महिला से पूछे जाने पर महिला ने आर्य समाज के प्रधान अथवा मन्त्री की सुपुर्दगी में दिये जाने की इच्छा प्रकट की। घर आकर प्रधान जी ने महिला से उसके घर का पता मालूम कर उसके घर इलाहाबाद को तार दिया। तार पाकर वह व्यक्ति मुरादाबाद आये और अपनी पत्नी को सुरक्षित पाकर बहुत प्रसन्न हुये।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी, पंडित जी के अनन्य भक्त व शिष्य हैं। वह लगभग प्रतिदिन ही पंडित जी के पास घर पर आकर आर्य सिद्धान्तों के विषय में वार्तालाप व शंका समाधान करते थे। श्री गुप्तः जी ने पंडित जी के सान्निध्य में बैठकर "पाणिग्रहण संस्कार विधि" का सम्पादन किया और उसी में संस्कार विधि के विवाह प्रकरण की लगभग उन सभी विधियों की पुष्टि में वेद मन्त्रों का पंडित जी द्वारा तैयार परिशिष्ट १६६४ में प्रकाशित किया। इसी प्रकार गुप्तः जी ने अपनी लेखनी से १६७६ में आर्य समाज स्थापना शताब्दी समारोह के अवसर पर प्रकाशित स्मारिका में "आर्य समाज के सौ वर्ष" शीर्षक में १६२१ की जनगणना के अवसर पर मुरादाबाद में पंडित जी के शुद्धि आन्दोलन की पूरी चर्चा की है। बहुचर्चित अपने ग्रन्थ "नीव के पत्थर" में (हरिजन सेवक) के नाम से पंडित जी के कार्य की सविस्तार चर्चा की है। मैं तो यही समझता हूँ कि श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने हमारे पिता श्री पं० गोपीनाथ जी अपने द्वारा लिखित और संचालित सामग्री में तीन स्थानों पर चर्चा कर के पंडित जी को अमर और अमिट बना दिया। श्री गुप्तः जी के इन उपकारों से उऋण होने के लिये हमारे पास कोई उपाय नहीं। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी अति महान हैं। सबकी उन्नति में ही अपनी उन्नति समझते हैं। ऐसे सौम्य स्वभाव व्यक्तित्व के सामने कौन नतमस्तक न होगा?

सम्पर्क : २४, जीलाल स्ट्रीट
मुरादाबाद

बहुमुखी व्यक्तित्व



राजेन्द्र कुमार गुप्तः

"परहित–चिंतक, चरित्रधनी, मिष्ट भाषी, निर्मल चित्त, समाज सेवी, रचनाधर्मी एवं योगीराज" इन्हीं विशिष्ट विभूषित सद्‌गुणों का समुच्चय एवं समुन्नत स्वरूप विकसित व्यक्तित्व का नाम है श्री वीरेन्द्र गुप्तः। जिनका मुरादाबाद जनपद में ३ अगस्त १६२७ को इस धरा पर जन्म हुआ। यद्यपि शिक्षा बहुत स्वल्प रही पर माता–पिता के संस्कारों ने बालपन में ही कुछ अप्रतिम असामान्य बनने व करने का सपना संजोना प्रारम्भ किया। चिन्तक स्वभाव ने जिज्ञासा को नया नाम दिया और १२ वर्ष की वय से दुकान से नाता जोड़ दिया।

आधुनिक "सुंघनी–साहू" श्री वीरेन्द्र गुप्तः का अल्पावस्था में दुकान के महत्वपूर्ण दायित्व को समझने, पूरा करने के साथ–साथ चिंतन–मनन भी चलता रहा। क्या परिवार में आज भी महाराणा प्रताप, शिवाजी, अहिल्या, लक्ष्मीबाई, सावित्री, सीता जैसी इच्छानुसार सन्तान उत्पन्न हो सकती है? इस एक प्रश्न ने उनकी जीवन धारा ही बदल दी। प्रश्न के समाधान में समय बीतता रहा, चिन्तन चलता रहा, पुस्तकों के पन्ने पलटते रहे और अंततोगत्वा उत्तर मिल ही गया। फिर विचार–सागर से एक रत्न निकला– "इच्छानुसार सन्तान", दूसरा मोती "पुत्र प्राप्ति का साधन" और फिर साहित्यकार के द्वारा एक से बढ़कर एक समाजोपयोगी विचारपूर्ण ग्रन्थों की श्रृंखला प्रकाशित होती रही।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः के चरित्र में सद्‌गुणों की खान है। समाज को दिशा देने में जहाँ उनकी आर्य समाज विचार–धारा का योगदान है, वहीं कार्य कुशलता, कर्मठता एवं दृढ़ निश्चयी स्वभाव ने उनसे एक से बढ़कर एक कार्य सम्पादित कराये हैं। अपने स्वजातीय समाज के चार सम्भ्रान्त सदस्यों सर्व श्री ओमप्रकाश सेठ, श्री भगवान, विश्वनाथ गुप्तः एवं श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने जातीय भवन निर्माण की योजना बनाई थी। इस कार्य में श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने भवन–निर्माण में भरपूर समय दिया। दुकान पर अकेले होते हुए भी राज–मजदूरों को दिशा–निर्देश देते रहे। जब जब अर्थाभाव के कारण निर्माण–कार्य में व्यवधान पड़ता प्रतीत हुआ–सहायता करते रहे। कभी–कभी अप्रत्याशित घटनाएँ भी घटीं। पर जहाँ संकल्प–शक्ति हो, बाधायें क्या अस्तित्व रखती हैं?

श्री वीरेन्द्र गुप्तः का व्यक्तित्व बहुमुखी है। कर्मठ हैं, स्वभाव के सरल हैं, परहित हेतु सदैव तत्पर । वह स्वजातीय समाज के कतिपय परिवार वैमनस्य जनित उलझन भरे मामलों में सूझ–बूझ का परिचय देते रहते हैं। पर आत्म प्रशंसा से विरक्त, आत्म–शलाघा से विरत।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः योग सिद्ध हैं। बाल्यावस्था से ही आर्य समाज के आर्य वीर दल के सदस्य के रूप में शरीर–साधना करते रहे थे। योग की साधना कर अब एक महत्वपूर्ण योग प्रशिक्षक के रूप में स्वभवन में जिज्ञासुओं के तन–आत्मा–प्राण को साधने हेतु

क्रमशः पृष्ठ ८०

वेद मार्तण्ड
श्रीयुत वीरेन्द्र गुप्तः जी


जय प्रकाश रावत आर्य

बात सन् १६८३ ई० की है। मैं नित्य की भांति 'दैनिक हिन्दुस्तान' समाचार पत्र का अवलोकन कर रहा था। समाचार पत्र में मेरी दृष्टि सम्पादकीय पृष्ठ पर लोकवाणी कालम के अन्तर्गत श्री रामसरन वानप्रस्थी जी की चिट्ठी सम्पादक के नाम "भारतीय सभ्यता" २/७/८३ शीर्षक पर पड़ी। उस समय मेरे मानस–पटल पर पौराणिक विचारों का साम्राज्य था तथा इस्लाम मत की ओर भी झुकाव था। इस्लाम मत में ऐकेश्वरवाद की धारणा को अत्यन्त प्रभावकारी ढंग से प्रस्तुत किया गया है। बल्कि यों कहें कि ऐकेश्वर वाद ही इस्लाम मत की जड़ है। फिर इस्लामी समाज को नजदीकी से देखा तो गजब का संगठन पाया। जबकि हिन्दू समाज जाति–पाँति व छुआ–छूत में बँटा हुआ है। मैं अपने गहन अध्ययन व अनुभव के साथ कहता हूँ कि स्वामी विवेकानन्द जी की यह टिप्पणी अत्यन्त सारगर्भित है कि 'वेद यदि मस्तिष्क है तो इस्लाम शरीर'। वेद की सूक्ति "वसुधैव कुटुम्बकम" का व्यावहारिक रूप मैंने इस्लाम मत में पाया। हाँ ! मैं फिर अपने मूल प्रसंग श्री रामसरन वानप्रस्थी जी की चिट्ठी पर आता हूँ। आपने पत्र में वेद मत, मुस्लिम मत, ईसाई मत व सिख मत की आयु का सांगोपांग विवेचन किया था, तथा वेद मत को प्राचीनतम मत तथा अन्य मतों को वेद मत के बाद का सिद्ध किया। कुछ समय पश्चात् मैं श्री रामसरन जी से सम्पर्क में आया। उन्होंने मुझे विभिन्न प्रकार की वेदज्ञान पर तार्किक पुस्तकें दीं। मैं विचार पथ का एक पर्यटक हूँ। शिथिल कदमों से या नैराश्यपूर्ण अनुभूति से मैंने सत्य को नहीं ढूँढा है। चिन्तन के झरोखे से बौद्धिक जिम्मेदारी के साथ जो कुछ मैंने सोचा–विचारा, मैंने पाया कि इस्लाम मत की तथाकथित ऐकेश्वरवाद की धारणा का वर्णन तो वेदों में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। फिर क्या था मैं वानप्रस्थी जी के पास सप्ताह में एक दो बार जाता तथा वेदों के ज्ञान का सम्यक् अध्ययन करने लगा। रविवार को आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग में भी जाना प्रारम्भ कर दिया। जो–जो प्रश्न मेरी चेतना को झकझोरते मैं उनका शंका–समाधान श्री वानप्रस्थी जी के निवास पर जाकर करने लगा।

कुछ समय पश्चात मेरा परिचय श्री वानप्रस्थी जी ने वेद मार्तण्ड व वेद–ज्ञान के मर्मज्ञ श्रीयुत वीरेन्द्र गुप्तः जी से करा दिया। यह परिचय मानो ऐसा था कि नदी रूपी मैं श्री वीरेन्द्र रूपी सागर से जा मिला तथा वेद ज्ञान में डुबकियाँ लगाकर अमूल्य रत्नों को निकालने लगा। वेद मत व अन्य मतों का तुलनात्मक व ऐतिहासिक पद्धति से परीक्षण व विशलेषण कर मैं वेद मत की साधना का साधनहार बन गया। वेद वैदिक संस्कृति के मूलाधार हैं। वेद में इहलौकिक, पारलौकिक व पुर्नजन्म का विशद वर्णन है। वेद ज्ञान हमें बताता है कि जीवन को कैसे जिया जाये? ईश्वर के क्या आदेश हैं?

वेद में ज्ञान–विज्ञान, आयुर्वेद, गणित, अर्थशास्त्र, राजनीति शास्त्र, सन्तति निर्माण शास्त्र, धर्मनीति आदि का विशद वर्णन है। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी की कृति "वेद दर्शन" का मैंने सम्यक् अध्ययन किया। इसको आद्योपान्त पढ़कर तो मानो मेरा कायाकल्प ही हो गया। मेरे दिल–दिमाग में जो अनेक मत–मतान्तरों का समावेश हो चुका था, उन सबका वेदज्ञान के तर्कसम्मत व वैज्ञानिक विश्लेषण ने खात्मा कर दिया।

आपने भारतीय संस्कृति तथा वेदों के ज्ञान को अपनी कृति 'वेद दर्शन' में बड़े मार्मिक ढंग से व्याख्यायित व रूपायित किया है। मैंने आपकी अन्य पुस्तकें 'गायत्री साधन', 'गर्भावस्था की उपासना', 'दस नियम' का भी अध्ययन किया। सभी पुस्तकों में वैदिक सिद्धान्तों व मतों के गहन अध्ययन का दिग्दर्शन होता है। आपकी पुस्तकों में न केवल वेदों का ज्ञान, अपितु आत्मानुभव भी बोलता है। भाषा, शैली की दृष्टि से आपके वैदिक साहित्य में सहज व बोधगम्य विवेचन का दर्शन होता है।

विशुद्ध वैदिक ज्ञान की हिमायत करने वाला ऐसा ग्रन्थ मुझे आज तक प्राप्त नहीं हुआ। "वेद दर्शन" के अतिरिक्त अन्य पुस्तकें वैदिक ज्ञान की चाशनी से सनी हुई हैं। "गर्भावस्था की उपासना" नामक पुस्तक में महिलाओं के लिये श्रेष्ठ सन्तान सम्बन्धी मन्त्र दिये हैं, जिसका गर्भावस्था के दौरान मनन–चिन्तन कर चिन्तनशील सन्तान को जन्म दिया जा सकता है। आपकी नवीनतम कृति "आनुषक्" बाल–गोपालों के लिये उनकी ही भाषा में ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान की व्याख्या करने का अत्यन्त सफल प्रयास है। आप वैदिक ज्ञान के ज्योति पुंज हैं। आप वैदिक ज्ञान की पताका बुलन्द करने के लिये कितने कटिबद्ध हैं, इसका अनुमान आपकी इस मनोभावना से लगाया जा सकता है कि "प्रभो जी! मेरी अति उत्कट अभिलाषा यह है कि सत्य ज्ञान वेद–गंगा की लहरों को संसार के प्रत्येक प्राणी मात्र तक पहुँचाने के प्रयास में मैं पूर्ण सफलता प्राप्त करूँ। यह विशाल कार्य एक जन्म में पूर्ण नहीं हो सकता इसलिये जब तक संसार का प्रत्येक प्राणी वेद–ज्ञान रूपी सागर में गोते न लगा ले उस समय तक मेरा प्रयास जारी रहे। मेरा जन्म बार–बार वेदानुरागी परिवार में होता रहे।" कैसी उच्च उदात्त भावना है आपकी। आपके सान्निध्य से मेरा हृदय–परिवर्तन हो गया है तथा मैं अब शुद्ध वैदिक ज्ञान अर्जन की दिशा में रत हूँ।

आप वैदिक साहित्य के सिद्धहस्त लेखक हैं। इसका कारण है आपका गहन स्वाध्याय और चिन्तन। चिन्तन की प्रणम्य क्षमता। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी मुरादाबाद जनपद के वैदिक साहित्यिक समाज के मस्तक पर शोभायमान मुकुट–मणि के समान हैं। वर्तमान में भी आप वैदिक लेखकीय धर्म को निभाने में लगे हुए हैं। आपकी मेधा शक्ति अद्वितीय है। आपको मुरादाबाद के वैदिक साहित्याकाश के सूर्य की संज्ञा दी जा सकती है। मेरी परम परमेश्वर जी से हार्दिक प्रार्थना है कि आप दीर्घायु होवें तथा अपने अलौकिक वेद–ज्ञान से मानव जाति को प्रकाश देते रहें।

सम्पर्क : कटघर बीच,
मुरादाबाद

देवता स्वरूप श्री वीरेन्द्र गुप्तः



अशोक कुमार अग्रवाल

देवता–देने वाले को कहते हैं। जो सदैव देते ही रहते हैं, लेते–लंवाते कुछ नहीं। जिस प्रकार 'सूर्य' एक देवता है, वह हमें प्रकाश देते हैं परन्तु हाईडिल की तरह बिल कभी नहीं भेजते, इसी प्रकार 'वरूण' भी देवता हैं वह हमको जल देते हैं और सदैव देते ही रहते हैं, कोई बिल नहीं भेजते। जो लेकर देता है उसे लेवता कहते हैं, जो देकर भी कुछ नहीं लेता उसे देवता कहते हैं।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी भी एक देवता स्वरूप हैं, उन्होंने मुझे सब कुछ दिया, मेरा घर परिवार जो उजड़ गया था उसे आबाद कर दिया। मेरे दो कन्यायें हैं दूसरी कन्या के पश्चात शीघ्र ही गर्भस्थित हो गया, हम दोनों ने विचार किया और उसकी सफाई करा दी, उसके पश्चात लगभग छः वर्ष व्यतीत हो गये, कोई गर्भस्थित नहीं हुआ चिन्ता होने लगी नगर के सभी डाक्टर और महिला डाक्टरों को दिखाया कोई सफलता नहीं मिली। इसके पश्चात मैं पत्नी को लेकर देहली गया वहाँ पर भी कई चिकित्सकों को दिखाया, परिणाम कुछ न निकला। साथ में डाक्टरों की यह घोषणा भी हो गई कि अब इस महिला को कोई गर्भस्थित नहीं हो सकेगा।

मेरा कोल ड़िपो है, मैं निराश बैठा सोच रहा था, अचानक उसी समय एक महानुभाव आये कोयला लेने, उन्होंने मुझे चिन्तित देख कर कहा–किस कारण से आप चिन्तामग्न हैं। मैंने उनको सारी बात बताई, तो उन्होंने कहा–कि आप मण्ड़ी चौक में श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी से मिलें, हो सकता है, आपकी चिन्ता दूर हो जाये।

मैं श्री गुप्तः जी से मिला, सारी बात बताई, सुनकर उन्होंने मुझे बड़े विश्वास के साथ बहुत ढांडस दी और कहा–आप चिन्ता न करें, आपको सफलता मिलेगी, परन्तु जैसा आपसे कहा जाय वैसा ही आपको करना होगा। मैंने वैसा ही करने की स्वीकृति दी और उन्होंने औषधि की सारी वस्तुएँ एक पर्चे पर लिखकर दीं, मैंने उसे तैयार करके बताये अनुसार पत्नी को सेवन कराया और दो मास के पश्चात् ही गर्भस्थित हो गया। मैं और मेरी पत्नी अति प्रसन्न हुऐ। परन्तु अभी दुर्भाग्य ने पीछा नहीं छोड़ा, तीसरा मास था, ग्रीष्म ऋतु, चौड़ा आँगन, उस पर मारवल का चिकना फर्श, साथ में प्लास्टिक का चप्पल, इन सब ने मिलकर एक घटना को जन्म दे दिया, पत्नी का पैर फिसला, धड़ाम से पेट के बल गिरीं और रक्त स्राव होने लगा, उसी समय महिला डाक्टर को दिखाया। अगले दिन मैं गुप्तः जी के पास गया, सारी बात कही तो उन्होंने एक औषधि बताई, साथ में कहा यदि रात्रि तक रक्त स्राव बन्द न हो तो आप सफाई करा दें। मेरा दुर्भाग्य था रक्त स्राव नहीं रुका और सफाई करानी पड़ी।

मैं बड़ा निराश हो गया और श्री गुप्तः जी से मिला उन्होंने कहा–आप निराश न हों, जब इतनी सफलता मिली है तो आगे और भी सफलता मिलेगी। मैंने कहा अब

मुझे क्या करना है? श्री गुप्तः जी ने उत्तर दिया आप अभी पत्नी के स्वास्थ्य को ठीक होने दीजिये दो मास के पश्चात् आपको औषधि बतायेंगे। मैं दो मास के पश्चात् फिर मिला और गुप्तः जी ने औषधि का पर्चा लिखा, मैंने तैयार कराकर पत्नी को सेवन कराया, परिणाम स्वरूप ढाई मास के पश्चात् प्रभु कृपा और श्री गुप्तः जी के आशीर्वाद से पुनः गर्भ स्थित हुआ। समय आने पर श्री गुप्तः जी ने पुत्रदाता सूर्य गुणी औषधि का सेवन कराया, और उनके निर्देशन के अनुसार दैनिक भोजन आदि की पूरी व्यवस्था करता रहा। समय आने पर १६.७.८८ को मेरे गृह में पुत्र रत्न का जन्म हुआ। मेरी माता जी को बड़ी प्रसन्नता हुई, पूरे परिवार में चारों ओर आनन्द ही आनन्द छा गया। जहाँ हजारों रूपये खर्च करने के पश्चात् भी कुछ न मिला, वहाँ बिना कुछ खर्च किये सब कुछ मिल गया।

देवता इसको कहते हैं। मेरे निराश जीवन में प्रकाश फैला दिया, यदि मैं श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी को देवता स्वरूप न मानूं तो और क्या मानूं? ऐसे महान पुरूष को बार-बार नमन है।

सम्पर्क : रोडवेज के पीछे
हरपाल नगर, मुरादाबाद

पृष्ठ ७६ का शेष

प्रयासों में संलग्न हैं।

वीरेन्द्र गुप्तः जी की लेखनी से एक अन्य अद्भुत विचार-पूर्ण पुस्तक "संस्कार" निकली। व्यक्तित्व-निर्माण के लिये इस पुस्तक को पढ़ने समझने व आचरण के स्तर पर अपनाने से वर्तमान पीढ़ी इस अंधकार-युग में प्रकाश की एक किरण देख सकती है।

इसी श्रंखला में ही अद्यतन कहानी संग्रह "आनुषक्" बालोपयोगी पुस्तक है। छोटी-छोटी प्रेरणास्पद कहानी मन पर गहरा प्रभाव छोड़ती हैं। सभी कहानियाँ संस्कार-निर्माण में प्रेरक हैं।

श्री गुप्तः जी दुकान पर अकेले हैं। क्रय-विक्रय के साथ-साथ उनकी लेखनी भी सक्रिय रहती है। उनकी लेखनी विचारों को शब्द प्रदान कर पुस्तक रूप में समाज को अर्पित कर अगली पुस्तक के चिंतन में अनवरत रूप से चलती रहे, परमपिता से यही विनम्र निवेदन है। वह शतायु हों।

सम्पर्क : चौरासी घन्टा,
मुरादाबाद

वीरेन्द्र गुप्तः "मेरे स्मृति कुंज के सुमनों में से"



शंकर दत्त पाण्डे

बहार आई किसी का सामना करने का वक्त आया।
संभल ए दिल, कि इज़हारे–वफ़ा करने का वक्त आया।।

मनीषी साहित्यकारों के बीच कुछ पाने–सीखने की अभिलाषा सदैव बलवती रही है। सीखना है तो नम्र होना पड़ेगा और नम्र बनने के लिये झुकना अनिवार्य है ऐसा मेरा मत है। आज की आभिजात्य संस्कृति यूकेलिप्टसीय प्रचार एवं प्रसार करने में लगी है। कला, साहित्य तथा समाज का इससे कुछ भला नहीं होना है।

समाज में सभी वर्ग के व्यक्ति होते हैं। समर्थ वर्ग के व्यक्ति सदैव समृद्धि के टापुओं में रहते हैं किन्तु सीधे–सादे व्यक्ति अपनी–अपनी सामर्थ्य के अनुसार परिश्रम करते हैं–जीवन जीते हैं। उनके अपने साम्राज्य नहीं होते, बड़े–बड़े महल या आलीशान कोठियाँ नहीं होतीं।

मोती एक मूल्यवान रत्न है। साधारण व्यक्ति को सुलभ नहीं होता। कहते हैं मेघ की बूँद स्वाति नक्षत्र विशेष में जब जल में पड़ी सीपी के मुँह में पहुँच जाती है तो वह सच्चा मोती बन जाती है। प्रकृति की यह कितनी विचित्रता है। सीपी मेघ की बूँद के लिये लालायित रहती है–ऐसा ही नहीं है–बूँद भी सीपी से मिलन के लिये उतनी ही विकल रहती होगी। क्या किसी ने कभी ध्यान दिया है कि मेघ की एक ही बूँद गिरने से ऐसा क्यों होता है? जब मेघों की असंख्य बूँदें गिरती हैं, तब सभी मोती क्यों नहीं बना पातीं? यह सब संस्कारगत हैं। संस्कार निर्भर है बीज की संस्कृति पर। मनुष्य भी संस्कारों की देन है।

उत्तम संस्कार ही प्रतिभाओं को जन्म देते हैं। इन्हीं सुसंस्कारों की एक देन है हमारे नगर के आर्य समाज से जुड़े प्रतिष्ठित, कर्मठ व्यक्ति–श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी। मण्डी चौक के बाजार की व्यस्तता में उनकी एक छोटी सी दुकान है। कागज का पुराना पैत्रिक व्यवसाय है। कुर्ता, धोती और टोपी पहने एक सौम्य आकर्षक व्यक्तित्व अपने कार्य में सदैव व्यस्त आप पायेंगे। ऐसा भी नहीं कि आप जायें तो आपकी ओर मुखर न हों। काम रोक कर आपको अपना स्नेहिल व्यवहार देंगे।

आज संसार में कितनी व्यस्तता है कि मनुष्य का जीवन समय की मशीन के पुर्ज़े में ढल गया है। जीवन चाय के प्यालों पर पल रहा है। थकी हुई जिन्दगी की आकाँक्षायें क्या हैं? कोई नहीं समझता। किन्तु वे व्यस्त होते हुए भी कभी विचलित दिखाई नहीं दिये। आज जीवन एक गन्दी गुदड़ी या फटे हुए कफ़न के समान हो गया है जिसे हर मनुष्य विवशता के डोरे से सन्तोष की सुई से सीता रहता है।

आकाश में नक्षत्रों की एक महफ़िल लगी रहती है और उसके नीचे पृथ्वी पर माटी का मेला लगा रहता है। गुमनाम हवायें इधर–उधर रेले की तरह विचरण करती

हैं। भौरों के गुंजन, मन को कितने भाते हैं। चिड़ियों में बचकानी चहकन और तितलियों के चल–चुम्बन कितने सुन्दर लगते हैं। बादल बड़ी उमंगों से बड़े सुन्दर चित्र बनाते हैं और वायु गहरी अत्यन्त गहरी निःश्वास लेती है और वे मिट जाते हैं। रेखायें, चित्र, आकार सब खो जाते हैं और एक काली कोरी स्लेट रह जाती है क्योंकि निःश्वास बहुत गहरी होती है। कितनी बड़ी विडम्बना है कि इतने बड़े संसार में छोटा सा एक दिल रखने का कोई स्थान नहीं। गुलदस्तों में आकर्षण तो बहुत होता है किन्तु ऐसी भी परिस्थिति होती है कि वे हृदय को नहीं बाँध पातीं।

सम्बन्धों के प्रश्न चिन्ह एक मासूम सा प्यार बनकर रह जाते हैं। सब के जीवन में दर्द होता है और बहुत दर्द होता है। ऐसे समय में सब को रोता हुआ ही देखा है, जब सुख का समय होता है तो भाग्य को अक्सर सोता ही देखा है, सोते ही पाया है। सम्बन्ध भी कितने अनौखे होते हैं जो आँसुओं से जुड़े होते हैं। इस संसार में वही फूल डाली से तोड़ा जाता है जिसमें महक हो। सूख जाने पर भी कुछ फूलों की महक कभी कम नहीं होती। मुरादाबाद के हिन्दी जगत के उपवन में पुराने फूलों में नागरी प्रचारिणी सभा के संस्थापक बाबू मदन गोपाल वकील, गुजराती मोहल्ला, उनके मित्र डा० ब्रज मोहन महरोत्रा, पुजेरी गली स्थित जो बाद में बनारस विश्वविद्यालय तथा हम्बोल्ट विश्वविद्यालय के विजटिंग प्रोफेसर की महक अभी भी वैसी ही बनी हुई है। परस्पर चर्चा में ही गैर हिन्दी शब्द बोलने पर प्रति शब्द एक आना जुर्माना वसूल करने की शर्त पर आपसे बातचीत होती थी। मित्र मण्डली में अब ऐसा समर्पित स्नेह कहाँ है। वे दिन खो गये। चाँदी की झिलमिलाहट में धर्म तक मिट जाता है और मन्दिर का पुजारी मन्दिर के आँगन में ही लुट जाता है। रातों के वीरान सायों की तरह स्वप्न पड़े रहते हैं। हृदय के अरमान ऐसे लगते हैं जैसे वे पराये हों।

सत्य ने सदैव चुनौती दी है और सपने अन्तरिक्ष तक घूम आते हैं। समय की दो बूँदों को सभी कोई पाना चाहता है पर सभी को नहीं मिलती। समय के अक्षर अस्पष्ट होते हैं। कभी–कभी उन्हें पढ़ने में अत्यन्त कठिनाई होती है। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के जीवन का ध्येय सदैव सत्य की खोज रहा है। इनके इर्द–गिर्द भले ही कितने व्यक्ति हों पर उन्होंने अपना ध्येय पाने का अकेला ही संकल्प लिया है। किसी का सहारा नहीं। वैसे वे सदैव सबके साथ मिलकर चलने की प्रक्रिया भी रखते हैं। ऋग्वेद की ऋचा "संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्" (तुम सब मिलकर कार्य करो) के अनुसार चलना भी उनको सुहाता है। किसी का सहारा लेकर काम करना उन्हें रुचिकर नहीं है। उन्हें सदैव अपने मनोबल पर कार्य करते देखा है। आर्य समाज के कार्यों में बड़ी–बड़ी विकट समस्याएँ उनके सामने आईं। शुद्धिकरण व अन्य सुकार्यों में आरम्भ से अन्त तक किन विषम परिस्थितियों को उन्होंने झेला है, समय और श्रम के अतिरिक्त मानसिक कष्ट कितना रहा होगा, यह कल्पना ही की जा सकती है। कुछ घटनाओं का मैं अपने अन्य मित्रों के साथ स्वयं दृष्टा हूँ। व्यक्तिगत जीवन में भी संकट झेलने पड़े हैं पर उन्हें कभी असन्तुलित नहीं देखा। वे मानव समाज में रहते हुए भी एक प्रकार से सिंह के समान हैं जो कभी अपने स्तर से नहीं गिरता। "क्षुधार्तो न तृणं चरति सिंहः" (सिंह

बेहद भूखा होने पर भी घास नहीं खाता) और सिंह झुण्डों में नहीं रहते। कबीर दास जी ने कहा है:–

सिंहों के नहिं लेहड़े, हंसों की नहीं पात।
लालों की नहिं लोरियाँ, साधु न चले जमात।।

विभिन्न प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों के बीच सरल हृदय, गर्वहीन प्रवृत्ति का आर्य समाज का यह साधक, वेदों में रुचि रखने वाला तथा सामाजिक समस्याओं से जूझने वाला कभी–कभी अपनों का भी निशाना रहा है। किसी शायर की ये दो पंक्तियाँ उन पर सटीक पड़ती हैं:–

हमने काँटों को भी नरमी से छुआ था लेकिन,
लोग बेदर्द हैं फूलों को मसल देते हैं।

उनकी उमंगों के सागर में अचानक ज्वार–भाटे भी आयें हैं; आयु के मौन गगन को समय–समय पर चाँद ने भी सताया है पर वे कभी टूटे नहीं। उन्होंने हर संकट झेला है। अपने इकलौते पुत्र का वियोग उन्होंने किस प्रकार सहा था मैंने देखा है। नगर के प्रसिद्ध कवि श्री सर्वेश्वर सरन 'सर्वे' जी के शब्दों में–

"हाय! जिन हाथों से पाला था उन्हीं से ले चले।"

"अरुण" मासिक पत्रिका में प्रकाशित इस रचना का अब किसे ध्यान होगा। यह दुःखद घटना भी न होती यदि उनके मित्रों ने उन्हें अपनी नेक राय दी होती। श्री सर्वेश्वर सरन (सर्वे) अपने उपनाम 'सर्वे' जी के नाम से ही नगर के कोने–कोने में आज भी ख्याति प्राप्त हैं। नगर के शिवसुन्दरी मोंटेसरी स्कूल के कार्यकाल में जब वे और मैं कभी उनकी दुकान पर पहुँचते, उनसे किसी भी प्रकाशन या मुद्रण के सम्बन्ध में परामर्श करते तो वे एक व्यापारिक, व्यावसायिक दृष्टिकोण न रखते हुए अपना परामर्श हमारे हित में ही देते थे। कोई व्यवसायी वास्तविक रूप में ऐसा कभी नहीं करेगा।

"यादों की पुरवाईयाँ" जब चलती हैं तब हृदय कें पुराने दर्द उभर आते हैं। कोई नई बात क्या लिखूँ–

है वही दर्द पुराना, वही तनहाई है।
'यादों के मजार' चन्द धुँधली तस्वीरें।।

जब सामने आती हैं तब नगर के जन प्रिय कवि डा० अजय 'अनुपम' की दो पंक्तियां–

"तृप्ति के दो पल मिले, पर दर्द से भरपूर"

भी याद आए बिना नहीं रहतीं। धृष्टता या अतिशयोक्ति न समझें विशुद्ध प्रेम भावनायें यदि मैंने पाई हैं तो 'प्रसाद' जी की मित्र मंडली के दुर्गादत्त त्रिपाठी जी की यह पंक्ति भी ध्यान दें–

"विचार लोक से बड़ा कौन–सा विहार है?"

उक्त पंक्ति मैंने उनके सुपुत्र चिरंजीव अनुकाम त्रिपाठी से सुनी थी। कवि नील कंठ होता है। उसके काव्य में शिव की भ्रभंगिमा के पल संकेतित है।

कविता सहज नहीं होती। वह अन्तर्वासिनी भी नहीं होती। सदैव मन के गलियारे

में अकेले भटकती रहती है और ढूँढती रहती है उजाले को। मन अथवा मस्तिष्क में जब कभी मंथन होता है जब कभी सामाजिक विषमतायें कचोटने का मन बना लेती हैं और अभिव्यक्ति छटपटाती है तब लेखनी माध्यम बनती है, कुछ आकार बनाती है जिसे लोग बड़ी सरलता से एक सूक्ष्म सा नाम 'कविता' रख देते हैं। वर्तमान में लिखे जा रहे साहित्य से लगता है जैसे कविता के यौवन को ग्रहण लग गया है।

समाज में दो वर्ग पाये जाते हैं। विद्वान् और बुद्धिजीवी। दोनों में बहुत अन्तर है। विद्वान् केवल अपने वर्ग के लिये चेतन होता है, इसीलिये जीता है, किन्तु बुद्धिजीवी स्वतन्त्र होता है, साहित्य में उसकी पूर्ण आस्था होती है, उसकी अभिव्यक्ति में होता है द्वन्द्वात्मक चिन्तन। 'अजय' जी के गीतों के कुछ मुक्तक याद आ रहे हैं:–

"आओ आज हृदय भर प्यार करें,
फिर जाने ऐसा मन हो कि न हो,"
क्या बतलाऊँ तुम्हें कि मेरा मन कितना तरसा है,
"जी तो अकुलाता है आमंत्रण देने को,
आड़े आ जाती सौगन्ध, कोई क्या करे?"

गीतों की उक्त पंक्तियों के साथ मुक्तक भी उनकी विशेषता है:–

"जो अधर के लिये मौनव्रत लिख गई।
सत्य को मान लूँ स्वप्नवत लिख गई।
हृदय के पृष्ठ पर वर्जनाओं भरी,
दृष्टि वह प्यार का भागवत् लिख गई।"

ऐसी विशुद्ध भावनायें आज की कविता में कहाँ दिखाई पड़ती हैं। 'प्रसाद' 'पन्त' 'निराला' आदि कवियों ने नारी को ही कविता का केन्द्र बिन्दु बनाया है क्योंकि नारी की दुर्बलता संस्कारगत होती है, जब कि उसे कमजोर क्षणों में सान्त्वना और सहारे की आवश्यकता होती है। 'अजय' जी के काव्य में मैंने अन्तहीन विरह की भूमिका, नैसंर्गिक सौन्दर्यबोध देखा है, संवेदना के दर्द पाये हैं, उनकी रचना में रस की बात मुझे मिली है, वहाँ मैंने पीड़ा का मान समझा है, स्वाभिमान के स्तर देखे हैं, एक अन्य पंक्ति–

सदियों के सूने सन्तोषी,
मन में अभिलाषा के अंकुर जन्मे,
यही अनर्थ हो गया।

यदि उनके गीतों के साथ ध्यान दें तो समय की शिला पर अन्य कवियों में सौन्दर्य पान की उत्कृष्ट अभिलाषा देखते हुए उन्हें केवल सौन्दर्य का आचमन ही करते पाया है। पुनः दोहराना चाहूँगा कि यह सब संस्कारगत है और श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी, मदन मोहन व्यास, सर्वे जी, दुर्गादत्त त्रिपाठी जैसे व्यक्तियों के सम्पर्क का प्रभाव है, वैसे "कुछ और भी हैं दर्द मेरी जिन्दगी के साथ?"

. . .प्रसंगवश बताता हूँ कि राजनारायण जी का हिन्दी के प्रति प्रेम तथा निःस्वार्थ सेवा सर्वविदित है। सम्भवतः सन् १९७८ ई० में 'प्रदेश–पत्रिका' साप्ताहिक तथा 'आधुनिक प्रेस' के स्वामी हिन्दी, जर्मन व फ्रैंच भाषा के मर्मज्ञ, सुप्रसिद्ध प्रकाशक तथा

लेखक श्री राजनारायण जी महरोत्रा की स्टेशन रोड स्थित कोठी के प्रांगण में हरी दूब पर पं० नरोत्तम व्यास जी की अध्यक्षता में शरद पूर्णिमा के अवसर पर 'ज्योत्स्ना' साहित्य संस्था के अन्तर्गत एक काव्य गोष्ठी चल रही थी जिसमें नैनीताल निवासी सुप्रसिद्ध इतिहास–विद्, कहानी लेखक व उपन्यासकार श्री यमुना दत्त वैष्णव 'अशोक' जी मुख्य अतिथि थे। इन्द्र धनुषी कल्पना के इस कवि डा० अजय अनुपम से मेरा इसी गोष्ठी में परिचय हुआ था। भरी हुई गागर कभी छलकती नहीं और सम्पूर्ण वाणी कभी उत्तेजित नहीं होती।

"तुमुल कोलाहल कलह में मैं हृदय की बात रे, मन।" जैसा भाव मेरे विचार से उपरोक्त पंक्तियों में आभासित है। इसी सन्दर्भ में मुझे अपनी कुछ पंक्तियाँ याद आती हैं:–

नयन में सागर समेटे द्रवित उर को साथ लेकर,
क्षितिज के उस पार का कुछ देखना सम्भव नहीं है,
आज इतने भर दिये है, रंग तुमने इस तरह से,
इन्द्र धनुषी रंग भी पहचानना सम्भव नहीं है।
व्यर्थ है मुझको बुलाना, याद क़रना, टेरना भी,
दूर इतनी जा चुका हूँ, लौटना सम्भव नहीं है।
आइनों पर समय की कुछ धूल ऐसी जम गई है,
लाख पहचानों मुझे, पहचानना सम्भव नहीं है।

व्यक्तित्व का मूल्याँकन करना सरल काम नहीं है। खुली आँखों और निर्विकार हृदय से देखने से ही स्पष्ट तथा विकसित दीख पड़ेगा। प्रकृति को पुरुष की छवि का निर्माण करने में कितना समय लगेगा–यह विचारणीय है। आने वाली पीढ़ी लाल पानी पी रही है। हर रोज नन्हें सूर्य की कुंआरी धूप निकलती है। साहित्य में आज नेतागिरी की महाव्याधि के कारण एक सहमी हुई चुप्पी है। उपेक्षा के कारण बढ़ रहे हैं। वे बुद्धिजीवी होंगे पर उनका बुद्धिजीवी मन कभी का मर चुका है। घृणा और आक्रोश कभी शान्ति की परिधि में नहीं आ पाते। आज की कविता सुन्दरता तथा यथार्थ से परे हो गई है। अब साहित्य की अपेक्षा सैकत विस्तार दृष्टिगोचर हो रहा है। मनुष्य में जब कभी पूर्व परिचित देव–प्रवृत्ति यदि जागृत हो उठे तो वह 'कामायनी' के कथानक के अनुसार 'श्रद्धा' के अतिरिक्त किसी दूसरी ओर (इड़ा) प्रेरित हो जाता है। ईर्ष्या, घृणा और आक्रोश कभी शान्ति की परिधि में नहीं आ पाते। इस अन्तहीन संसार में योगी भी होते हैं और भोगी भी। भोगी केवल अभिसार देखता है जब कि योगी देखता है भविष्य। मोह में डुबकी लगाते रहने वाले को वैराग्य कैसा? वीरेन्द्र जी ने अपने जीवन में दो संकल्प लिये थे। १. सदैव हिन्दी का प्रयोग, २. चमड़े का उपयोग न करना। इन पर वे आज भी अडिग हैं। प्रसंगवश ये बातें याद आ गईं अन्यथा "किसको फुर्सत थी कि बतलाता तुझे इतनी सी बात।"

ज़िन्दगी एक बोझिल संस्करण है। प्राण का सौदा हम जन्म–मरण के दो पलड़ों पर तोलते रहते हैं। चौदह स्थान भगवान के निवास हैं जिनमें प्रमुख शरीर है। जो

योग के लिये है न कि भोग के लिये। आसुरी वृत्ति ईर्ष्या की बहन है। निन्दा और निद्रा भक्ति में बाधक है। निन्दा बड़ी मधुर होती है। दीनता भक्ति का वाहन है और त्याग से तृप्ति होती है—ऐसे विचार सदैव श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी से सुनने को मिले हैं। वेदों में पूर्ण आस्थावान नित्य हवन (यज्ञ) कर्म करने वाला व्यक्ति कागज व पुस्तकों का विक्रेता तो है ही पर साथ ही साथ लेखन भी उसका कर्म है। यह स्वतन्त्र, अनुशासित लेखक लगभग तीन दर्जन से अधिक पुस्तकों के प्रकाशित होने की प्रसिद्धि प्राप्त किये है। अपना साहित्य ही नहीं, अपनी सामर्थ्य के अनुसार अन्य लेखकों, साहित्यकारों की कृतियों का प्रकाशन भी उन्होंने बड़ी भक्ति व श्रद्धा से स्वयं कराया है। स्व० दुर्गादत्त त्रिपाठी जी का 'गाँधी संवत्सर' महाकाव्य का प्रकाशन अकेले उनका प्रयास है। स्वयं के प्रकाशन की ललक सभी को होती है, किन्तु दूसरे का प्रकाशन करना एक संजीदगी की बात है।

एक समय वह भी था जब इसी दुकान पर पूज्य पं० दुर्गादत्त त्रिपाठी जी, रामगोपाल शर्मा 'रत्न', दयाव्रत शर्मा, श्री कृष्ण टंडन, 'सर्वे' जी, 'कैफ़' साहब, 'क़मर' मुरादाबादी जैसे हिन्दी तथा उर्दू साहित्य के लेखक, कवि, शायर भी वार्तालाप करते थे। गोलघर में तत्कालीन श्री लक्ष्मी नारायण उपाध्याय जी एडवोकेट के सुपुत्र श्री शान्ति प्रसाद उपाध्याय एडवोकेट व प्रदेश पत्रिका में 'बेधड़क' नाम से लिखने वाले श्री कान्ति प्रसाद उपाध्याय आदि के निवास मुरादाबाद स्थित 'शिमला हाऊस' नामक भवन पर हिन्दी, उर्दू तथा बंगला आदि भाषा के प्रेमियों, लेखक तथा कवियों का जो मेला नित्य सन्ध्या के समय लगता था वह मुरादाबाद का एक ऐतिहासिक साहित्यिक 'स्वर्ण युग' था, मैं दावे के साथ कह सकता हूँ। भले ही मैं उस समय छात्र था पर उन वरिष्ठ विभूतियों से मैंने बहुत पाया है जिनका मैं सदैव ऋणी रहूँगा। उन्होंने मेरे अनुभवों को वाणी दी है। यह ध्यान आते ही मुझे कविवर 'प्रसाद' जी की यह पंक्ति 'वे कुछ दिन कितने सुन्दर थे।' याद आ जाती है। वे काव्य संध्यायें समय की शिला पर ठोकी हुई कील की भांति हैं, अब क्या है, अब तो कहानी रह गईं।

प्रसंगवश बताता हूँ कि उस समय 'क़मर' साहब, 'कैफ़' साहब, 'कौकब', 'जालिब' मुरादाबादी, 'नसीर' बरलास, अज़हर मिर्जा 'ग़ालिब', नसीर उस्ताद, हबीब अहमद, विश्वम्भर 'मानव', अवतार कृष्ण, विश्व गुप्त जी, महावीर सिंह 'वीर', बाला जी दुबे, दिनेश चन्द पाँडे, भानुदेव शर्मा (त्रिगुणायत), मदन मोहन व्यास, कृष्ण प्रकाश अग्रवाल, भगवत सरन अग्रवाल 'मुमंताज़' उर्फ़ जेली, रामदत्त पन्त, प्रभात कुमार जोशी, छदम्मी लाल शर्मा 'विकल', लाल मणि पूठिया, लक्ष्मी चन्द्र माथुर, दयाशंकर गुप्ता, दयाशंकर जैतली, गिरीश चन्द्र त्रिपाठी, ठाकुर रामप्रकट सिंह आदि कुछ नाम विशेष रूप से नित्य प्रति होने वाले इस सर्व भाषा साहित्यिक मेले के आर्कषण थे। समय के अन्तराल से कुछ नाम छूट गये हों तो उन सभी की आत्माओं से क्षमा याचना है। कुछ वर्षों बाद श्री शान्ति प्रसाद उपाध्याय जी इस मकान को बेचकर बम्बई निवास करने लगे थे। कान्ति उपाध्याय जी अपने कचहरी रोड स्थित उपाध्याय बिल्डिंग पर चले गये। वीरेन्द्र गुप्तः जी का स्वामित्व और यह दुकान संभवतः विधाता ने इसी निमित्त निर्मित कराई हो। यदि

ऐसा न होता तो इतने साहित्यकारों का विश्राम व मिलन–स्थल कहाँ सम्भव था? पुनः दोहराना चाहूँगा कि यह सब श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के मधुर व्यवहार व संस्कारों की देन ही है। महाकवि दुर्गादत्त जी त्रिपाठी के अभिनन्दन समारोह के सम्बन्ध में दुकान पर यदा–कदा श्री कान्ति प्रसाद उपाध्याय, गिरधर दास पोरवाल जी तथा मैं भी विचार–विमर्श करते रहते थे इस आयोजन में श्री वीरेन्द्र जी का योगदान भी स्तुत्य है। 'ज्योत्स्ना' साहित्यिक संस्था की गोष्ठियों का भी एक लम्बा लिखित इतिहास श्री राज नारायण जी के पास सुरक्षित है–इस गोष्ठी में भी इन सभी के अतिरिक्त श्री दुर्गादत्त त्रिपाठी, केशव चन्द्र मिश्र तथा विनोद कुमार सेठ भी अपना सुमधुर काव्य पाठ करते रहे हैं। श्री कान्ति प्रसाद जी कुछ वर्षों बाद चल बसे और शान्ति प्रसाद जी का भी निधन हो गया। हिन्दी का यश गाने वाली स्वयं–भू संस्थाओं में से किसी साहित्यकार ने उनकी संवेदना में शोक सभा करके दो मिनट का मौन रखने का स्वांग भी नहीं रचा। यह मुरादाबाद है।

यों तो लिखने को बहुत हैं पर कुछ सीमा भी रखनी चाहिए। चलते–चलते एक विशेष बात बताना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ कि श्री वीरेन्द्र जी में एक विशेष गुण मैंने अकस्मात् पाया कि वे गुप्त रूप से संकट ग्रस्त परिवारों को मर्यादा पूर्ण गुप्त सहायता भी करते थे। किसी न किसी रूप से यह रहस्य अचानक मेरे ज्ञान में आ गया। परिवार विशेष को जो भयानक बेरोज़गारी व भुखमरी के कगार पर था उसकी मान मर्यादा रखते हुए आर्थिक सहायता तब तक करते रहे जब तक वह पूर्ण समर्थ नहीं हो गया। यह गुप्त योगदान जिस रूप में उन्होंने दिया वह विचित्र है–बुद्धि से परे है। उससे परिवार विशेष को लेषमात्र ग्लानि भी नहीं हुई और न हीनता व दीनता का आभास। समाज में उसकी सुन्दर छवि भी बनी रही और उसकी पूर्ण मर्यादा भी। स्मरण रहे कि वह केवल सहयोग की दृष्टि से योगदान ही था, दान नहीं था। यह सभी की समझ से परे ही रहेगा। ऐसे व्यक्ति को नमन है। इस संसार में स्वार्थी बहुत मिलेंगे, ढोंगी सहायक भी होंगे पर दूसरों के सुख में ही अपना सुख समझने वाला बिरला ही होगा। यथाः–

औरों को हंसते देखो, हंसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।।

ढोंगी ठग तो मिल जायेंगे पर वास्तविक त्यागी, तपस्वी, कर्मठ व्यक्ति दूसरों के सुख में अपना सुख समझने वाला बिरला ही होगा। कबीर दास जी की उक्ति है–

कबिरा आप ठगाइये और न ठगिये कोय।
आप ठगा सुख होत है, और ठगा दुःख होय।।

सम्पर्क : लोहागढ़,
मुरादाबाद

केवलाद्यो भवति केवलादी

रामचन्द्र सिंह "क्रान्तिकारी"

सामाजिक व्यक्ति को पुरस्कृत करना ही अभिनन्दन है, जिन लोगों ने समाज, राष्ट्र, धर्म के लिये अपने को न्यौछावर कर दिया है उन्हें सम्मानित करना हम लोगों का परम कर्त्तव्य हो जाता है। मैं नैपाल निवासी हूँ और श्री ब्रह्मानन्द नैस्टिक जैसे महान उपदेशकों के साथ घूमने और सेवा कर कुछ प्राप्त करने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ है, इसके लिये मैं उन गुरुजनों का ह्रदय से आभार प्रकट करता हूँ।

उन्हीं लोगों की कृपा है कि नैपाल से लेकर भारत तक प्रचार करने का सुअवसर मिल रहा है, इसी सन्दर्भ में मुझे श्री वीरेन्द्र गुप्तः महाशय जी की कुछ पुस्तकें पढ़ने को मिली, श्री गुप्तः जी सामाजिक सेवा, आर्य समाज के प्रति आस्था, स्वामी जी के अधूरे कार्यों को पूरा करने का संकल्प लेकर चल रहे हैं सो सराहनीय कार्य है इसी बीच यह भी खबर मिली की इनका अभिनन्दन हो रहा है मैं इसको सुनकर बहुत ही खुश हो रहा हूँ, कि ऐसे व्यक्ति का अभिनन्दन तो होना ही चाहिये जिससे उनका मनोबल बढ़े और अधूरे कार्यों को पूरा कर सकें। मैं नैपाल की आर्यसमाज की तरफ से हार्दिक अभिनन्दन करते हुए सुखी जीवन और दीर्घायु की कामना करता हूँ।

नैपाल

राजर्षि तुल्य श्री वीरेन्द्र गुप्तः

भारत की ऋचा भूमि को आदिकाल से ही ओजस्वी, मनस्वी और तपस्वी प्रतिभाओं ने अपने व्यक्तित्व से और प्रचण्ड शक्ति से प्रभावशाली बनाये रखा है। इन प्रतिभाओं ने जो वातावरण भारत के सामान्य जन को विरासत में प्रदान किया है, वह आज तक यथावत संतुलित रखा गया है। समय के प्रवाह में विश्व के अनेक देशों की सभ्यता संस्कृति बह जाती है, परन्तु भारत की सभ्यता संस्कृति ने समय के साथ–साथ अपना वर्चस्व सदैव बनाये रखा है। उन्नीसवीं शताब्दी में जब भारतीय नागरिकों को जन–जागरण की सामाजिक और आध्यात्मिक आवश्यकता हुई तो दैवीय सत्ता ने हमारे देश में अनेक महापुरुष अवतरित किये। इन सभी ने भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में रचनात्मक कार्य किये। ऐसी विभूतियों में एक नाम स्वामी दयानन्द सरस्वती का है, सम्प्रति स्वामी जी को आर्य समाज आन्दोलन का जन्म दाता मान कर स्मरण किया जाता है।

मुरादाबाद भी एक पुण्य भूमि है। आज भी रचनात्मक लेखन के क्षेत्र में मुरादाबाद नगर की अनेक प्रतिभायें अन्तर्राष्ट्रीय और राष्ट्रीय स्तर पर लेखन कर रही हैं। मौलिक लेखन एवं शोध परक प्रस्तुतियों के क्षेत्र में मुरादाबाद नगर के साहित्यकारों में सर्व श्री मनोहर लाल वर्मा, डा० राजेश शुक्ल, बहोरीलाल शर्मा, वीरेन्द्र गुप्तः, शंकर दत्त पांडे, डा० अजय अनुपम और पुष्पेन्द्र वर्णवाल आदि लेखक निःस्वार्थ भाव से रचनात्मक लेखन के क्षेत्र में अग्रणी हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में भी मुरादाबाद के प्रबुद्ध साहित्यकारों में मुंशी इन्द्रमणि, खेमकरण दास त्रिवेदी, लाला शालिगराम, पंडित ज्वाला प्रसाद मिश्र, बलदेव प्रसाद मिश्र, सूफी अम्बा प्रसाद, महात्मा नारायण स्वामी आदि प्रसिद्धि पा चुके है।

प्रबुद्धता का मापदण्ड केवल लेखन नहीं होता। लेखन तो व्यावसायिक भी होता है, उसमें प्रबुद्धता भी प्रधानता बनाये हो सकती है, परन्तु निःस्वार्थ भाव से किये गये लेखन में सुरक्षित भावना तुलनात्मक रूप से अधिक निर्माणात्मक होती है और जब किसी रचनात्मक लेखन को सही दिशा में संरक्षण मिल जाता है, तो वह निःस्वार्थ भाव से किया गया लेखन युग पर अपनी छाप छोड़ जाता है। उन्नीसवीं शताब्दी में मुरादाबाद के सम्मानीय साहित्यकारों को नगर के वरिष्ठ, आचार्य पंडित भवानी दत्त जोशी का प्रेरणास्पद संरक्षण प्राप्त था। नगर के ही एक प्रशासकीय व्यवस्था में जुड़े ब्रिटिश कालीन गुणग्राही राजा जय किशन दास जी ने जब एक बार मुरादाबाद में अपने समकालीन महात्मा स्वामी दयानन्द जी सरस्वती का उनके आगमन पर अपने विशाल भवन में स्वागत किया, तो उनके विचारों को युग की आवश्यकता के अनुकूल और अधिक प्रचार के लिये संरक्षण दिये जाने के लिये अपने विचारों को लिपिबद्ध करने का आग्रह किया।

फलतः स्वामी दयानन्द जी सरस्वती के बुद्धि कौशल से राजा जयकिशन दास की मुरादाबाद स्थित कोठी में ही एक अद्भुत ग्रन्थ की रचना प्रारम्भ हुई जिसे आज आर्य समाज आन्दोलन का मूल ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' कहा जाता है। मुरादाबाद नगर में इस ग्रन्थ की मूल पाण्डुलिपि आज भी उपलब्ध है। इस प्रकार मुरादाबाद नगर आर्य समाज आन्दोलन का प्रथम केन्द्र रहा है।

आर्य समाज आन्दोलन ने अनेक प्रतिभाओं को प्रबुद्ध लेखन की दिशा दी है। आज भी यह क्रम जारी है। हमारे ही नगर मुरादाबाद में भी श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी वर्तमान में एक मात्र ऐसे आर्य समाजी स्वयं सेवक एवं साहित्यकार हैं, कि उन्होंने आर्य समाज की मूल भावना को प्रचारित प्रसारित करने में अपना पूरा जीवन लगा दिया। वह वैश्य कुल में जन्म लेकर भी व्यावसायी कदापि नहीं हैं। उनकी आय का आधे से अधिक भाग आन्दोलन की दृष्टि से आर्य समाज के सिद्धान्तों के प्रतिपादन में व्यय होता है। यह बात नगर का हर बुद्धिजीवी जानता है।

जहाँ तक मेरी जानकारी है, वह विगत तीस पैंतीस वर्ष से मुरादाबाद में हिन्दी का लेखन करते आ रहे हैं। उन्होंने मौलिक लेखन प्रधान ग्रन्थ भी लिये, कुछ नये आयामों पर सम्पादित ग्रन्थ भी प्रकाशित किये और बहुत संख्या में लघु पुस्तिकायें भी छापी हैं। वह बुद्धिजीवियों का सदैव आदर करते रहते हैं। इनके व्यावसायिक प्रतिष्ठान के सामने से निकलने वाला यदि कोई व्यक्ति इनकी जानकारी में बुद्धि जीवी है, तो निःसंकोच भाव से यह उसे अपने व्यावसायिक प्रतिष्ठान पर आदर के साथ बिठाते हैं, और अपनी एक नवीनतम प्रकाशित कृति सादर भेंट भी करते हैं। इतनी उदारता से पुस्तकों का दान करना भी एक महत्वपूर्ण योग्यता है। अब तक आपकी इकतीस कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। आप सढ़सठ वर्ष की आयु पार कर चुके हैं। आपके त्याग, दान और प्रेरणा से नगर में एक स्वच्छ साहित्यिक वातावरण को भी दिशा मिली है। अब आप पर आपके शुभचिन्तकों द्वारा 'वेद संस्थान' की ओर से एक अविस्मरणीय अभिनन्दन स्वरूप सम्मान ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। ऐसे शुभ अवसर पर मैं अपनी शुभकामना प्रस्तुत करते हुए परम कृपालु ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि परमार्थ व पुरुषार्थ के पुतले श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी को ईश्वर चिरंजीवी बनाये और हमारे नगर की साहित्यिक परम्परा अटूट बनी रहे।

मुरादाबाद

भीड़ से अलग एक व्यक्तित्व



शील कुमार शर्मा

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी कार्य अवश्य कागज बेचने का करते हैं पर कागजी नहीं हैं। प्रचलित अर्थों में साहित्यकार भी नहीं हैं, किन्तु अनेक ग्रन्थों का आपने सृजन किया है। नेतृत्व का दावा आपने कभी नहीं किया। पर आप में कुछ ऐसा है जो बरबस हमारे कदम रोक लेता है। मण्डी चौक में आपकी दुकान के सामने जब भी निकलता हूँ, याद नहीं पड़ता कि आपसे बिना मिले आगे बढ़ गया हूँ। कहा जा सकता है कि आप अनुल्लंघनीय हैं।

सहज मुस्कान, सफेद धोती कुर्ते से वेष्टित, मंझोली काया, आँखों से छलकता तारल्य, अपनाव भरी बातें–आपकी चाल जैसी ही न अधिक तेज न अधिक मंद। संक्षेप में यही आपका रेखा चित्र है।

मण्डी चौक की व्यस्तता के बीच भी हम जैसे ठाली आदमियों के लिये वीरेन्द्र जी समय निकाल ही लेते हैं। कम बड़ी बात नहीं है यह?

छोटी से छोटी बातों पर भी आपकी दृष्टि रहती है। आपके व्यक्तित्व का केन्द्र गवेषणा और अनुसंधान तो है ही, करुणा की अन्तः सलिला भी भीतर ही भीतर प्रवाहित होती रहती है, किन्तु हर किसी को दीखती नहीं। कपड़े का जूता पहनते हैं क्योंकि चमड़े का जूता पशु वध का निमित्त बनता है।

वह देव नागरी लिपि के ही नहीं नागरी के भी भक्त हैं। कभी उन्हीं के मन में आया था कि घड़ियों पर हिन्दी अंक होते तो कितना अच्छा होता। वीरेन्द्र जी ने यह चाह पूरी की। केवल अपने लिये ही नहीं, सबके लिये हिन्दी अंकों की घड़ियाँ गायत्री मन्त्र सहित आपने सुलभ करा दी।

अपना होश संभालते समय से ही वह आर्य समाज से जुड़े हुए हैं। आर्य समाज के जनपदीय स्तम्भों और विद्वानों पं० उमेश दत्त जी शास्त्री, आचार्य भगवत सहाय जी, पं० गोपीनाथ जी आदि के संस्मरण बड़े उत्साह से सुनाते हैं। जो भी पुस्तक लिखते हैं एक प्रति मुझे अवश्य देते हैं। नवीनतम आख्यान ग्रन्थ 'आनुषक्' ने मुझे बहुत प्रभावित किया। ऐसी सोद्देश्य पुस्तकें होनहार बच्चों के लिये निश्चय ही प्रेरक सिद्ध होंगी। अपने प्रकाशन संस्थान से पं० दुर्गा दत्त त्रिपाठी तथा पुष्पेन्द्र वर्णवाल के कुछ ग्रन्थ भी आपने प्रकाशित किये हैं। व्यापारिक प्रकाशन न होते हुए भी यह जोखम आपने उठाया है।

हिन्दी से संबंधित कोई भी आयोजन हो वह उसमें भरसक सहयोग देते हैं। संस्कृत और संस्कृति दोनों के ही वीरेन्द्र जी भक्त हैं। यदि मुझे ठीक स्मरण है तो एक पुत्री को आपने संस्कृत की उच्च शिक्षा दिलाई है।

इस ग्रन्थ द्वारा आपका सम्मान किया जा रहा है यह तो स्पष्ट है ही, एक उपयोग इसका और भी है कि यह ग्रन्थ समान धर्मा लागों का एक मिलन स्थल बन गया है।

क्रमशः पृष्ठ ६३

लेखनी और लेखक


श्रीमति इन्दिरा गुप्ता

कहीं पर लेखनी से लेखक का मूल्यांकन होता हैं और कहीं पर लेखक से लेखनी का महत्व जाना जाता है। यहाँ प्रश्न छोटे बड़े का नहीं और न ही किसी के महत्व का है, हाँ यह अवश्य कहा जायेगा कि जब लेखनी प्रखर हो और जन–जन के हितार्थ उठाई गई हो तो उस लेखनी को देख कर सहसा मन में उद्‌गार उठते हैं कि यह किसकी लेखनी है। जिस प्रकार भारतीय संस्कृति में षड्–दर्शन की जानकारी होने पर किसी भी पण्डित के मन में यह विचार उठ सकता है कि इन श्रेष्ठ सूत्रों के सूत्रधार कौन हैं।

१. 'न्याय दर्शन' के प्रवर्तक हैं महर्षि गौतम। इन से पूर्व का कोई ग्रन्थ ऐसा नहीं जिसमें तर्क, प्रमाण, वाद आदि का नियमबद्ध विवेचन हो।

२. 'वैशेषिक दर्शन' के प्रणेता महर्षि कणाद हैं। खेतों से अन्न के कण बीन कर अपनी भोजन व्यवस्था करने वाले इस तपस्वी का नाम 'कणाद' पड़ा।

३. 'सांख्य दर्शन' के रचयिता महर्षि कपिल हैं जिन्होंने प्रकृति पुरुष की विवेचना करके दोनों के पृथक–पृथक स्वरूपों का दिग्दर्शन कराया।

४. 'योग दर्शन' के रचनाकर महर्षि पातंजलि हैं। उन्होंने योग द्वारा प्रभु मिलन के मार्ग का ज्ञान कराया।

५. 'मीमांसा दर्शन' के सूत्रधार महर्षि जैमिनी हैं। यह धर्म के विषय में केवल वेद ही प्रमाण है, इस विषयक धर्म का ज्ञान और वेदाध्ययन के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करने वाला ग्रन्थ है।

६. 'वेदान्त दर्शन' के प्रस्तोता महर्षि व्यास हैं। इस ग्रन्थ का उद्‌देश्य ब्रह्म के साक्षात्कार से ही स्थिर शान्ति और परम आनन्द एवं मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करना है।

अब हमारा ध्यान दूसरी ओर भी जाता है, रवीन्द्र नाथ टैगोर पर, जिन की एक रचना "सेवक" उप नाम से प्रकाशित नहीं हो पाई और वही उल्टी सीधी तुक बन्दी वाली रचना टैगोर जी का नाम लिखा होने से प्रकाशित हो गई। दर्शन की लेखनी से लेखक का मूल्यांकन हो रहा है और टैगोर की घटना से भान होता है कि लेखक के नाम से लेखनी का महत्व बनता है। इसमें महत्वपूर्ण कौन है इस पर आप स्वयं विचार करें।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः का साहित्य अपने नगर मुरादाबाद से ही प्रकाशित होता है। भातरवर्ष के प्रत्येक कोने में जाकर यह पाठकों के मन को प्रभावित कर अनायास ही उन्हें मुरादाबाद की ओर आकर्षित करने लगता है। इनका साहित्य अपने में एक विशेष गुण रखता है। उसमें जिस विषय को लिया गया है उसे सर्वांगिक रूप से परिपूर्णता

के प्रस्तुत किया गया है उसमें कलेवर बढ़ाने के उद्देश्य से कभी व्यर्थ का प्रलाप नहीं किया गया, केवल सार भाग को ही प्रस्तुत किया गया है।

श्री गुप्तः जी के साहित्य की कोई सी भी कृति जब भी किसी पाठक ने पढ़ी है तो वह उनकी सभी कृतियों का अवलोकन करना चाहता है। गुप्तः जी ऐसे लेखन को साहित्य मानते हैं जिसे "एक भाई अपनी बहिन के सामने ऊंची आवाज से शंका रहित होकर पढ़ सके।" साहित्य का सीधा प्रभाव मन–मस्तिष्क पर ही पड़ता है। मन–मस्तिष्क बिगड़ जाने पर सारा जीवन चौपट हो जाता है, इसलिये आर्ष और आदर्श साहित्य का सृजन महत्वपूर्ण, आवश्यक और अनिवार्य हो जाता है जिसकी पूर्ति श्री गुप्तः जी ने कठोर परिश्रम से की है। उन्हीं के शब्दों में "साहित्य कोई बहुत बड़ी प्रशंसा अथवा सम्मान पत्र प्राप्त करने का साधन नहीं, वह तो मानव जीवन को उन्नत बनाने के लिये प्रेरणा दायक होता है। जिस साहित्य से मानव जीवन निखरे, उन्नत हो, प्रगति के पथ पर चलने के लिये उत्सुक हो, केवल अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न हो, वरन सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझे, इस प्रकार की प्रेरणा देने वाला साहित्य ही वास्तविक साहित्य है।"

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्वधे।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सरव्येषु च।।

ऋग्वेद १/१०/५

अनेक शास्त्रों का ज्ञान कराने हारे अथवा अनेक अज्ञान आदि दोषों को दूर करने में समर्थ, ज्ञान–वाणी का उपदेश करने वाले आचार्य को प्रसन्न करने के लिये मान आदर के बढ़ाने वाला वचन व कार्य करना योग्य है। जिससे ज्ञान–वाणी में रमण करने वाला आचार्य हमारे मित्रों समान स्त्री, बन्धुओं और पुत्रों को भी बराबर उत्तम उपदेश करे, जिस प्रकार ज्ञानप्रद परमेश्वर जीव को ज्ञान–वर्धक स्तुति योग्य ज्ञान–वेद का उपदेश करता है।

उक्त वेदाज्ञा के अनुसार हमारा कर्तव्य हो जाता है कि निःस्वार्थ सत्य उपदेष्टा, विचारक और लेखक श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का हम भी सम्मान करें और वे निरन्तर अपनी लेखनी द्वारा ज्ञानोपदेश देते रहें।

सम्पर्क : पटपट सराय, गंज
मुरादाबाद

पृष्ठ ६१ का शेष

व्यावसायिक सूखे पन से ग्रस्त इस नगर में चलो यों ही कुछ रसविंदु अपनाव के बरसें तो।

प्रभु वीरेन्द्र जी को स्वस्थ आयुष्य दे।

सम्पर्क : डिप्टी गंज,
मुरादाबाद

अनिष्ट क्यों होता है


राम कृष्ण

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के विशाल साहित्य के अवलोकन से उनकी योग्यता का पता चलता है। उनकी "गायत्री साधन" पुस्तक अत्यन्त महत्व की है और साधना के विषय में परिपूर्ण है। उसी में वर्णित (अनिष्ट क्यों होता है) इस शीर्षक को पढ़कर मैं बहुत आश्चर्य में पड़ गया, मैंने इस प्रकार तर्कपूर्ण रीति से इस विषय को आज तक किसी को समझाते नहीं देखा, उसे आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत करता हूँ।

मन्त्र वेदों के ही होते हैं, मानव रचित ग्रन्थों के सूत्रों को मन्त्र नहीं उन्हें श्लोक के नाम से जाना जाता है। मन्त्र में कामना, प्रार्थना और शक्ति का समावेश होता है, जो हमारे शरीर, मन और बुद्धि को प्रभावित कर हमारे में समाविष्ट होकर कामना के लक्ष्य तक सुरक्षित पहुंचाने में साधक सिद्ध होते हैं।

साधन के दो तार हैं एक आदेशात्मक तार और दूसरा क्रियात्मक। आदेशात्मक तार का तारतम्य बुद्धि से होता है और क्रियात्मक तार का तारतम्य मन से होता है, बुद्धि की आदेशात्मक क्रिया इतनी सूक्ष्म होती है कि हम उसे समझ नहीं पाते, मन शीघ्र ही ग्रहण कर उसे क्रियात्मक रूप में उपस्थित कर देता है तब हम समझ पाते हैं बुद्धि के उस सूक्ष्म आदेश को।

शरीर के अन्दर प्रत्येक अक्षर का उत्पत्ति स्थान पृथक–पृथक है। उसी के साथ–साथ शरीर में संघातात्मक द्रव्य युक्त, प्रीतात्मक द्रव्य युक्त, क्रोधात्मक द्रव्य युक्त, सृजनात्मक द्रव्य युक्त स्थान हैं, इसी प्रकार बहुत से द्रव्य युक्त स्थान हैं यह द्रव्य युक्त स्थान प्रत्येक मानव शरीर में सभी के पास होते हैं। हमारे देखने में अनेक बार आया है कि किसी ने किसी को क्रोध में आकर कुछ अनर्गल प्रलाप कर दिया, यह प्रलाप शरीर के क्रोधात्मक द्रव्य युक्त स्थान से उठकर मुख पर आया और उसने दूसरे व्यक्ति के शरीर में प्रवेश कर उसके क्रोधात्मक द्रव्य युक्त स्थान को टंकार दी तो वह भी क्रोधित हो उठा, इसी प्रकार किसी ने मधुरता के साथ सौम्य शब्दों को बोलते हुए अपने प्रीतात्मक द्रव्य युक्त स्थान को खोल दिया तो उसने दूसरे के शरीर में स्थित प्रीतात्मक द्रव्य युक्त स्थान पर टंकार देकर उसे भी प्रफुल्लित कर प्रीति की गंगा बहा दी। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारे शरीर में से जिस द्रव्य युक्त स्थान से तरंगें उठकर हमारे मुख पर आती हैं तो वह दूसरों के शरीर में प्रवेश करके उसी द्रव्य युक्त स्थान को जागृत कर देती है।

किसी व्यक्ति ने मानव रचित मन्त्र के द्वारा साधना की, कालान्तर में देखते हैं कि वह पागल हो गया, उसका विवेक नष्ट हो गया, वह कुछ सोच समझ नहीं पा रहा। उस समय सब यही कहते सुने जाते हैं कि इसकी साधना में कोई कमी रह गई या भूल हो गई, जिस कारण उस देवता ने उसे दण्डित किया है। वास्तव में यह बात नहीं,

वास्तविकता कुछ और है। यह जितने भी मानव रचित कहे जाने वाले मन्त्र हैं इनमें बहुत प्रकार के दोष भरे पड़े हैं, जिससे साधारण साधक क्या बड़े–बड़े धुरन्धर भी इस चक्कर में पड़ जाते हैं, क्यों? जब कामना कुछ और, प्रार्थना कुछ और, शक्ति कुछ और, तथा साथ में शब्दावली कुछ और। जब सब कुछ भिन्न ही है तो कैसे कुशलक्षेम हो सकेगा, उससे तो विनाश ही होना है, क्यों? हम नहीं जान सकते कि हमारे शरीर के किस स्थान से किस अक्षर की उत्पत्ति होती है और उससे प्रभावित होने वाली कौन सी सृजनात्मक शक्ति किस स्थान पर है, इसका चयन करना कोई साधारण बात नहीं, बड़े–बड़े योगी, सन्त, विद्वान् इसका चयन नहीं कर सके, तभी तो इन अस्त–व्यस्त मानव रचित मन्त्रों के जाप से शरीर में एक द्वन्द्वात्मक भयंकर विस्फोट हो जाता है, जिस कारण साधक भयंकर चक्कर में पड़कर अपने जीवन को नष्ट–भ्रष्ट कर लेता है। इस भयंकर विस्फोट से बड़े से बड़ा गुरु भी उसे बचा नहीं सकता।

परमात्मा की शारीरिक रचना बड़ी विचित्र है साथ में उसकी न्याय व्यवस्था भी अडिग और निश्चल है, मानव गलती करे और उसकी न्याय व्यवस्था से बच जाये? यह असम्भव है। वेद के मन्त्रों में यह दोष नहीं, उनमें सम्बोधन, कामना, प्रार्थना, शक्ति और शब्दावली का चयन सब कुछ क्रमानुसार समानान्तर है, कहीं विरोधात्मक नहीं जिसमें द्वन्द्वात्मक भयंकर विस्फोट होने की कोई सम्भावना हो ही नहीं सकती, इसके साथ वेद मन्त्रों के द्वारा साधना कभी अनिष्टकारी नहीं होती उससे तो सदैव प्रसन्नता और रक्षण ही प्राप्त होता है। जिस प्रकार माता अपने बच्चे को रोते हुए देख कर झट उठा कर गले से लगा लेती है, चाहे वह कितना ही गंदा क्यों न हो, उसी प्रकार प्रभु जी भी हमें हमारी गन्दगी का ध्यान न करते हुए अपनी गोद में उठा लेते हैं। अब आपको स्पष्ट हो गया कि अनिष्ट क्यों होता है। अनिष्टता से बचने का केवल एक ही मार्ग है कि आप मानव रचित कहे जाने वाले मन्त्रों से साधना न करें, केवल वेद के मन्त्रों से ही साधना करें।

भविष्य पुराण में भी स्पष्ट कहा है :–

वृथा जाप्यमवैदिकम्।

भविष्यपुराण उत्तर १२२/६

अवैदिक मन्त्रों का जाप करना निरर्थक है।

सदस्य आर्य समाज, मण्डी बाँस
लीला आवास
चौरासी घन्टा, मुरादाबाद

सरल एवं शांतमनः व्यक्तित्व



राजेन्द्र कुमार

आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने आर्य समाज के दस नियमों में तीसरा नियम "वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है" बनाया। सृष्टि के प्रारम्भ में मानव रचना के साथ–साथ परमपिता परमात्मा ने अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा, ऋषियों के द्वारा वेद का ज्ञान दिया, जिसमें मनुष्य के कल्याणार्थ सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान, लौकिक तथा पारलौकिक सुखों की प्राप्ति के साधन बीज रूप में वर्णित किये हैं।

वेदों में बीज रूप में आये सिद्धान्तों तथा प्रतिपादित विषयों का सर्व साधारण जनता के लिये उनकी भाषा में सरल एवं विस्तृत रूप से प्रस्तुत करना एक महान परोपकार का कार्य है।

महर्षि दयानन्द जी के द्वारा बताये परम धर्म एवं सर्वहितकारी कार्य में संलग्न एक सरल एवं शान्तमनः व्यक्तित्व जो हमारे नगर में लगभग पिछले ३४ वर्षों से निरन्तर, निर्बाध गति से कार्यरत इस व्यक्तित्व का नाम है श्री वीरेन्द्र गुप्तः। "श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी" व्यवसाय से व्यापारी होते हुए भी वेद–ज्ञान के विषयों की छोटी–बड़ी पुस्तकों की रचना कर श्री गुप्तः जी ने एक आश्चर्यजनक अनुकरणीय एवं सराहनीय कार्य किया है।

श्री गुप्तः जी की सभी पुस्तकें पठनीय हैं। वे शास्त्रोक्त गूढ़ सिद्धान्तों की सरस भाषा एवं कहानियों की शैली में अत्यन्त रोचक ढंग से प्रस्तुत करते हैं। उन्होंने जहाँ ज्ञान, कर्म, उपासना, दिव्य दर्शन आदि पुस्तकों में दार्शनिक विषयों को लिया, वहीं हृदय में परोपकार एवं मानव कल्याण की भावना से ओत–प्रोत होकर, इच्छानुसार सन्तान, पुत्र प्राप्ति का साधन, अदीनास्याम् आदि जैसे विषयों को लेकर भी रचना की है। आनुषक् में कहानियों के माध्यम से गम्भीर दार्शनिक विषयों को बच्चों तक पहुंचाने का एक अनूठा प्रयास किया है।

मैं श्री गुप्तः जी के उज्ज्वल भविष्य एवं शतायु होने की कामना करता हूँ।

उप प्रधान
आर्य समाज, स्टेशन रोड
मुरादाबाद

ऋषि सिद्धान्तों के प्रसारक

भीष्म देव आर्य वानप्रस्थी
सिद्धान्त शास्त्री

मैंने श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के कुछ ग्रन्थ पढ़े, जिसमें इच्छानुसार सन्तान व वेद दर्शन तो उनका अद्‌भुत ग्रन्थ है। इन के अन्य ग्रन्थ जैसे 'पुत्र प्राप्ति का साधन' व 'गर्भावस्था की उपासना', 'संस्कार', 'नवसम्वत्' आदि कई ग्रन्थ बड़े उपयोगी जान पड़ते हैं। लोगों ने इन ग्रन्थों की बड़ी सराहना की है। अप्राप्त पुस्तक 'धर्म निर्णय', चारों भागों का प्रकाशन कर गुप्तः जी ने समाज का बड़ा ही उपकार किया है। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के कार्यों से आर्य समाज के साहित्य का तथा महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के सिद्धान्तों का बड़ा प्रचार हो रहा है। श्री गुप्तः जी ने अपने जीवन के अनुभवों से उपयोगी औषधियों का भी समय अनुसार निर्माण किया है। महर्षियों ने राष्ट्र, धर्म, जाति के लिये चरित्रवान सन्तान की उत्पत्ति द्वारा राष्ट्र की उन्नति का प्राचीन समय में जो मार्ग दिखाया था वह गुप्तः जी के परिश्रम से उद्‌घोषित साहित्य के स्वाध्याय से पुनः प्रत्यक्ष हो रहा है। हम उस पथ पर चलें तो वह दिन दूर नहीं जब फिर से भारत जगद्‌गुरु हो सकेगा। आज तो पश्चिम की हवा में भौतिक वादी जीवन बिगाड़ू वातावरण बनता जा रहा है। आदर्श गृहस्थ तो बहुत कम होते जा रहे हैं। प्रभु से प्रार्थना है कि हमारे अच्छे साहित्यकार लेखक श्री गुप्तः जी जैसे इस देश में पैदा होकर और राष्ट्र, धर्म व आर्य जाति का उत्थान करें। प्रभु से प्रार्थना है कि श्री गुप्तः जी को स्वास्थ्य प्रदान करे व उनकी दीर्घायु की प्रभु से कामना के साथ यह शुभ सन्देश हमारा स्वीकार करें।

सम्पर्क : आर्य समाज, शिवगंज़
राजस्थान

पुरुषार्थ चतुष्टय अनुष्ठान


उमेशपाल बरनवाल

तां पुषञ्छिवतनामेरयस्व यस्यां बीजंमनुष्यावयन्ति।
या न ऊरूउशती विश्रयाते यस्यामुशन्तः प्रहराम शेपम्।।
ऋग्वेद १०/८५/३७

अपनी सतत् साधना और मर्यादित गार्हस्थ भावना एवं आस्थानिष्ठ जीवन व्यतीत करने वाले संस्कारिक धर्मानुयायी हिन्दी लेखक व विचारक श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने एक ग्रन्थ "इच्छानुसार सन्तान" शीर्षक से हिन्दी भाषा में प्रस्तुत कर स्वतन्त्रता के पश्चात् हिन्दी समाज को ऐसी अमूल्य निधि सौंप दी है, जो लोक मंगल की दिशा में पुरुषार्थ चतुष्टय के अनुष्ठान पर समग्ररूप से दिशा निर्देश करती है।

हिन्दी भाषा में शुभ कर्मों के लिये नर–नारी को समान रूप से प्रेरित करने वाला श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का ग्रन्थ "इच्छानुसार सन्तान" के प्रकाश में आने से परिवारों में गुप्त रूप से कामशास्त्रीय और अश्लील ग्रन्थों को पढ़े जाने के व्यसन पर एक अवरोध का संकेत मिलता है। यद्यपि पुस्तक का लेखन मूल रूप में व्यावसायिक दृष्टि से नहीं हुआ है, अतः सीमित साधनों के कारण पुस्तक का प्रचार भी व्यावसायिक पुस्तकों के प्रचार के अनुरूप नहीं हो पाया है। अब तक पुस्तक के तीन संस्करण प्रकाशित हुये हैं, परन्तु विक्रय की सुचारु व्यवस्था और विज्ञापन के आधार पर पुस्तक को पाठकों तक पहुंचाने की दिशा में आकर्षण का विधान लेखक द्वारा स्वीकार न किये जाने से पुस्तक के पाठक भी सीमित रहे हैं और यह सीमित वर्ग अपने द्वारा लेखक को प्रेषित डाक–पत्रों में अंकित भाषा एवं आभार के शब्दों से पुस्तक की उपयोगिता ज्ञापित करने में एवं समय–समय पर इसके सम्यक् अध्ययन से लाभान्वित होने की पुष्टि करता रहता है। अर्थात् इन पत्रों में लेखक को इस बात के लिये बधाई दी जाती रही है कि आपकी पुस्तक "इच्छानुसार सन्तान" को पढ़ने और निर्देशों का पालन करने से हमारे परिवार में कई कन्याओं के पश्चात एक पुत्र का पहली बार जन्म हुआ है।

"इच्छानुसार सन्तान" नामक विषय कामशास्त्र अथवा आयुर्वेद का कोई स्वतन्त्र अंग नहीं है, तथापि यह एक महत्वपूर्ण उपांग अवश्य है। इस उपांग का प्राचीन शास्त्रों में एक स्थान पर संग्रहीत रूप प्रायः नहीं देखा जाता। प्रकीर्ण रूप में अनेक ग्रन्थों में यह सब समाविष्ट अवश्य है। "इच्छानुसार सन्तान" के प्रत्येक अध्याय में शीर्षक विषय की आलोचनात्मक एवं उपयोगिता पूर्ण व्याख्या की गयी है और उपयुक्त विधान को संहिता रूप में प्रस्तुत करने का सार्थक प्रयास किया गया है।

हिन्दी, अंग्रेजी आदि सभी भाषा साहित्यों में अनेक पुस्तकें इस विषय पर प्राप्त हैं। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने अपने ग्रन्थ "इच्छानुसार सन्तान" में वैसी पुस्तकों के आधार पर विषय का चयन न करते हुये राष्ट्र भाषा खड़ी बोली हिन्दी में जो यह प्रयास किया है, वह आयुर्वेद के प्राचीन ऋषि वचनों के प्रसंगानुकूल संग्रह पर आधारित है।

"इच्छानुसार सन्तान" में आयुर्वेद की अवधारणाओं और निष्कर्षों का समन्वित आंकलन नियमित स्वास्थ्य, सात्विक आचार–विचार, सम्यक दिनचर्या, सुचारू गृहस्थ जीवन, कन्या व पुत्र के प्रति सामाजिक धारणा, सोलह कलाऐं, गर्भ स्थिति, गर्भ रक्षा, गर्भस्थ शिशु में संस्कारों का बीजारोपण, शिशुका पोषण संस्कार, शिक्षा और आवश्यकतानुसार सन्तति निरोध जैसे सर्वोपयोगी विषयों को लेकर समाज निर्माण की दिशा में हुआ है। कहने का आशय यह है कि वीरेन्द्र गुप्तः जी ने "इच्छानुसार सन्तान" ग्रन्थ का लेखन न केवल शास्त्रीय ज्ञान से अवगत कराने के निमित्त किया है, अपितु व्यावहारिक दृष्टि से भी पारिवारिक उपयोग एवं समाजशास्त्रीय विधान की सर्वकालिक उपयोगिता को ध्यान में रखकर किया है। फलतः सभी दृष्टिकोणों से ग्रन्थ उपयोगी हो गया है।

रचनात्मक ग्रन्थों के लिखने में सर्वाधिक कठिनाई मूल्यों को बनाये रखने की दिशा में पाठकों का एक वर्ग तैयार करने में आती है। स्वतन्त्रता के बाद से यद्यपि भारतीय समाज में साक्षरता बढ़ी है, परन्तु शैक्षिक और मानसिक ह्रास भी हुआ है। विषय के पर्याप्त कथन में ऐसे पाठकों के बीच अपनी कृति प्रस्तुत करने में हर लेखक को दुविधा रहती है। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी जैसे उत्साही और समाज़ निर्माता ही ऐसे विषयों पर लेखनी उठाकर सरल सुबोध भाषा में विषय को व्यावहारिक पर्याय देने का प्रयास करते हैं। विगत पच्चीस वर्ष के व्यक्तिगत सम्बन्धों में मैंने स्वयं लेखक की इस महत्वपूर्ण कृति "इच्छानुसार सन्तान" पर उसके पाठकों की प्रतिक्रिया स्वरूप आये डाक पत्रों में उल्लिखित उपयोगिता को पढ़ा समझा है। निश्चय ही लेखक को अपने विषय प्रतिपादन में एक महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई है।

मानव जाति की सेवा के लिये प्रस्तुत किया गया यह निर्देश ग्रन्थ एक सद्गृहस्थ के लिये एक सन्दर्भ ग्रन्थ तो है ही, एक सम्यक् आचार संहिता भी है। मेरा विश्वास है कि सद्गृहस्थों के साथ चिकित्सक वर्ग को भी इस ग्रन्थ के दिशानिर्देश अपनाने में कोई संकोच नहीं करना चाहिये। मेरा यह भी विश्वास है कि इस ग्रन्थ की उपादेयता ज्ञापित होने से भारत के नये निर्माता वर्ग में स्वाभिमान की भावना उभरकर आयेगी और युग निर्माण की दिशा में फिर एक बार भारत के गर्भस्थ संस्कारित अभिमन्यु समाज में व्याप्त कौरवों की चुनौती को स्वीकार कर सकेंगे।

एम०डी० (ए०एम०) एच०एम०डी०एस०
बगिया नवाबपुरा, मुरादाबाद

साधना के बीच—श्री वीरेन्द्र गुप्तः



सुमन कुमार जैतली

बहुमुखी प्रतिभा के धनी श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का जन्म सन् १९२७ ई० को हुआ। इनके पिता स्व० लाला भूकन सरन जी कागजी मुरादाबाद के एक प्रसिद्ध व्यवसायी रहे हैं। उनके संरक्षण और कुशल निर्देशन में ही इन्होंने व्यावसायिक शिक्षा और अनुभव प्राप्त किया। व्यावसायिक क्षेत्र में कार्य करते हुए ही इनके मन में वैदिक साहित्य लेखन एवं आर्य समाज के सिद्धान्तों और नियमों के प्रचार प्रसार हेतु एक अजीब सी व्यग्रता और छटपटाहट विद्यमान थी। नियमित रूप से अध्ययन करते हुए स्कूली शिक्षा प्राप्त करने का सुयोग अवसर प्राप्त न कर पाना तथा वेद—वेदांगों के गहन अध्ययन की समस्या इनके महान उद्देश्य की प्राप्ति में आड़े हाथों आ रही थी। लेकिन "हारिये न हिम्मत विसारिये न राम" की उक्ति को चरितार्थ करते हुए इन्होंने विद्वान् आचार्यों और गुरुजनों के सान्निध्य में रहकर गायत्री साधना एवं वेद—वेदांगों के गहन अध्ययन का सुअवसर प्राप्त किया। सन् १९५७ के नवम्बर मास में रात्रिकालीन शुभ घड़ियों में खड़े होकर निरनतर ४० दिनों तक एक माला गायत्री जाप अवाध गति से जारी रखा। इसका सुखद परिणाम यह हुआ कि गायत्री माता की इन पर कृपा हुई और लेखन के क्षेत्र में इन्हें एक अलौकिक दैविक शक्ति प्राप्त हुई। ईश्वर की इच्छा से सन् १९५८ में इनकी कठिन साधना इनके द्वारा रचित और प्रकाशित पुस्तक "इच्छानुसार सन्तान" के रूप में फलीभूत हुई।

पुस्तक प्रकाशन के साथ यद्यपि इनका मार्ग प्रशस्त हो चला था किन्तु फिर भी इनके जीवन काल में अनेकों कठिनाइयाँ और परीक्षा की घड़ियां आईं तथा इनके जीवन को उद्वेलित करने वाली अनेक घटनायें भी घटित हुईं। लेकिन "त्याज्यम् न धैर्यं विधुरे पि काले" की सूक्ति को अपने मार्ग का सम्बल बना कर यह निरन्तर दायित्वशील रहे और सच्ची लगन, अदम्य साहस, पुरुषार्थ और गायत्री साधना के अमोध प्रभाव से इनके मार्ग में पड़ने वालीं सभी बाधाओं का शनैः—शनैः निराकरण होता चला गया।

इस प्रकार गायत्री महामंत्र की सिद्धि, दैनिक पंच महायज्ञ की साधना तथा माता सरस्वती के अमोघ वरदान स्वरूप इनके लेखन कार्य का मार्ग उत्तरोत्तर विकसित होता चला गया। इसी का सुखद परिणाम यह है कि आज हम उन्हें इकतीस पुस्तकों की निर्माता के रूप में देख कर प्रफुल्लित हो रहे हैं। अपने व्यावसायिक क्षेत्र में किसी भी प्रकार की शिथिलता न दिखाते हुए निरन्तर याज्ञिक कार्यों का सम्पादन और उसी के साथ ही साथ अंनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन यह कोई सहज और सरल कार्य नहीं कहा जा सकता। इसे निश्चय ही अलौकिक दैविक शक्ति की प्राप्ति ही कहा जाना चाहिये। मैं तो इसे माता शारदे की विशेष अनुकम्पा ही मानता हूँ।

महर्षि दयानन्द जी के कर्मठ अनुयायी एवं आर्य समाजी सिद्धान्तों के परिपोषक

होने के कारण इनके साहित्य लेखन का महान उद्देश्य यद्यपि आर्य समाजी विचार धाराओं, सिद्धान्तों और नियमों का प्रचार प्रसार करना रहा है किन्तु फिर भी इनकी अनेकों पुस्तकें सभी मतावलम्बियों के लिये समान रूप से उपयोगी और सार्थक होने के कारण इनके साहित्य को निश्चित रूप से बहुमुखी और समाजोपयोगी कहा जा सकता है। गायत्री साधन, यज्ञों का महत्व, नींव के पत्थर, सीमित परिवार, पुत्र प्राप्ति का साधन, इच्छानुसार सन्तान आदि अनेक पुस्तकों की गणना इसी कोटि में की जा सकती है। इसके अतिरिक्त अभी हाल ही में मार्च १९९४ को प्रकाशित इनकी कहानियों की पुस्तक 'आनुषक्' पुरानी लीक से हटकर नई दिशा प्रदान करती है। इसमें गुम्फित २१ कहानियाँ मानव मन का सजीव चित्रांकन है। अच्छे–बुरे, छोटे–बड़े, धनी–निर्धनी सभी प्रकार के जीवन्त स्वरूप इसमें देखने को मिलते हैं।

सादा जीवन उच्च विचार के परिपोषक मुरादाबाद नगर में श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी को अधिकांश जनता भली प्रकार जानती है। उनकी सौम्यता, सादगी, मुखमण्डल–आभा, सीधी सादी भारतीय वेश भूषा से सभी प्रभावित हैं। बिना किसी भेद भाव के सभी वर्गो के साहित्यानुरागियों, विद्या व्यसनी भक्तों, आर्य समाज के अनुयायियों, दुखियों, पीड़ितों और असहायों का स्वागत करने के लिये उनका उदार हृदय सदैव तत्पर दिखाई देता है। इनकी मधुर मुस्कान एवं दोनों हाथ जोड़कर आत्मीयता पूर्वक अभिवादन की कला सभी को बरबस अपनी ओर आकर्षित कर लेती है। इनसे मिलने वालों के हृदय में एक अलौकिक आनन्द की सृष्टि होती है।

संस्कृत साहित्य में सज्जन और दुर्जन पुरूषों की आन्तरिक और बाहरी प्रकृति का वर्णन करते हुए कहा गया है कि–

नारिकेल समाकाराः द्रश्यन्ते भुवि सज्जनाः।
अत्रेबदरिकाकाराः बहिरेव मनोहराः ।।

अर्थात् इस पृथ्वी पर सज्जन पुरुष नारियल के समान ऊपरी ढंग से कठोर तथा हृदय से कोमल तथा दुष्ट प्रकृति के मनुष्य बेर के फल के समान केवल बाहरी आकृति से मनोहर तथा हृदय से कठोर प्रकृति वाले होते हैं। मेरी अपनी मान्यता है कि श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का स्वभाव निश्चित रूप से नारियल के समान ही मृदुल और कोमल वृत्ति का है। जहाँ तक मैंने सोचा और समझा है उनका हृदय दीन–दुखियों और पीड़ितों की सहायता के लिये सदैव तैयार रहता है।

अपने महान कार्य–कलापों एवं बहुमूल्य साहित्य साधना के द्वारा श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने महात्मा कबीर दास के निम्न कथन को पूर्ण रूप से व्यवहारिक रूप प्रदान करने का सराहनीय कार्य किया है।

कबीर हम पैदा हुए, जग हँसा हम रोये।
ऐसी करनी करि चलो, हम हँसे जग रोये।।

गृहस्थ आश्रम में रहते हुए भी श्री वीरेन्द्र जी को ऋषि मुनी जैसा सन्यासी जीवन बिताते देख सभी को आश्चर्य होता है। उनकी कठिन त्याग–तपस्या, अद्भुत लेखन शक्ति, आर्य समाज प्रेम, औषधि ज्ञान, समाज सेवा, वेद और दर्शन शास्त्रों के प्रति अटूट

क्रमशः पृष्ठ १०७

ज्ञान पुञ्ज गुप्तः जी



योगाचार्य राम सरन वानप्रस्थी

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी से मेरा परिचय १६८१ ई० में हुआ था और तब से अब तक बिना किसी मतभेद के घनिष्ट सम्मान युक्त सम्पर्क बना हुआ है। गुप्तः जी ने मुझे आर्य समाज के सिद्धान्तों से अवगत कराया। आपने ही मेरे मन में हिन्दी भाषा के प्रति अटूट प्रेम पैदा किया। इन्हें उच्च कोटि का वेद ज्ञान है। 'वेद दर्शन' नामक पुस्तक इन्होंने विषयवार वेद मन्त्रों को एकत्रित करके प्रस्तुत किया है जिससे विद्वानों के लिये वेद मन्त्रों का विषयवार अवलोकन सरल हो गया है। मैंने भी संस्कार कराने और योगाभ्यास आसन आदि का प्रशिक्षण उन्हीं से प्राप्त किया है। वे मेरी प्रत्येक कठिन समस्या का भी सदैव समाधान करते रहे हैं।

इनकी लेखन शक्ति भी बड़ी प्रबल है। अब तक लगभग ३५ पुस्तकों का लेखन कर चुके हैं। एक पुस्तक "इच्छानुसार सन्तान" परिवारों में बहुत पसन्द की जा रही है। मैंने इस पुस्तक को कई नव–दम्पत्ति को अध्ययन हेतु भेंट किया है। इनकी लिखी सभी पुस्तकें पढ़ने में रुचिकर तथा व्यवहार में लाभदायक प्रमाणित हुई हैं।

इन्हें आयुर्वैदिक तथा होम्योपैथिक औषधियों का भी ज्ञान है जिससे वे अनेक रोगियों को छोटी–छोटी औषधि बता कर रोग मुक्त कर देते हैं। यहाँ तक कि इनके द्वारा बनाई गई पुत्र प्राप्ति की औषधि भी बहुत सफल हुई है।

इसके अतिरिक्त मैंने व्यक्तिगत रूप से अनुभव किया है कि यह एक बहुत ईमानदार व्यक्ति हैं। आजकल व्यापार में ईमानदार होना कठिन है। परन्तु यह व्यापार में पूर्णतया ईमानदार हैं। मैंने देखा है कि इन की दुकान पर इनके व्यापार में सौदेबाजी नहीं होती है। एक निश्चित दर पर यह व्यापार करते हैं, अर्थात् यदि मूल्य में ५५–६० पैसे आये हैं, तो क्रेता उतने ही दाम देकर वस्तु उठा लेगा। इस निर्धारित मूल्य में से न क्रेता कम को कहेगा, न यह कुछ कम करेंगे। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि क्रेता को भी इन के निर्धारित मूल्य पर पूर्ण विश्वास है।

इन्हें ज्योतिष विद्या का भी ऊँचा ज्ञान है। "नव–सम्वत्" नामक एक पुस्तक लिखकर इन्होंने पंचांग बनाने वालों को चुनौती देकर अपनी गलती सही करने को कहा है, उन्होंने सृष्टि सम्वत् वेदानुकूल नहीं लिखा। इन्होंने अपनी पुस्तक में वेदानुकूल सृष्टि सम्वत् १,६७,३८,१३,०६५ लिखा है, जब कि पंचांग निर्माताओं ने १,६७,२६,४६,०६५ लिखा है। इस पर भी समस्त पंचांग निर्माता युग, मनवन्तर आदि की गणना को स्वीकार करते हुए जोड़ में भूल कर जाते हैं, वही भूल अन्तर का कारण है। तर्क संगत एक बात कहना और उसे वेद से प्रमाणित करना ऊंचे ज्ञान का द्योतक है।

आय के अधिक स्रोत न होते हुए भी यह एक अच्छे दानी हैं।

योग, आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि का भी आप अच्छा ज्ञान रखते हैं। लेखन

शक्ति के साथ वाक्शक्ति भी बहुत प्रभावशाली और तर्कसंगत है। जहाँ इतने गुणी हैं वहाँ सत्यवादिता के स्वाभिमान में मिथ्यावाद देखकर वेदना से भर कर कुछ आवेशित हो जाना इनके लिये कभी–कभी कष्टदायक रहा है, परन्तु समझाने पर शान्ति को भी ग्रहण कर लेते हैं।

इनके गुणों की जितनी चर्चा की जाय वह
सूर्य को दीपक दिखाने से अधिक कुछ नहीं है।

मेरे मन में बहुत समय से एक प्रश्न उठा हुआ था, कई विद्वानों से चर्चा की। कोई समाधान न मिला तो मैंने गुप्तः जी से भी कहा। प्रश्न था 'सत्य और ऋत' में क्या अन्तर है, आप हमारे वैदिक सत्संग में यदा–कदा आते ही रहते हैं, यह सत्संग मंगलवार के दिन सायंकाल को गांधी नगर के बाल उद्यान में लगता है। मेरे इस प्रश्न का समाधान वैदिक सत्संग में प्रवचन के बीच आपने किया। आपने कहा–'सत्य' और 'ऋत' यह दोनों एक नहीं अलग–अलग हैं इनका अन्तर इस प्रकार समझिये, यह 'सत्य' है कि मैं वैदिक सत्संग में बैठा उपदेश कर रहा हूँ, इसे एक व्यक्ति जाते हुए देख और सुन रहा था, परन्तु एक घन्टे के पश्चात् यह 'सत्य', 'असत्य' में बदल जायेगा, क्योंकि एक घन्टे के पश्चात् यह कार्यक्रम समाप्त हो जायेगा और सब चले जायेंगे। जो व्यक्ति प्रवचन सुनता और देखता हुआ चला गया था, जब वह लौटते समय देखेगा तो यहाँ पर कुछ भी न होगा। उस समय वह सत्य था अब यह सत्य होगा। यह 'सत्य' का स्वरूप है।

'सत्' कहते हैं शाश्वत को जो सदैव रहने वाला है, एक ही प्रकार से रहता है, जो कभी बदलता नहीं, जैसे ईश्वर 'सत्' है सदैव रहने वाला है, जीव भी 'सत्' है इसी प्रकार प्रकृति भी 'सत्' है। जिस प्रकार यह तीनों सदैव रहने वाले कभी नष्ट न होने वाले हैं उसी प्रकार 'सत्' सदैव रहने वाला जिसमें कोई परिवर्तन नहीं जो तीनों कालों में एक सा रहे उसे 'सत्' कहते हैं।

अब आप 'सत्य' और 'सत्' का अन्तर समझ गये होंगे। इसमें जो 'सत्' है वही 'ऋत' है जिस प्रकार 'सत्' शाश्वत है उसी प्रकार 'ऋत' भी शाश्वत है। आशा है कि आपने 'सत्य' और 'ऋत' के अन्तर को भली प्रकार समझ लिया होगा। इस प्रकार से मेरा वर्षों पुराने प्रश्न का समाधान हो गया।

संस्थापक, वैदिक सत्संग
ए–५३, गांधी नगर
मुरादाबाद

शत्–शत् प्रणाम



सन्तोष कुमार

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी से अभी कुछ ही वर्षों से मेरा परिचय हुआ। लेकिन इतने कम समय में, मैं उनसे बहुत अधिक प्रभावित हुआ हूँ।

ऋषिभक्त श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी एक सच्चे आर्य हैं। मैंने इनके जीवन को निकट से देखा है, इनकी कथनी और करनी में कोई अन्तर नहीं होता, जैसा कहते हैं वैसा ही करते भी हैं। श्री गुप्तः जी ईश्वर, वेद और ऋषि के बताये मार्ग का अनुसरण करते हैं। वह स्वयं स्वाध्याय करते हैं, और दूसरों को भी स्वाध्याय के लिये प्रेरित करते हैं। स्वाध्याय के लिये निःशुल्क पुस्तकें भी उपलब्ध कराते हैं।

किसी राष्ट्र का गौरव उस राष्ट्र की धर्मयुक्त संस्कृति पर ही निर्भर है। महापुरुष संस्कृति का सृजन करते हैं। संस्कृति देशकाल की परिधियों से परे है। महापुरुष संस्कृति संवाहक भी होते हैं और लेखक व साहित्यकार उस अति उत्तम संस्कृति को अपनी साहित्य साधना व लेखों द्वारा विश्व भर में फैलाने में सक्षम होते हैं। हमारे नगर के वरिष्ठ साहित्यकार श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का साहित्यिक उद्देश्य भी यही है।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के पदचिन्ह अनुकरणीय हैं, उन्होंने अपनी साहित्य सेवा द्वारा हमारे उन्नत जीवन के पथ का निर्देश किया है। ऐसे महान व्यक्तियों के लेखों में अनेक प्रसंग ऐसे भी प्राप्त होते हैं जो हमारे लिये प्रेरक सिद्ध होते हैं। आपकी पुस्तकों में यह प्रेरक प्रसंग एवं कथानक मात्र पठनीय ही नहीं, अनुकरणीय और जीवनोपयोगी भी हैं, आपकी पुस्तकों के अध्ययन से हमारी जीवन यात्रा बहुत कुछ सरल हो जाती है। आपका साहित्य प्रत्येक व्यक्ति के लिये उपयोगी है।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने समय–समय पर अपने वेद आचरण युक्त अनुभवों, विचारों, दृष्टान्तों व प्रेरक प्रसंगों से युक्त संकलन प्रकाशित किये हैं जो सब पठनीय एवं मननीय हैं। मेरा यह तुच्छ प्रयत्न एकदम मौलिक सूझ का प्रतिफल ही है। मैं कुछ वर्षों से आर्य समाज में वैदिक प्रवचनों व वेद कथाओं में श्रोता के रूप में भाग लेता रहा हूँ, वहाँ अक्सर श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के प्रवचन व प्रेरक प्रसंग सुनने को मिलते हैं। आपके प्रवचनों को श्रोताओं एवं विद्वानों ने सराहा है।

मनुष्य की सर्वोपरि सम्पदा उसकी चरित्रनिष्ठा एवम् नैतिकता है। व्यक्तिगत जीवन, कर्तव्य–परायणता, सत्यनिष्ठा पारिवारिक जीवन में स्नेह, सद्भाव एवम् सामाजिक जीवन में शिष्टता, शालीनता, श्रेष्ठ नागरिकता आदि आदर्शों के प्रति आप समर्पित हो।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी बड़े योग्य कर्मठ, लगनशील व्यक्ति हैं, इसके लिये आपको जितना भी धन्यवाद मेरी कलम लिखे वह कम ही है। आप अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से वैदिक विचारों को जन–जन तक पहुँचा रहे हैं, यह बड़ा सराहनीय कार्य

क्रमशः पृष्ठ १०५

महत्वपूर्ण योगदान



लक्ष्मण कुमार आर्य

मैं समझता हूँ श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का जीवन आर्य समाज के लिये पूर्ण समर्पित है। भारतीय संस्कृति के प्रचार प्रसार के लिये वे बहुत कुछ कर रहे हैं। वेद आपके जीवन का दर्शन है, समय–समय पर उन्होंने वैदिक सभ्यता को जन मानस तक पहुँचाने के लिये बहुत ही सरल भाषा में छोटी, बड़ी अनेक पुस्तकें लिखी हैं, जिसका बहुत अच्छा प्रभाव परिवारों में हुआ है। वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर ही उन्होंने सूर्यगुणी औषधि का–जिसके सेवन से कई परिवार पुत्र रत्न प्राप्त कर चुके हैं–निर्माण कर जनहित में एक महत्वपूर्ण योगदान किया है। जब भी कोई सज्जन औषधि मंगाते हैं तो आप उसे औषधि के साथ ही अपना साहित्य भी भेजते हैं। अभी कुछ समय पूर्व उन्होंने "वेद दर्शन" पुस्तक का प्रकाशन किया है जो अपने आप में एक अनूठी पुस्तक है। साहित्य के प्रचार की उनकी इस शैली से मैं बहुत प्रभावित हूँ। मैं श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के लिए मंगल कामना करता हूँ। प्रभु उन्हें दीर्घायु करें।

सम्पर्क : ए–१०८, आर्य निवास
शास्त्रीनगर, भीलवाड़ा

पृष्ठ १०४ का शेष

है। आज़ के समाज को वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था व महर्षि दयानन्द जी के बताये मार्ग पर चलने की आवश्यकता है, तभी आर्य जाति की रक्षा हो सकती है और समाज को वास्तविक सुख शान्ति मिल सकती है।

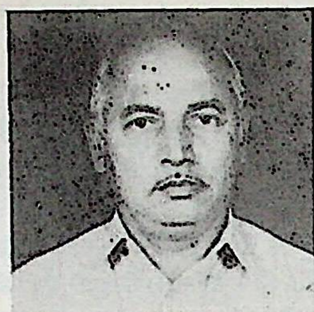
श्री गुप्तः जी सरीखे उच्च विचारकों, साहित्यकारों एवं समाज सेवियों की आज हमारे समाज को महती आवश्यकता है।

आपके विचार आपके साहित्य के माध्यम से जन मानस में गूंजे तथा आपके साहित्य की प्रगति एवं प्रचार प्रसार की मैं ईश्वर से कामना और प्रार्थना करता हूँ।

निःसन्देह मेरे पास ऐसे शब्द हैं ही नहीं जिनको मैं श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के सम्मान में लिख सकूँ। वे एक ईमानदार, चरित्रवान, अनुशासनबद्ध एवं विनम्र स्वभाव के व्यक्ति हैं, घमन्ड उन्हें है नहीं और गर्व हम करते हैं अपने नगर के वरिष्ठ साहित्यकार श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी पर। जिन्होंने अपना सारा जीवन समाज सेवा में लगा दिया। धन्य हैं वह माता–पिता जिन्होंने हमारे नगर को श्री वीरेन्द्र जी का व्यक्तित्व दिया तथा सौभाग्यशाली है हमारा नगर व समाज जिसे श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का सान्निध्य व साहित्य सेवायें मिलीं। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी को मेरा शत्–शत् प्रणाम।

सदस्य आर्य समाज, मण्डी बाँस
रेती स्ट्रीट, मुरादाबाद

चेतना का संदेश



आनन्द स्वरूप मिश्र
प्रवक्ता

जनपद मुरादाबाद में श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने स्वतन्त्र लेखक, गम्भीर विचारक, आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्ता, मौलिक औषधि परामर्श दाता के रूप में जो महत्व व स्थान अर्जित किया है, उस पर कोई अन्य व्यक्तित्व कभी आसनासीन नहीं हो सकता है। उनहोंने अपनी साहित्य सेवा को कभी धन अर्जन की दृष्टि से नहीं देखा अपितु निःस्वार्थ भाव से मौलिक अनुभूतियों को जन–जन तक पहुँचाया है।

उनकी गणना आज जनपद की सीमाओं तक ही सीमित नहीं है, अपितु ऊपर उठकर प्रदेश एवं राष्ट्र की सीमाओं को भी स्पर्श कर रही है।

आपकी रचनाओं में ज्ञान, धर्म, परम्पराओं का अनुसरण और शिक्षा होती है जिससे नई पीढ़ी का मार्ग दर्शन होता है। आपकी तीस से भी अधिक पुस्तकों के प्रकाशन में सुरभारती का जो स्वर सुन पड़ता है वह अपनी तरंगों से जन–जन में चेतना का संदेश भरता है।

श्री गुप्तः जी ने अपने अनुभव को अपनी रचनाओं में उतारा है। वे चाहते हैं कि ज्ञान की जो मशाल उन्होंने जलाई है वह आगे की पीढ़ियों में अपना प्रकाश फैलाती रहे और उन्हें मार्ग दर्शाती रहे।

आपकी रचनाओं में हितोपदेश के रचनाकार श्री विष्णु शर्मा की भाँति उद्धरण शैली देखने को मिलती है जिससे कही हुई बात भली भांति समझ में आ जाती है। 'आनुषक्' नामक कहानी संग्रह इसी प्रकार की रचनाओं का संकलन है।

'वेद दर्शन' नामक पुस्तक में आपने वैदिक ऋचाओं की जितनी सटीक, सार्थक, भाव बोधक और स्पष्ट व्याख्या की है उस पर कुछ कहना सूरज को दीपक दिखाने जैसा होगा। इस विषद् ग्रन्थ की रचना भारतीय साहित्य को अद्वितीय उपहार है। आज के युग में जब कि सब ओर धर्म दिखावा मात्र रह गया है, यह एक अनमोल कृति सिद्ध होगी।

श्री गुप्तः जी स्वयं तो आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्ता हैं ही, आपने इस जनपद में ऐसी अनेक विभूतियों को भी प्रेरणा दी है जो विभिन्न स्थानों पर अन्य ऐसी ही संस्थाओं का संचालन कर रही हैं।

आपका कार्य क्षेत्र बिहार तथा महाराष्ट्र में भी फैल चुका है। आपकी 'संस्कार' पुस्तक का रूपान्तर उड़िया भाषा में भी हो रहा है जिससे पता चलता है कि आप अन्य भाषा–भाषी भारतीयों को भी आकृष्ट करने में पूर्ण सफल रहे हैं।

व्यवसाय की दृष्टि से कागज के व्यापार से सम्बद्ध होते हुए भी आपका इतना

कार्य करना निश्चय ही सराहनीय है। आपका स्वभाव अत्यन्त सरल है। आप मृदुभाषी हैं और इन सबसे बढ़कर है आपकी कर्मठता और लगनशीलता।

श्री गुप्तः जी हर प्रकार से महान लेखक हैं। उनकी हर कृति अपने में अनोखी और उद्देश्यपूर्ण है।

सम्पर्क : नीलकंठ कालोनी,
मुरादाबाद

पृष्ठ १०१ का शेष

श्रद्धा तथा मानव मात्र के प्रति सच्ची अनुरक्ति देख सभी को मुक्त कण्ठ से उनकी सराहना करनी पड़ती है।

स्वजीविकोपार्जन और गृहस्थ आश्रम के प्रति अपने कर्तव्यों का समुचित रूप से निर्वाह करते हुए भी नित्य प्रति यज्ञ कर्मों में लीन श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी से महामानव के सम्मान में हम ऋग्वेद के शब्दों में अग्निदेव से उक्त प्रार्थना करना समीचीन समझते हैं:–

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि।
अप नः शोशुचदघम्।।

ऋग्वेद १/९/५/६

अर्थात् हे अग्ने परमात्मन्! तू ही सब जगत सब ठिकानों में व्याप्त है! अतएव आप विश्वतोमुख हो। हे सर्वतोमुख अग्नेः! आप स्वशक्ति से सब जीवों के हृदय में सत्योपदेश नित्य ही कर रहे हो, वही आपका मुख है। हे कृपालो! आपकी इच्छा से हमारा पाप सब नष्ट हो जाए, जिससे हम लोग निष्पाप होके आपकी भक्ति और आज्ञा पालन में नित्य तत्पर रहें।

समाजोपयोगी श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी जैसा महापुरुष शतायु बने यही हमारी शुभ कामना है। शुभं भूयात्

एम०ए०, साहित्य रत्न
राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त अध्यापक
२२ जन कल्याण, लाजपतनगर
मुरादाबाद

सत्यता की खोज



रामकिशोर रुस्तौगी

यदि श्री वीरेन्द्र गुप्तः की दुकान को मुनि की कुटिया कहा जाय तो कोई अतिश्योक्ति न होगी। मैं देखता रहता हूँ कि दिन में हर समय दुकान पर २, ४ व्यक्ति अपनी–अपनी शंका, समस्या, संकट आदि का समाधान करने आते ही रहते हैं, एक विशेष बात यह है कि श्री गुप्तः जी प्रत्येक का समाधान करते–करते थकते नहीं, न खिन्न होते हैं, न असंतोष उत्पन्न होता है और न ही उदासीन होते हैं, परन्तु इसके विपरीत बड़ी प्रसन्नता से आये हुए व्यक्ति को आदर के साथ बैठाकर ध्यान से उसकी बात सुनते और समुचित समाधान कर उसे पूर्ण सन्तुष्ट करके जाने देते हैं। ऐसे व्यक्ति नहीं के बराबर ही देखने में आते हैं जो अपना समय देकर दूसरों का भला करते हों। एक दिन एक महानुभाव बैठे हुए अहिल्या के शाप द्वारा पत्थर बन जाने की और श्री राम जी द्वारा उस पत्थर को पैर लगा कर उद्धार करने की चर्चा कर रहे थे। दैवयोग से मैं भी दुकान पर पहुँच गया। श्री गुप्तः जी ने इस प्रश्न का समाधान करते हुए कहा–यह बात सत्य नहीं, कोई भी व्यक्ति शाप दे दे और वह पाषाण बन जाये असम्भव, और साथ में यह भी असम्भव है कि श्री राम जी किसी पाषाण को पैर से छू दें और वह मानव बन जाये। उस व्यक्ति ने कहा–तो फिर वास्तविकता क्या है? इस पर गुप्तः जी ने समझाया और कहा–घटना घटित हुई है परन्तु इसका मन्तव्य एक दम बदल गया, यह सत्य है कि देवराज इन्द्र ने अहिल्या के सौन्दर्य पर मोहित होकर छल और मायावी रूप से अहिल्या को पतित किया, गौतम ऋषि ने अहिल्या को त्याग दिया। पति द्वारा त्यक्त कर देने के सन्ताप से अहिल्या के मन मस्तिष्क पर ऐसा कुप्रभाव पड़ा कि वह पाषाण जैसी जड़वत हो गई। सोचना, समझना, खाना–पीना, वस्त्र धारण करना आदि सब कुछ उपेक्षा और उदासीनता में बदल गया। यह अवस्था बन गई थी अहिल्या की।

विदेह जनक जी ने एक विशेष प्रकार के विराट यज्ञ का आयोजन किया, जिसमें बहुत से महात्माओं और ऋषियों के साथ ऋषि विश्वामित्र को भी आमंत्रित किया। ऋषि विश्वामित्र के आश्रम पर उस समय श्री राम और लक्ष्मण दोनों युद्ध कला और शस्त्रास्त्रों के उपयोग करने की सारी विधि को सीख रहे थे। विदेह जी का निमन्त्रण स्वीकार कर ऋषि विश्वामित्र ने श्रीराम और लक्ष्मण को कुछ दिन घर जाने की अनुमति दे दी, इस पर श्रीराम जी ने कहा–क्या गुरुदेव हम उस यज्ञ को देखने के लिये आपके साथ नहीं चल सकते? गुरुदेव ने कहा–यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो तुम भी हमारे साथ यज्ञ में चलो।

महाराजा जनक की नगरी में प्रवेश कर राजप्रसाद की ओर चले, जब जनक जी को यह संदेशा मिला कि ऋषिवर आ रहे हैं तो जनक जी उनके स्वागत के लिये

द्वार पर आये, साथ में दो कुमारों को देखकर कुछ कहना ही चाहते थे, उससे पूर्व ऋषिवर ने कहा–विदेह जी यह दोनों राजकुमार राम और लक्ष्मण अयोध्या के महाराजाधिराज दशरथ के पुत्र हैं मैं इन को आपकी बिना आज्ञा के अपने साथ ले आया हूँ, इस अवज्ञा के लिये क्षमा प्रार्थी हूँ। जनक जी ने कहा–आपने यह अति उत्तम कार्य किया जो इन राजकुमारों को साथ ले आये।

श्री राम ने सारी यज्ञस्थलि को देखा और इस विराट यज्ञ के आचार्य गौतम ऋषि के पुत्र शतानन्द जी से मिले, सोचा जिस माता के यह पुत्र हैं जो इतने विशाल यज्ञ के आचार्य हैं, महान पंडित हैं। ऐसे महान व्यक्ति को जन्म देने वाली माता के अवश्य दर्शन करने चाहिये, वे भी यज्ञ में आमन्त्रित थीं। श्री राम और लक्ष्मण दोनों माता अहिल्या के पास गये और चरण स्पर्श कर अभिवादन किया, माता अहिल्या के आर्शीवाद वचनों में कुछ कातरपन देखकर श्रीराम ने कहा–माता जी आपकी वाणी में कातरपन और मुखमण्डल पर उदासी क्यों है? इस पर माता अहिल्या ने सारी घटना बताकर कहा–मैं त्यक्त का जीवन व्यतीत कर रही हूँ। श्री राम और लक्ष्मण उसी समय गौतम ऋषि के पास गये और उन्होंने आग्रह पूर्वक गौतम ऋषि से कहा–इसमें माता का कोई दोष नहीं, इन्द्र आप ही के स्वरूप में गये थे, माता ने इन्द्र का नहीं आपका आलिंग्न किया था। माता पूर्णतया निर्दोष हैं, आप उनको स्वीकार कीजिये और मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इन्द्र के इस नीच और दुष्कर्म के कारण उसका वध करके इस पाप का अन्त करूँगा। इस पर गौतम ऋषि ने श्रीराम के समझाने परँ अहिल्या को ग्रहण कर उसको त्यक्त दोष से मुक्त किया। इस प्रकार श्री राम द्वारा अहिल्या का उद्धार हुआ था।

यज्ञ के मध्य में ही राजा जनक ने सबसे परामर्श करके सीता का स्वयंवर करने का विचार किया, इससे पहले स्वयंवर का कोई विचार नहीं था। दशरथनन्दन को देखकर विचार बनाया और यज्ञ के अन्तिम दिन सीता स्वयंवर का कार्यक्रम रखा गया।

सीता हरण के पश्चात राम रावण युद्ध छिड़ गया, श्री राम ने रावण के छोटे भाई विभीषण से सन्धि की, इस सन्धि में विभीषण नें अनुबन्ध के रूप में तीन तथ्य रखे। १. निरपराधी की हत्या न की जाय, २. लंका में लूट न हो, ३. कोई भी लंका वासी आपसे भयभीत न हो। श्री राम ने इन तीनों अनुबन्धों को स्वीकार कर सन्धि की और लंकेष कह कर विभीषण का तिलक करके राज्याभिषेक किया।

तीन दिन से देवराज इन्द्र भयंकर रूप से व्याकुल और चिन्तित हैं रात्रि को निद्रा भी साथ नहीं दे रही, एक दिन 'शचि' इन्द्राणी ने कहा–देव मैं कई दिन से देख रही हूँ कि आप बहुत ही व्याकुल हैं भोजनादि भी पूर्ण नहीं ले रहे, ऐसी कौन सी चिन्ता आपको व्याप रही है? इन्द्र ने कहा–देवी इस समय राम–रावण का भयंकर युद्ध चल रहा है, राम साधन हीन हैं उनके पास रथ भी नहीं और रावण पर सभी प्रकार के साधन उपलब्ध हैं। राम से मेरी कोई मित्रता नहीं उन्होंने तो मेरे कुकृत्य के कारण जिससे मैं भी बहुत लज्जित हूँ मेरा वध करने का संकल्प किया है, और उधर रावण से भी मेरी कोई मित्रता नहीं। परन्तु उसके पुत्र मेघनाथ ने मुझे पराजित किया था उसका भी मुझे खेद है। यदि इस युद्ध में साधनहीन होने के कारण राम हारते हैं तो संसार

में असुरों का साम्राज्य हो जायेगा। यही मेरी व्याकुलता का कारण है, आप ही मुझे कोई उचित परामर्श दो। इन्द्राणी ने कहा—इस विषय में आप माता पार्वती से परामर्श कीजिये। इस पर इन्द्र ने कहा—चलो हम दोनों ही चलते हैं। दोनों माता पार्वती के पास पहुँचे। अभिवादन किया और माता पार्वती ने आओ कायरराज कहकर स्वागत किया। पार्वती जी इन्द्र को कायरराज इस लिये कहती थीं कि वह रावण के पुत्र मेघनाथ से युद्ध में परास्त होकर आये थे, इस विजय के कारण ही मेघनाथ को इन्द्रजीत भी कहते हैं। माता पार्वती ने कहा—इस समय देव तो यहाँ नहीं हैं वे कुछ समय से अज्ञातवास में चले गये हैं। इस पर इन्द्राणी ने कहा—माता जी हम तो इस समय आपसे ही परामर्श करने आये हैं। माता ने कहा—कहिये? इन्द्र बोले इस समय राम—रावण का भयंकर युद्ध चल रहा है, रावण के पास युद्ध के सभी साधन उपलब्ध हैं परन्तु राम के पास रथ भी नहीं, वह कैसे रावण से जीत सकते हैं, मैं उनकी सहायता करना चाहता हूँ परन्तु उन्होंने मेरे एक दुष्कर्म के कारण मेरा वध करने का संकल्प किया है इस कारण मैं उनके सामने नहीं जा सकता। रावण के जीतने से सारे संसार में आसुरिक वृत्ति को प्रोत्साहन मिलेगा जिसे मैं नहीं चाहता, आपके सामने यह प्रश्न है कि मैं इसमें क्या करूँ?

माता पार्वती को रावण का एक नीचतापूर्ण व्यवहार स्मरण हो आया "रावण ने कैलाशपति शंकर जी की बहुत भक्ति पूर्ण सेवा की थी, इससे प्रसन्न होकर उन्होंने रावण से कहा—कहो रावण क्या चाहते हो? रावण—महाराज आपने जो सोने की लंका बसाई है वह मुझे दे दीजिये। शंकर जी ने तथास्तु कहकर रावण को लंका दे दी। रावण वहीं खड़ा रहा, इस पर शंकर जी ने कहा—क्यों क्या कुछ और चाहिये? रावण ने तत्काल कहा—हाँ महाराज। शंकर जी—क्या चाहिये? रावण—पार्वती। शंकर जी के कुछ कहने से पूर्व ही माता पार्वती ने कहा—रावण! तेरा इतना घोर पतन हो गया, कि तू गुरु पत्नि पर कुदृष्टि रखता है? "ऐसे पापी का विजयी होना उचित नहीं" यह विचार आते ही माता पार्वती ने कहा—इन्द्र! तुम अपना रथ राम की सहायता के लिये भेजो, और मेरे पास जो आधुनिक आयुद्ध हैं मैं उनको देती हूँ वह भी रथ में रख कर भेज देना। इन्द्र ने शंका रखी यदि इसी बीच में अज्ञातवास से कैलाशपति आ गये तो वह रावण की सहायता करने को अवश्य जायेंगे, इस पर माता ने कहा—यह कार्य मेरे ऊपर छोड़ दो मैं उन्हें समझा कर रोक लूँगी।

देवराज इन्द्र ने मातलि सारथी के हाथ रथ और अन्य ऋषि, मुनियों से प्राप्त आयुद्धों सहित श्री राम के पास भेज दिया। मातलि ने श्री राम के सामने उपस्थित होकर समस्त आयुद्धों सहित देवराज इन्द्र का रथ श्री राम को भेंट किया। श्री राम ने कहा—यह रथ तो इन्द्र का है? इन्द्र मेरा शत्रु है। इसे यहाँ क्यों लाये? मातलि—शत्रु का शत्रु मित्र होता है महाराज! यह रथ आयुद्धों सहित देवराज इन्द्र ने आपको भेंट किया है। श्री राम ने कहा हमारे पास ऐसा कोई सारथी नहीं जो इस रथ को चला सके। मातलि—यदि आपकी आज्ञा हो तो पूरे युद्ध में मैं आपके साथ रह सकता हूँ। श्री राम इस पर सहमत हो गये और मातलि ने पूरे युद्ध में सारथी बन कर भाग लिया।

क्रमशः पृष्ठ १११

गहन शोध कार्य

हरीश चन्द्र गुप्ता

मैं श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के सीधे सम्पर्क में लगभग गत् २५ वर्ष से हूँ। मुझे उनके प्रकाशन द्वारा प्रकाशित ग्रन्थों (जो मूलतः भारतीय संस्कृति, वेद एवं दुर्लभ प्राचीन ग्रन्थों के गहन शोध कार्य से सम्बन्धित हैं) को पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। देश के कोने–कोने से जो पत्र उनके पास आते हैं उनको पढ़ने का भी मुझको अवसर मिलता रहा है। उनके द्वारा निर्मित समाज सुधारक औषधि (जो मूलतः दुर्लभ ग्रंथों के शोध कार्य और गहन अध्ययन के पश्चात् निर्मित की गयी है) का लाभ दूर सुदूर तक के भारतवासी भरपूर उठाते रहे हैं।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने अपने समाज के प्रति समर्पण और भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी कटिबद्धता से उन सभी व्यक्तियों की इस धारणा (कि वह समय अभाव के कारण समाज के प्रति अपना दायित्व पूरा नहीं कर पाते हैं) को मिथ्या कर दिया है।

मेरी परमपिता परमेश्वर से यही कामना है कि श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी निरन्तर वर्षों–वर्ष अपना यह आत्म प्रेरित कार्य सुचारु रूप से चलाते रहें।

सम्पर्क : ड्रग एण्ड फारमेसिटिकल
मुरादाबाद

पृष्ठ ११० का शेष

युद्ध भयंकर चल रहा है, रावण प्रहार पर प्रहार कर रहा है, श्रीराम रक्षात्मक युद्ध कर रहे हैं। मातलि ने श्री राम से कहा–महाराज आप कई दिन से रक्षात्मक युद्ध क्यों कर रहे हैं? मेरा परामर्श यह है कि आप अब आक्रामक युद्ध कीजिये, रावण को रक्षात्मक युद्ध के लिये बाध्य करिये, इसी में आपकी विजय है। श्री राम ने मातलि के परामर्श को विचारा और आगे श्री राम ने आक्रामक युद्ध कर रावण को धराशायी कर दिया।

इससे श्री गुप्तः जी के अध्ययन की प्रामाणिकता पुष्ट होती है।

सम्पर्क : परसादी लाल रोड,
मुरादाबाद

प्रतिभा का ज्वालामुखी



सतीश चन्द्र शर्मा

क्या प्रतिभा का सम्बन्ध मनुष्य के रूप–रंग, सुन्दरता–कुरूपता, हृष्ट–पुष्ट या दुर्बलता से है? इस प्रश्न के उत्तर में अगर हम एक दृष्टि सन्त तुलसीदास, भक्त सूरदास, एलवर्ट आइन्स्टीन और बनार्ड शा पर डालें तो उत्तर स्वयं ही मन के पटल पर छप जायेगा।

क्या वही व्यक्ति प्रतिभावान हो सकते हैं जिनकी वेश–भूषा अच्छी होती है? या फिर उनके वस्त्र बहुमूल्य हों? कदापि नहीं। हमारे ऋषि मुनि तो कभी इसके समीप तक नहीं गये। नोबेल पुरस्कार विजेता गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर, महात्मा गांधी, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, स्वामी दयानन्द जी आदि के चित्रों से पता लगता है कि वे लोग अति साधारण वस्त्रों को केवल शरीर ढाँपने के लिये ही धारण करते थे, जबकि उनकी प्रतिभा का लोहा आज भी संसार मानता है और कल्पान्त तक मानता रहेगा।

क्या प्रतिभा का आधार शैक्षिक योग्यता है? यहाँ हमें फिर भक्त सूरदास, कृष्ण भक्त मीरा बाई, गुरुदेव रवीन्द्र नाथ टैगोर की ओर दृष्टिपात करना होगा। शिक्षा की कमी उनकी प्रतिभा में बाधक नहीं हुई।

इसके अतिरिक्त कितने ही विद्यार्थी गोस्वामी तुलसीदास, महात्मा गांधी, आईन्स्टीन, बर्नार्ड शा, मैडम क्यूरी के सहपाठी रहे होंगे। उन्होंने बराबर की शिक्षा पाई होगी। कितने ही विद्यार्थी पं० मोतीलाल, पं० जवाहर लाल नेहरू के साथ पढ़े होंगे, मगर उनका नाम तक कोई नहीं जानता। कितने ही डाक्टरों और वकीलों के साथ पढ़ कर प्रमाण पत्र प्राप्त करते हैं, मगर सब की प्रेक्टिस एक बराबर नहीं होती। कोई कोठियों में रहता है, कारों में घूमता है तो कोई भगवान से प्रार्थना ही करता रहता है कि आज की रोटी का जुगाड़ कर दे। अपनी–अपनी बुद्धि का प्रभाव है। सब साथ पढ़े दो विद्यार्थियों की न तो बुद्धि एक सी होती है और न ही भाग्य ही। शिक्षा तो केवल सामाजिक प्रतिष्ठा की सूचक है। मगर प्रतिभावान व्यक्ति उसका सहारा लेकर अपना मार्ग और कार्य सुगम कर लेते हैं।

क्या प्रतिभा थोपी जा सकती है? इसके लिये प्रयास तो किया जा सकता है, मगर सफलता का मुँह नहीं देखा जा सकता। अगर कोई व्यक्ति दूसरे के लिये पी०एच०डी० का पोथा लिखकर उसे डाक्टर की उपाधि दिलवा दे, तो वह उपाधि डाक्टर साहब के ड्राइंग रूम में केवल सजावट का ही काम करेगी, उनकी प्रतिभा मुखरित कदापि नहीं हो पाती।

क्या प्रतिभा किसी वर्ग विशेष अथवा व्यवसाय पर आधारित है? कभी नहीं। अगर ऐसा होता तो वाल्मीकि ऋषि न बनते और न ही गणिका और अजामिल का उद्धार होता।

उपरोक्त बातों के आधार पर मेरे जैसा तुच्छ बुद्धि वाला व्यक्ति यही समझता है कि प्रतिभावान व्यक्तियों के मस्तिष्क में परमपिता परमात्मा विलक्षण बुद्धि रूपी कस्तूरी रख देता है, जिसका स्वभाव ज्वालामुखी और यौवन के समान होता है, जिनको फटने से कोई रोक नहीं सकता और जब विलक्षण बुद्धि फट कर ऊपर आती है तो वह कोई भी क्षेत्र क्यों न हो, प्रदेश, देश या विदेश के लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करती है। क्षेत्र कौन सा होगा यह तो किसी व्यक्ति विशेष के लिये केवल भाग्य विधाता ही जानता है। मगर भू–मण्डल पर यह क्षेत्र आध्यात्मिक, धार्मिक, राजनीतिक, विज्ञान, संगीत, नाट्य, चिन्तन, साहित्यिक आदि सभी कुछ हो सकता है।

उपरोक्त तथ्यों के आधार पर कोई विलक्षण बुद्धि वाला व्यक्ति कहाँ मिलेगा और देखने में कैसा होगा, कोई नहीं बतला सकता। ऐसे ही एक व्यक्ति सौभाग्य से मुरादाबाद में पैदा हुए। मुझे गर्व है कि वह मेरे नगर के हैं। उनको मैं करीब पचास वर्षों से जानता हूँ। आयु में ६ या ७ साल बड़े होने के कारण मैं उनको अपने बड़े भाई के समान मानता हूँ। मेरे कोई बड़ा भाई नहीं है, मगर उनका वरद्हस्त मेरे ऊपर होने से मैं भी कह सकता हूँ कि मेरे भी एक बड़े भाई हैं। मध्यम काठी, गेहुंवा रंग वाले और बहुत ही साधारण वस्त्र पहनने वाले, सौम्य स्वभाव एवं मृदुभाषी हैं। उनकी सादगी और नम्रता को देख कर कोई नहीं कहेगा कि यह ३१ पुस्तकों के रचयित हैं। मगर जब कोई सुनेगा कि यह श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी हैं तो अनायास ही उसका मस्तक गुप्तः जी के समक्ष श्रद्धा के साथ अभिवादन के लिये झुक जायेगा।

गुप्तः जी का जन्म एक मध्यम वर्गीय वैश्य परिवार में हुआ। स्वर्गीय पिता जी का छोटा सा व्यवसाय था जिसको वह आज भी चला रहे हैं। जैसा कि ४०–५० साल पहले होता था, उनके पिता ने काम चलाऊ शिक्षा दिला कर व्यवसाय में लगा दिया। पहले देशी व्यापार करने वाले व्यवसायी शिक्षा को अधिक महत्व नहीं देते थे क्योंकि न तो आज जैसे तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता थी और न ही किसी व्यवसायी को अपने पुत्र को किसी कार्यालय में अधिकारी अथवा लिपिक बनाने की इच्छा होती थी। जैसा मैं ऊपर कह चुका हूँ कि विलक्षण बुद्धि प्रतिभा दिलाने के लिये ज्वालामुखी जैसा कार्य करती है, वैसा ही श्री गुप्तः जी के साथ भी हुआ। विद्यालय की शिक्षा तो समाप्त हो गई मगर व्यापार के साथ–साथ उनका अध्ययन का क्रम जारी रहा। चारों वेदों को पढ़ा, चिन्तन किया, मनन किया और अपनी बहुमूल्य पुस्तकों (विक्रय मूल्य नहीं

क्रमशः पृष्ठ ११५

मेरी दृष्टि में श्री वीरेन्द्र जी


सुधा आर्य

जीवन जीने को तो यों अनेक ज़ीते है। नाम भी कमाते हैं, पर यश व कीर्ति उनकी अमर होती है जो पिछड़ों को बढ़ाने, गिरों को उठाने, पीड़ितों का कष्ट मिटाने तथा अपनी रचनाओं द्वारा समाज को सही मार्ग दर्शाने हेतु अपना जीवन समर्पित कर देते हैं। अपने कार्यकलापों से तथा अपनी साहित्यिक रचनाओं के माध्यम से इतना कुछ कर जाते हैं, जिसे कभी भुलाया न जा सके। स्वयं को ऊंचा उठाना आत्मबल विकसित कर मुक्ति का पथ प्रशस्त करना तो सरल है पर मानव के उद्धार के लिये द्वार खोलना अत्यन्त कठिन है।

जीवन जीने वाले ये व्यक्ति दीखने में तो साधारण व्यक्तियों के रूप में ही होते हैं परन्तु उनके जीवन का हर पल मानव के उत्थान के लिये समर्पित होता है।

ऐसे ही एक व्यक्ति हैं श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी, जो एक साधारण परिवार में जन्म लेने पर भी बहुमुखी प्रतिभा के धनी हैं। उच्चस्तरीय शिक्षा न मिलने पर भी आपने अनेक रचनाएँ की हैं। आप कर्तव्य निष्ठ वैदिक धर्म पर दृढ़ता से आस्था रखते हैं। बहुत ही सीमित परिवार है आपका। अनेक वर्षों तक बड़ी निष्ठा, कर्मठता तथा लगन से आपने आर्य समाज, मण्डी बाँस का संचालन किया। कई पदों को भी सुशोभित किया है।

आपको साहित्य से अत्यधिक प्रेम है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही आर्यों में आध्यात्मिक भावना प्रबल रही है। इस कारण व्यापक वैदिक साहित्य का निर्माण हुआ है। आपकी सभी रचनाएँ आध्यात्मिकता से ओत प्रोत हैं। साहित्यकार विगत से शिक्षा लेता है वर्तमान का अवलोकन करता है तथा भविष्य के लिये निर्देश देता है। सच्चा साहित्य ही समाज को प्रेरणा, स्फूर्ति व दृढ़ता देता है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के शब्दों में साहित्य में जो शक्ति छिपी है वह तोप, तलवार और बम के गोलों में नहीं पाई जाती।

कालचक्र से अनेक रचनाऐं सृजित होती हैं जो सत्य तथा शिव से सुसंस्कृत होती हैं। सभी के कल्याण का भाव ही साहित्यकार का दायित्व है। साहित्यकार तो जन का उद्धारक होता है यथार्थ के द्वारा आदर्श, समाज के सामने प्रस्तुत करता है क्योंकि साहित्यकार सामान्य व्यक्ति से अधिक संवेदनशील तथा प्रतिभा सम्पन्न होता है।

यह सब गुण श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी में विद्यमान हैं। मैंने उनकी अनेक रचनाएँ पढ़ी हैं। गृहस्थ जीवन पर तथा सन्तानोत्पत्ति, मनुर्भव, दस नियम आदि कई रचनाएँ बड़े

ही सरल भाषा में लिखी गई हैं जिससे साधारण जनता भी पढ़कर लाभ उठा सके। अभी हाल में छपी नई पुस्तक 'आनुषक्' है जिसमें बच्चों के लिये छोटी–छोटी कहानियों को क्रमबद्ध लिखा है और जीवन की वास्तविकता को समझाया है। छोटी–छोटी पुस्तकें बड़ी ही सारगर्भित हैं।

मैं ईश्वर से कामना करती हूँ कि श्री वीरेन्द्र जी समाज को इसी प्रकार अपना साहित्य वितरण करते रहें और अपने साहित्य, रचनाओं से हमारा मार्ग प्रशस्त करते रहें। यही मेरी हार्दिक शुभकामना है।

मन्त्री
आर्य स्त्री समाज
मुरादाबाद

पृष्ठ ११३ का शेष

बल्कि उपयोगिता मूल्य) में उनका निचोड़ प्रस्तुत किया। उनकी कुछ पुस्तकें बालोपयोगी हैं तो कुछ युवाओं के लिये हैं, तो कुछ आध्यात्म की ओर ले जाने वाली।

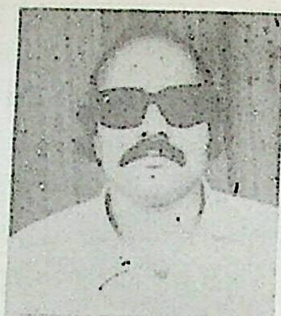
उनके असाधारण लेखन के कारण आज वह साहित्यक जगत में एक प्रमुख स्थान रखते हैं। उनकी निष्काम भावना उन्हें बरबस ही यहाँ तक ले आई। अभी भी उनका लेखन जारी है।

इसके अतिरिक्त श्री गुप्तः जी आर्य समाज से जुड़े हुये हैं और आर्य एवं अनार्यों की सेवा के लिये सदा तत्पर रहते हैं।

ईश्वर से प्रार्थना है कि उनको लम्बी आयु प्रदान करे जिससे वह अधिक से अधिक समाज और साहित्य की सेवा कर सकें और उनकी प्रतिभा में चार चाँद लग सकें।

बी०ए०, एल०एल०बी०, सी०ए०आई०आई०बी०
सेवा निवृत्त प्रबन्धक, इलाहाबाद बैंक
४६–लाजपत नगर, मुरादाबाद–२४४ ००१

निष्काम कर्म योगी



आलोक कुमार रस्तौगी

कुछ व्यक्ति जन्म से महान होते हैं, तो कुछ कर्म से महान बन जाते हैं और कुछ को प्रयत्नपूर्वक महान बना दिया जाता है। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी महान नहीं बनना चाहते, उनकी केवल एक ही आकाँक्षा है कि कुछ ऐसा निःस्वार्थ कार्य किया जाए जिससे प्राणी मात्र का हित हो। कठोर साधना में तपकर कुन्दन बने श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी उस परिवार में जन्में जिसमें उन्हें संस्कार मिले, प्रतिभा को पुष्पित पल्लवित करने के सुअवसरों के साथ-साथ समुचित मार्गदर्शन मिला।

जब कभी वीरेन्द्र जी की चर्चा चलती है तो अक्सर मित्र मण्डली में प्रश्न उठता है कि कौन से वीरेन्द्र जी? अरे वही, सद् साहित्य के लेखक, नहीं-नहीं धार्मिक और आर्य समाज के साहित्य के विक्रेता वीरेन्द्र जी। दूसरा बोल उठता है। इतने में तीसरी आवाज आती है-नहीं जी, मैं उन वीरेन्द्र जी की बात कर रहा हूँ जो पुस्तक व्यवसाय में संलग्न किन्तु तन-मन-धन से मूक रहकर लेखनी के माध्यम से समाज कल्याण की दिशा में प्रयत्लशील हैं। तभी एक अन्य मित्र कह उठते हैं कि इन सभी गुणों का जिस व्यक्ति में समावेश है वही श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ही हैं जो अलग-अलग विशेषताओं के साथ जाने जाते हैं, लेकिन इन सब में सामान्य यह है कि वीरेन्द्र जी के गुण और विशिष्टताओं से सभी समान रूप से अवगत हैं।

विशुद्ध भारतीय वस्त्रों में, तड़क-भड़क, चटक-मटक, चमक-दमक से दूर किन्तु ओजस्वी मुखमण्डल, कर्म और कर्तव्य के प्रति जागरुक, इस सरल हृदय व्यक्ति को आधुनिक भौतिकवादी एक बारगी नहीं पहचान पाता कि यह वही ओजस्वी वीरेन्द्र गुप्तः जी हैं, जो इच्छानुसार सन्तान, पुत्र प्राप्ति का साधन, से लेकर यज्ञों का महत्व, वेद दर्शन, नव सम्वत् और आनुषक् जैसीं ३१ पुस्तकों से वीणावादिनी के भण्डार में अपना महती योगदान कर चुके हैं।

मैं इनमें से 'नींव के पत्थर', 'पुत्र प्राप्ति का साधन', और 'आनुषक्' को ही पढ़ पाया।

यह कैसा विचित्र संयोग है कि मैं जब तक मुरादाबाद रहा, (मेरी शिक्षा-दीक्षा, मुरादाबाद में हुई लेखन कार्य का भी श्री गणेश मुरादाबाद से ही हुआ) ऐसे श्रेष्ठ नर-रत्न से अपरिचित ही रहा। लगभग ७-८ वर्ष पूर्व मेरे मार्गदर्शक आदरणीय भाई पुष्पेन्द्र वर्णवाल जी ने मुझे श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी से परिचित कराया, मैं उनकी विद्वत्ता और सादगी देखकर अचंभित रह गया। मुझे यह आभास हुआ कि इस वट वृक्ष की छाया में अनेक पौधे विकसित होंगे। श्री गुप्तः जी 'सादा जीवन उच्च विचार' की प्रतिमूर्ति हैं।

गृहस्थाश्रम में रहकर ऋषियों सदृश्य जीवन व्यतीत करना, प्रत्येक व्यक्ति के बस की बात नहीं है, यह कार्य तो बहुत पवित्र आत्माएँ ही विरलता से सफलता पूर्वक

पूर्ण कर पाती हैं।

श्री गुप्तः जी को देखकर कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि साधारण सा दिखाई देने वाला यह व्यक्ति ऐसा चिन्तक विद्वान् और सच्चा गृहस्थी है जो समाजहित के लिये प्राणि मात्र के कल्याण के लिये सार्थक तरीकों से, लेखनी सहित कार्यरत रहता है। अपना पेट तो सभी भर लेते हैं, अपना जीवन रो–झींक कर सभी पूर्ण कर लेते हैं, लेकिन शास्त्र–वेद सम्मत विधि से सत्य निष्ठा के साथ व्यापार व्यवसाय कर, जीवित रहने के लिये सात्विक भोजन कर चिन्तन, मनन और अध्ययन के साथ जीवन पथ पर सार्थक उद्देश्य के साथ अग्रसर, अभ्यागत का आत्मीयता के साथ स्वागत करते हुए प्रफुल्लित होने वाले श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी इन पंक्तियों का बहुत सटीक निर्वाह करते हैं।

साईं इतना दीजिये जा मैं कुटुम्ब समाय,
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय।

श्री वीरेन्द्र जी का अध्ययन और उसका निष्कर्ष उनकी विभिन्न पुस्तकों के रूप में हमारे पास उपलब्ध है। गम्भीर विषय भी आपकी लेखनी के माध्यम से सहज और सरल रूप में हमारे सामने आए। आपकी भाषा हमें माधुर्य, शैली की सहज स्वाभाविकता समाज के नियमों और सिद्धान्तों के प्रति परिपुष्टता और विश्वास जगाती है। किसी के दिल को बिना दुखाए 'खण्डन–मण्डन' के बिना अपनी बात सहजता से पाठक या श्रोता के मन में उतार देना ही लेखक की विशेषता और उपलब्धि होती है। मैंने श्री गुप्तः जी के लेखन में यही विशिष्ट सौन्दर्य अनुभव किया।

गुप्तः जी साहित्य को प्रशंसा अथवा सम्मान का साधन न मानकर, बल्कि उसे मानव जीवन उन्नत बनाने हेतु प्रेरणा स्रोत मानते हैं। सृजनकर्ता का मन–मस्तिष्क जिन विचारों से प्रभावित, अनुप्राणित होगा, उसकी लेखनी से वैसा ही साहित्य सृजित होगा, श्री वीरेन्द्र जी का जीवन, जीवन दर्शन, शैली, चिन्तन और लेखन नयी पीढ़ी और उदीयमान लेखकों के लिये एक प्रकाश स्तम्भ सदृश्य है। लेखन श्री गुप्तः जी का व्यवसाय या व्यसन नहीं बल्कि ऐसी चिन्तनपरक मनोवृत्ति है जिसमें प्राणी मात्र का कल्याण निहित है।

आज के इस आपा–धापी, स्वार्थ लोलुपता के युग में निःस्वार्थ रूप से परिवार, समाज और देश की सीमा से हटकर प्राणी मात्र के कल्याण–चिन्तन में लगे श्री गुप्तः जी को तो सिर्फ 'निष्काम कर्मयोगी' ही कहा जा सकता है।

ऐसे प्रेरणापुंज के लिये मैं यही कह सकता हूँ कि वह शतायु हों और हमें सदैव अपने चिन्तन से अनुप्राणित करते रहें।

एम०ए०, पी०एच०डी०, एल०एल०बी०
२१–विवेक नगर, राधा गंज
देवास–४५५००१

पारिवारिक साहित्य



कैलाश दत्त तिवारी
प्रधानाचार्य

यह जानकर हर्ष हुआ कि वेद संस्थान, मुरादाबाद नगर के वरिष्ठ साहित्यकार श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी पर एक स्मारक ग्रन्थ प्रकाशित कर उनका सम्मान करने जा रहा है।

प्रायः प्रतिदिन नगर के राजमार्ग पर दूर से देखते ही हाथ जोड़ कर नमस्कार करने वाले श्री वीरेन्द्र जी विनम्रता की साक्षात प्रतिमूर्ति हैं। जाड़ों में विद्यालय जाते समय एवं गर्मियों में विद्यालय से आते समय वीरेन्द्र जी से साक्षात्कार होता था। जब कभी उनकी दुकान के सामने से निकला तो उनकी नवीनतम कृति प्रसाद रूप में प्राप्त हुई। अत्यधिक विनम्रता से प्रति भेंट करते हैं। एक दिन मैंने पूछा—कि इस लेखन एवं प्रकाशन में होने वाला व्यय कैसे वहन करते हैं, तो केवल इतना ही कहा कि प्रकाशक उचित रायल्टी नहीं देते और तब उन्होंने मुझ से मेरा परिचय पूछा वह भी वहां पर उपस्थित एक सज्जन के माध्यम से। मस्तक और अधिक श्रद्धा से नत हुआ। अहम् मेरा चूर—चूर हो गया तब तक मैं इस भ्रम में था कि अपनी कृति को भेंट देने के पीछे कोई स्वार्थ होगा। लेकिन इसका प्रश्न ही क्या जब श्री गुप्तः जी को मेरे पद आदि के विषय में भी ज्ञान नहीं था।

गुप्तः जी द्वारा रचित पुस्तकें परिवार के हर सदस्य के लिये अत्यधिक उपयोगी सहज एवं सुगम्य है, प्रातः स्मरणीय श्री दयानन्द सरस्वती जी महाराज के सपनों को साकार करने का जैसे गुप्तः जी ने बीड़ा उठा लिया है आपकी लेखनी निर्बाध आर्य परिवार जन को विशेषतयः एवं मानव समाज को आलोकित करती रहे, यही परमपिता परमात्मा से प्रार्थना है।

सम्पर्क : आर०एन० इण्टर कालिज
मुरादाबाद

वैदिक–गवाक्ष


आचार्य बृहस्पति मिश्र

साहित्य ही संस्कृति को सुरक्षित रखता है और संस्कृति की सुरक्षा में ही मानव की सुरक्षा है। संस्कृति के कारण ही मानव, मानव कहलाता है, नहीं तो पशुओं और मानवों में बहुत हद तक समानता है। इस समानता एवं मानवता को वही जानते हैं जो तत्वनिष्णात होते हैं और वे भूलें नहीं करते। वे पहले भौतिक आवश्यकताओं को देखते हैं और गवाक्ष (प्रकाश द्वार) तैयार करते हैं। जैसे एक मेरे पितृतुल्य विचारक अन्वेषक हैं उन्होंने एक गवाक्ष तैयार किया है उसका नाम रखा है "वेद दर्शन"। नाम से ही उनकी सूझबूझ का परिचय मिलता है। (ऐसी एक बालोपयोगी वार्त्ताकथा रूप लघु ग्रन्थ का नाम रखा "आनुषक्" जो अप्रचलित लगता हुआ भी शीर्षक के उद्देश्य की पूर्ति करता हुआ वैदिक नाम है जो धारावाहिक अभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है अर्थात् एक दूसरे से लगा हुआ।) जब मुझे "वेद दर्शन" नामक ग्रन्थ को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो मैंने नाम के अनुरूप प्रथम द्रष्टया अपनी विचारणा बनाई "जैसे न्याय दर्शन, सांख्य दर्शन आदि हैं वैसे ही कुछ तत्वों का दार्शनिक ढंग से वेद सम्मत प्रमाणीकरण किया गया होगा।" किन्तु जब अन्दर खोलता चला गया तो बुद्धि भ्रमित होने लगी और फिर अन्दर खोलता चला गया जो अचानक अपनी प्रथम द्रष्ट्या विचारणा मिथ्या सिद्ध होने लगी। फिर अन्दर के विषय और पुस्तक शीर्षक पर संगति रूप से पुनः विचारना आरम्भ किया तो हतप्रभ रह गया, यह वेद दर्शन–वैदिक गवाक्ष अथवा वेद का प्रकाश द्वार अर्थ को घोषित करता हुआ लगा, फिर पुस्तक के शीर्षक के अर्थ के अनुरूप देखा तो विश्वास हो गया यह वैदिक गवाक्ष ही है, जिसमें जीवित मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए प्रकाशद्वार तैयार किया गया है, जिससे वह समुचित प्राणवायु और प्रकाश पा सके। वह भी मानव के मूलाधार वेद का।

मधु वाता ऋतायते – यजु०
मधुमाँ अस्तु सूर्य – यजु०

ऐसे प्रकाशद्वार से मन्द–मन्द शीतल समीर बह रहा है और नेत्रों को सुखकारी मधुर सूर्य का प्रकाश आ रहा है। ग्रन्थ लेखक (जिन्हें आचार्य कहना चाहूँगा) आचार्य का समर्पण भाव है "प्रभु जी! आपके अपार कृपा सागर की इन माणिक मुक्ता स्वरूप बूंदों ने मुझे आपके वेद ज्ञान रूपी अगाध सागर के तट के पास बैठकर कुछ माणिक मुक्ता आदि चुनने का अवसर प्रदान..............................।"

अर्थात् ~~यह~~-(गवाक्ष प्रकाशद्वार) अपार सागर तट पर माणिक मुक्ताओं से युक्त था अपनी क्षमता के अनुरूप केवल मैंने चयन किया है, वह भी जैसा का तैसा उसकी स्पष्टता के लिए आगे "उद्गार" में व्यक्त करते हैं "केवल वेद का दर्शन मात्र ही है" अर्थात् यह जैसा मैंने पाया, जैसा मैंने देखा। इसका उद्देश्य (कारण) "उद्घोष" में कहते हैं "आज

श्री वीरेन्द्र गुप्तः

का मानव अपने जीवन उपयोगी वस्तुओं के संचय करने के साधनों में अति व्यस्त है वह हर समय उसी में उलझा रहता है, उसके पास चारों वेदों के अध्ययन करने का समय ही नहीं, ऐसे मानव, जीवन भर के लिए वेद ज्ञान–ज्योति से बहुत दूर होकर अर्थ की दासता के जाल में फँसे रहते हैं।"

मानव मौलिक आवश्यकताओं के लिए जिन साधनों का प्रयोग करता है, वह प्रकाश के अभाव में रस्सी के स्थान पर साँप का उपयोग और कभी साँप से डरने के बजाय रस्सी से डरना जैसे सिद्ध हो रहा है, क्योंकि उनके पास वेद की ज्योति नहीं पहुँच पाती और वे अज्ञान अन्धकार में दिग्भ्रमित होते रहते हैं।

पुस्तक के प्रारम्भ में "अथ वेद दर्शनानुशासन्य" देखकर सहसा आचार्य पतञ्जलि की पंक्तियाँ याद आ जाती हैं–"तेश्य एव विप्रतिपन्न बुद्धिभ्येः आचार्य सुहृद् भूत्वा इदं शास्त्रं अन्वाचष्टे इमानि प्रयोजनानि इत्यध्येयं ...." (अथ प्रयोजनानि) "इस प्रकार जब आपके हृदय में वेद ज्योति किरण जगमगा उठेगी तब आपके मन में स्वयमेव उस ज्योति–पुञ्ज के पास तक पहुँचने की लालसा उत्पन्न हो जायेगी तब आप अपने जीवन में नवीन उत्साह और नई उमंग का अनुभव करेंगे और आपको आभास होगा कि यह मानवदेह हमें क्यों मिली है, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे क्या करना है, क्या नहीं करना है आदि विषयों पर एक दिशा मिलेगी।" (उद्‌गार)

ग्रन्थ के मन्थन को देखकर सहसा आकर्षण अनुभव होने लगता है, शायद आचार्य लेखक चिकित्सक भी हैं जैसे नेत्रों का चिकित्सक जब किसी के नेत्रों की शल्य चिकित्सा आदि करता है तब रोगी को मन्द प्रकाश से तीव्र प्रकाश की ओर ले जाने की सलाह देता है अथवा योग प्रशिक्षक की भाँति साधक को त्राटक की सिद्धि के लिये शीत प्रकाश से ऊष्ण प्रकाश की ओर धीरे–धीरे अभ्यास करने की सलाह देता है वैसे ही ग्रन्थ में ही पहले कर्मकाण्ड से प्रारम्भ करके शनैः–शनैः उसे चकाचौंध वाले विचार रूपी प्रकाश में प्रवेश कराता है, मनः सूक्त, और नासदीय सूक्त के माध्यम से और फिर वह थककर दिग्भ्रान्त न हो जाये उसकी मौलिक ऐषणा की समुचित पूर्त्ति के लिए दाम्पत्य सूक्त, पुत्रेष्टि सूक्त, रोग निवारक सूक्त, सरस्वती सूक्त, श्री सूक्त, वाणिज्य सूक्त, रक्षा कवच सूक्त आदि सूक्तों को ग्रन्थन किया है पश्चात् दार्शनिक प्रकाश को सहन करने की क्षमता बढ़ जाने के बाद पुरुष सूक्त, आत्म सूक्त आदि दिये हैं। इसके बाद उच्छृंखलित होने से बचाने के लिये (कहीं दार्शनिकता के प्रवाह में लैकिक व्यवहार ही न नकार दें) लौकिक चारित्रिक विचार श्रृंखला में चरित्र सूक्त, सदाचार, मानवता, ज्ञानाज्ञान, सत्यासत्य, निकृष्ट कर्म त्याज्य, मांसाहार अभक्ष्य आदि सूक्तों द्वारा बाँधा गया है। मौलिकता की ही नींव पर राष्ट्रभूमि सूक्त, वीरता सूक्त का ग्रन्थन है और अन्त में समर्पणभाव से काल सूक्त, द्यावाप्रथिवि सूक्त, शमन वन्दना आदि का निबन्धन है।

कोई भी बिना कर्म के तो रह ही नहीं सकता **न किं हि कश्चित्क्षजमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकत्** (गीता) और कर्म में अनायास अनचाहे रूप से दूसरे प्राणियों को यदि कष्ट हुआ हो तो प्रायश्चित्त स्वरूप सबसे अन्त में कर्मकाण्ड द्वारा ही समाप्ति बलिवेश्यदेव यज्ञ और ब्रह्म स्त्रोत्र से की है।

क्रमशः पृष्ठ १२३

श्री वीरेन्द्र गुप्तः

सतत कार्यरत एवं हिन्दी के उपासक श्री वीरेन्द्र गुप्तः के प्रति



ईश्वर चन्द्र गुप्तः 'ईश'

१

हे भारतमाता के सुपुत्र,
तुम आर्य–धरा के जीवन हो।
सद्–संस्कार से पोषित तुम,
सत्साहित्यिक, सँजीवन हो।।

२

वेदों की वाणी को, जन–जन,
तक पहुँचाने के व्रतधारी।
मानव को जीवन मर्म, धर्म,
समझाने के हो अधिकारी।।

३

साधना मौन, भर कर सुभाव,
मानस–मन्दिर है महक उठा।
मधु शब्द घोलकर, वाणी में,
हो ज्ञान तुम्हारा मुखर उठा।।

४

प्राचीन प्रगति के साधक तुम,
नव युग पीड़ा से परिचित हो।
प्रहरी बन मानव समाज के,
पथ दर्शक तापस दीक्षित हो।।

५

भारत के भटके समाज में,
तुम दीप–शिखा बनकर छाओ।
इस अमूल्य मानव–जीवन में,
कह 'ईश' सुधारस बरसाओ।।

सम्पर्क : ८८, फैज़ गंज
मुरादाबाद

बहुचर्चित लेखक


राम मुकुट गुप्ता

अतिप्रसन्नता का विषय है कि वेद संस्थान मण्डी चौक, मुरादाबाद द्वारा श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी पर एक स्मारक ग्रन्थ सम्मानार्थ निकाला जा रहा है। यद्यपि यह कार्य बहुत पहले हो जाना चाहिये था तथापि आपके इस निर्णय पर आप सबको बहुत–बहुत बधाई।

आर्य जगत के साहित्यिक प्रकृति के बहुचर्चित लेखक श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी किसी परिचय के मोहताज नहीं हैं। ३०–३५ वर्ष पूर्व उन्होंने बतौर उपन्यास लेखक के एक उपन्यास 'लौकिट' लिखा, जो अपने समय में बहुचर्चित उपन्यास रहा। इसके अतिरिक्त भी श्री गुप्तः जी ने अनेक पुस्तकें लिखीं जो समाज के हर वर्ग द्वारा सराही गईं। उनकी लिखित पुस्तक 'इच्छानुसार सन्तान' 'पुत्र प्राप्ति का साधन' 'नींव के पत्थर' 'वेद में क्या है' 'वेद की चार शक्तियाँ' 'विवेक कब जागता है' 'मनुर्भव' 'गायत्री साधन' आदि विशेष रुप से प्रसिद्ध रहीं। उनकी पुस्तक 'पुत्र प्राप्ति का साधन' का अंग्रेजी अनुवाद भी 'HOW TO BEGET A SON' भी विदेशी लोगों द्वारा सराहा गया।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः सीधे–सादे व्यक्ति हैं वे किसी छल–कपट, राजनीति, कूटनीती से कोसों दूर, ऊँचे चीरत्र के व्यक्ति हैं। मैं पिछले ४० वर्षों से भी अधिक से उनके कृतित्व से प्रभावित रहा हूँ। वह अपने बाल्यकाल में भी आर्य वीर दल के कर्मठ नायक रहे। उन्होंने अनेक रोमांचक कार्यों द्वारा आर्य जगत में अपना ऊँचा स्थान बनाया। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी अपने बचपन से ही गरीब और दलित वर्ग को सब तरह की सहायता करते रहे हैं। आर्य जगत को इस बात का काफी लाभ मिला।

सिद्धान्तों से हट कर आपने कभी भी समझौता नहीं किया। इस कारण कुछ व्यक्ति गुप्तः जी से यदा–कदा अप्रसन्न भी रहे। आपमें सभी गुणों की विद्यमानता को स्वीकार करते हुऐ आपको अनेक अवसरों पर सम्मानित किया गया है। जैसे साहू शिवशक्ति शरण कोठीवाल स्मारक समिति द्वारा वर्ष १६६१–६२ का साहित्य सम्मान आपको प्रदान किया गया।

आप विविधता में एकता के स्वरूप हैं, मैं इनके उज्ज्वल भविष्य और दीर्घ जीवन की ईश्वर से कामना करता हूँ।

वरिष्ठ प्रबन्धक
पंजाब नेशनल बैंक
अफ़ज़लगढ़ (बिजनौर)

आर्य विचारधारा के धनी

जयदेव शरण

अत्यन्त साधारण से दिखाई देने वाले सरल चित्त, परम धार्मिक, सत्यनिष्ठ, कर्मयोगी, श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी समाज में रहते हुए भी त्यागी, तपस्वी और निर्मोही हैं — इसमें किञ्चित मात्र भी अतिशयोक्ति नहीं, क्योंकि यह नितान्त सत्य एवं सर्वविदित है।

वैदिक सिद्धान्तों से ओत–प्रोत लगभग ३४ ग्रन्थों के प्रणेता, गम्भीर एवं चिन्तनशील, आर्य विचार धारा के धनी, मितभाषी श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी एक आदर्श आर्यवीर हैं, इसमें सन्देह नहीं। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के सम्मान में मेरी श्रद्धायुक्त शुभ कामनायें समर्पित हैं। कृपया स्वीकीरें।

सेवानिवृत राज० सेवा
सदस्य, आर्य समाज, मण्डी बाँस
लेन–१, न्यू कालोनी, लालबाग
मुरादाबाद–२७

पृष्ठ १२० का शेष

परिशिष्ट में वैदिक साहित्य का परिचय, वेद के भाष्यकार और प्रमुख सम्प्रदायों और विज्ञानों के वेद सम्बन्धी विचार उद्धृत हैं। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ में मानव जीवन में दिशा निर्देश के लिये वेद को आधार माना है किन्तु केवल आद्योपान्त पारायण से कुछ नहीं होगा यह यास्क के प्रमाण से पुष्ट करते हुए "जो वेद को पढ़कर उसके अर्थ को नहीं समझता, वह भारवाही पशु के समान है किन्तु जो वेदों के अर्थ का समझने वाला है वही समस्त सुख और कल्याण को प्राप्त करता है।" वेद के ज्ञान के लिये वेदार्थ का ज्ञान और मनन की परमावश्यकता पर महत्व दिया है इसके बिना उसकी बहुत अच्छे प्रकार से मेवा आदि से सुशोभित खीर में पड़ी हुई कड़छी के समान होगी। इसके साथ ही वेद की संख्या मन्त्र संख्या सहित और वेद की अपौरुषेयता की सिद्धि मन्त्रोच्चार की विधि, यज्ञोपयोगी सामग्री का प्रकाश आदि कर्मकाण्ड सम्बन्धी सब कुछ दिया है। जैसे प्रकाश द्वार की सुन्दरता के लिये शिल्पी बेल बूँटे आदि की खुदाई करता है कुछ–कुछ ऐसा ही इस वैदिक गवाक्ष में प्रतीत होता है इसके साथ ही गायत्री साधना, के गुम्फन के बाद तो "सत्यं शिवं सुन्दरं" की अनुभूति होती है।

यह ऋषिवर दयानन्द जी महाराज का ही अद्भुत प्रताप है कि समाज अपनी दुखती नाड़ी पर हाथ रखने वाले लेखक को चिकित्सक का सम्मान देते हुए उससे लाभ की आशा रखता है।

प्रभु से विनय है कि "वह शक्ति दे" कि हम जिससे प्रतिभावान लेखक को समाज के सम्मान का सम्मान कर अपने कर्त्तव्य को पूरा कर सकें।

अमरोहा

संकल्प से सदाचारी सन्तान



श्रीमती कृष्णा कुमारी

हमारी सभ्यता और संस्कृति में वैदिक काल की नारियों का सामाजिक स्तर उच्च कोटि का था, वे मन्त्र द्रष्टा थीं। उनकी उपस्थिति में वेद पाठ होता था। वे यज्ञोपवीत धारण करती थीं। जब भारत पर विदेशी आक्रमण होने लगे तब से भारतीय नारी की स्थिति धीरे–धीरे अपना गौरव खोती गईं। भारत में मुस्लिम शासन काल में तो भारत की नारियाँ घर से बाहर की ओर झाँक भी नहीं सकती थीं। परन्तु जब कुछ व्यापारी मस्तिष्क के विदेशी व्यक्ति भारत में आये और धीरे–धीरे ईस्ट इन्डिया कम्पनी बना कर भारत के ही स्वामी बन गये, तब उन्होंने भारत के नागरिकों को पश्चिमी प्रणाली से शिक्षा दी। यह वही समय था जब समाज में ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्य किसी भी वर्ण का व्यक्ति वेद और शास्त्र का अध्ययन नहीं कर सकता था और ब्राह्मण भी स्वयं वेद शास्त्रों का अध्ययन करने में समर्थ नहीं रह गये थे, कुछ ब्राह्मण जो विधिवत शिक्षा प्राप्त कर पाते थे या तो अपने गुरुकुल चलाया करते थे अथवा मुगलों के दरबार की शोभा बन गये थे। अंग्रेजों ने शिक्षित और विद्वान् व्यक्तियों का आदर किया। यह लगभग डेढ़–दो सौ वर्ष पुरानी घटना है। ऐसे समय में जब दिल्ली के सुलतानों और बादशाहों के हाथ से निकल कर सत्ता अंग्रेजों के हाथों में आ गई थी, तब हमारे समाज में राजा राम मोहन राय और स्वामी दयानन्द सरस्वती जैसे युग निर्माताओं ने जन्म लिया। उन्होंने अपने अध्ययन से यह निर्णय निकाला कि जब तक भारत में आर्य नारी का मनोबल ऊँचा नहीं होगा तब तक इस समाज का पतन होता रहेगा। यही कारण है कि आज भी समाज में भारत विरोधी शक्तियाँ भारतीय नारी के विकास और उत्थान पर अंकुश लगाने की कोई न कोई स्थिति पैदा करती रहती हैं।

अब हम इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश करने जा रहे हैं और विज्ञान के नाम पर हम इतने अधिक उन्नतिशील हो गये हैं कि छोटी–छोटी बातों को तो तर्क के द्वारा स्वीकार करते ही हैं, पुराने संस्कारों और परम्पराओं को भी तर्क की कसौटी पर कसने लगते हैं। दूसरी ओर हम अभी भी इतने पिछड़े हुए हैं कि हमारे समाज की मातायें मुल्लाओं व तांत्रिकों के चक्कर काटती रहती हैं अथवा दरगाहों व मजारों (समाधि स्थलों) पर मनौतियाँ मनाती रहती हैं, कि उन्हें पुत्र की प्राप्ति हो जाय। इस तरह अपने पतियों की परिश्रम की कमाई को ठगों में बाँट आती हैं। यदि किसी महिला का पुत्रवती होना किसी मुल्ला–मौलवी, तांत्रिक या स्याने के हाथ में होता तो उन तांत्रिक आदि के स्वयं के परिवार में कन्याओं का जन्म ही नहीं होता। सही बात तो यह है कि महिलाओं को पुत्रवती होने के लिये झाड़ फूँक करने वाले न तो किसी विज्ञान के ज्ञाता होते हैं, न इनके पास कोई व्यवसाय होता है। यह नारियों की मातृ भावना को छल कर नारियों को पथ भ्रष्ट करते हैं और दरगाहें तो सौ प्रतिशत निकम्मे लोगों का खाने कमाने का

एक तिलस्मी धन्धा है। महिला का पुत्रवती होना या नहीं होना कोई दैवी चमत्कार नहीं है बल्कि यह जीव विज्ञान से सम्बन्धित तथ्य है।

नारी, मानव सभ्यता और धर्म का मेरूदण्ड है। मनुष्य की सभ्यता के लम्बे इतिहास में पुरुष के सिर को ऊँचा रखने में प्राचीन काल से ही नारियों की अलौकिक क्षमता का महत्व रहा है। मानसिक पराधीनता के अन्धे कुएँ में जा डूबने वाले और आज की अंग्रेजी चकाचौंध में खोये रहने वाले लोग नारी को भले ही विलासिता की वस्तु मानते हों, एवं नारी के प्रति अवहेलना का भाव जताते हों, परन्तु इन्हें याद रखना चाहिये कि यदि हमारा भारत प्राचीन काल में गौरवशाली देश था तो नारियों की समाज में प्रतिष्ठा के कारण ही था। यदि आज भी भारत का गौरव बढ़ा है तो नारियों के योगदान से ही बढ़ा है। यदि भविष्य में हमारी सभ्यता संस्कृति बनी रहेगी तो यह नारियों की प्रतिष्ठा से ही सम्भव है।

सन्तान उत्पत्ति का विज्ञान् एक गूढ़ और शास्त्रीय विज्ञान है। सामाजिक साहित्य की दृष्टि से हिन्दी भाषा में श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने "इच्छानुसार सन्तान" शीर्षक से शास्त्रीय प्रमाण और प्रयोगों पर आधारित पुस्तक लगभग पैंतीस छत्तीस वर्ष पूर्व तैयार की थी। अब तक इसके तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। विज्ञान और भौतिकता की प्रधानता वाले जीवन में व्यस्तता को देखकर श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने अपनी पुस्तक "इच्छानुसार सन्तान" का एक छोटा संस्करण "पुत्र प्राप्ति का साधन" भी प्रकाशित किया। इस पुस्तक का अंग्रेजी अनुवाद माडर्न रिव्यू पत्रिका के सम्पादक मण्डल के भूतपूर्व सदस्य और महान साहित्यकार श्री दुर्गादत्त त्रिपाठी ने "हाउ टू बिगैट ए सन" शीर्षक से किया था जो प्रकाशित है। हिन्दी में भी इसके तीन संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं। जहाँ तक मेरा अध्ययन है यह दोनों ही पुस्तकें शास्त्र सम्मत, विज्ञान सम्मत और व्यवहारिक होने के साथ–साथ अच्छी और शिष्ट शैली में लिखी गई हैं। यदि आज भी कोई परिवार इन पुस्तकों के अनुसार आचरण करे तो उसके परिवार में भी उसकी इच्छा के अनुसार श्री राम, श्री कृष्ण, युधिष्ठर, अर्जुन, शिवाजी, राणा प्रताप, भामाशाह और पटेल जैसे पुत्र जन्म ले सकते हैं। यदि कोई चाहे तो उसके परिवार में सीता, सावित्री, उर्मिला, कौशल्या, रुक्मणी, कुन्ती, दुर्गावती, लक्ष्मी बाई जैसी कन्यायें भी जन्म ले सकती हैं। वास्तव में कन्या या पुत्र के जन्म लेने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। अन्तर पड़ता है संस्कारवान या संस्कारहीन सन्तान का जन्म होने से—श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने अपनी पुस्तकों में यही बात बताई है।

वास्तव में शास्त्रों का अनुसरण करने से हमारा मनोबल बढ़ता है, हमारा चारित्रिक पतन भी नहीं होता, हमारी सन्तान भी कुकर्मी नहीं होती।

भूतपूर्व प्रभारी,
कमला मातृ शिशु केन्द्र
मुरादाबाद

विज्ञानपरक इच्छित गुणसूत्र


अनिल कान्त बन्सल

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के कृतित्व के बारे में लिखना हर उस साहित्यानुरागी के लिये एक सुखद स्थिति का परिचायक है, जिसने उनके साहित्य का 'थोड़ा सा भी अध्ययन किया है।

मुख्यतः वीरेन्द्र जी ने वेद–विज्ञान के कुछ विषयों को अपने लेखन में लिखा है। जैविक विकास की गति के क्रम और उसके पश्चात् मानव विकास उत्पत्ति सिद्धान्त पर भी आपका लेखन प्रामाणिक, सटीक एवं तथ्यपूर्ण है। पृथ्वी की आयु और उस पर मानव की आयु के बारे में अभी वैज्ञानिक एक मत नहीं हैं, इस सम्बन्ध में नित्य नई–नई अवधारणायें आती रहती हैं। श्री वीरेन्द्र जी का लेखन इस विषय में भी स्पष्ट प्रामाणिक एवं शोध परक लेखन है। यथा एक चतुर्युगी (४३२००००) तितालिस लाख बीस हजार वर्ष की होती है। एक हजार चतुर्युगियों की एक सृष्टि होती है। तीन चतुर्युगियाँ पृथ्वी बनने से मानव सृष्टि बनने तक लगती हैं और तीन मानव सृष्टि के बिगड़ने में लगती हैं।

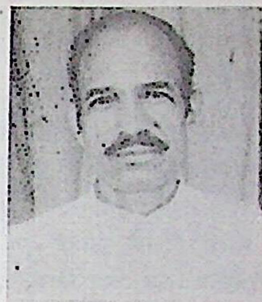
प्रजनन विज्ञान पर भी आपने मेरी जानकारी के अनुसार आधुनिक विज्ञान की अत्याधुनिक खोजों से कहीं आगे जाकर शोधात्मक लेखन किया है। यदि आपके लेखन का तथाकथित वैज्ञानिक शब्दावली में अनुवाद और विस्तार कर दिया जाये तो सम्पूर्ण लेखन वैज्ञानिक शोध–प्रबन्ध द्रष्टिगत होगा।

वैज्ञानिक जगत में मान्यता प्राप्त प्रतिष्ठित विज्ञान पत्रिका टर्निंग प्वाइन्ट के नवीनतम अंक में बताया गया है कि प्रजनन विज्ञान में नई खोजों के अनुसार वैज्ञानिक पैदा होने वाले बच्चे का डिजाइनिंग कर सकते हैं जैसे कि बच्चा कैसा होगा, कितना स्वस्थ होगा, उसकी निरोग क्षमताएँ कैसी व कितनी होंगी आदि। श्री वीरेन्द्र जी ने अपनी पुस्तक 'इच्छानुसार सन्तान' में गर्भ स्थिति के आधार पर इससे भी अधिक और विस्तृत जानकारी दी है, जैसे बालक का लिंग क्या होगा? रूप रंग कैसा होगा? उसकी शारीरिक व मानसिक क्षमताऐं क्या होंगी? रोग व निरोग क्षमताएँ क्या होंगी?

आधुनिक विज्ञान में पुरूष एवं स्त्री सन्तान के निर्धारक एक्स एवं वाई गुण सूत्रों की पहचान के बाद उन्हें जोड़ों में से अलग–अलग कर लिया गया है साथ ही ऐसी अव्यवहारिक रसायन भी तैयार कर लिया गया है जिससे एक्स या वाई में से कोई एक़ गुणसूत्र उस रसायन के प्रभाव से कमजोर या समाप्त हो जाता है। परन्तु अभी तक आधुनिक विज्ञान ऐसा कोई प्रभाव या ऐसा कोई माध्यम नहीं खोज पाया है जिसके

क्रमशः पृष्ठ १२७

औषधि का चमत्कार



रामगोपाल आर्य
पटवारी

जिला भीलवाड़ा तहसील शाहपुरा के सारे क्षेत्र में सूर्य गुणी औषधि ने जो कमाल किया है उसकी महिमा मुँह से कही नहीं जा सकती। उन लोगों के बच्चियाँ ही बच्चियाँ थी, उनको सूर्य गुणी औषधि देने से सभी के यहाँ पुत्र रत्न रूपी बच्चे के जन्म से परिवारों में वंशोच्छेदन के संकट से उबर कर सभी की मनोकामना पूर्ण हुई है।

हमारे इस क्षेत्र में 'इच्छानुसार सन्तान' नामक पुस्तक से अत्यन्त विवेक जागा और सबको इस पुस्तक के मनन से नया ज्ञान और वास्तविक जानकारी मिली जिससे अनेक व्यक्तियों को नया जीवन मिला और उन्होंने अपने जीवन को उत्तम बना कर परिवारों में सुख शान्ति का वातावरण बनाया। ७१ से ऊपर परिवारों में पुत्र उत्पन्न हुए, आपकी औषधि ने इस संसार में पुत्र प्राप्ति की मनोकामना पूर्ण की है। आप जैसे ज्ञानी, पुरुषार्थी, उत्तम गुणों वाले व्यक्तित्व को परमात्मा दीर्घायु प्रदान करें।

सम्पर्क : कनेहन कलाँ
तह० शाहपुरा, भीलवाड़ा
राजस्थान

पृष्ठ १२६ का शेष

चलते इच्छित गुण सूत्र ही संयुग्म करें। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने अपनी पुस्तक में बड़ी ही रोचक और विस्तृत व्याख्या करके इस प्रकार के माध्यम और प्रभाव का वर्णन किया है कि वह आधुनिक विज्ञान की अत्यन्त महंगी व अप्रासंगिक खोजों के लिये एक चुनौती है।

भारतीय चिन्तन पर आधारित विज्ञानपरक रचनाओं के लिये ही मुरादाबाद की संस्था साहू शिवशक्ति शरण कोठीवाल स्मारक समिति के वर्ष १६६१–६२ के साहित्य सम्मान से श्री गुप्तः जी को सम्मानित किया गया था।

सम्पर्क : बल्लम स्ट्रीट
मुरादाबाद

यथा नाम तथा गुणः


कृपा शंकर गौड़ (संजू शर्मा)

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी मुरादाबाद नगर के श्रेष्ठ रत्नों में से एक हैं। यथा नाम तथा गुण की तरह आप अपने अन्दर अनेक गुणों को छिपाये हुए हैं, लेकिन वह सभी गुण गुप्त हैं। उनसे मिलकर बातचीत करने पर भी किसी को आपके गुणों का सरलता से ज्ञान नहीं होता, जब आप किसी परिस्थिति में स्वयं को असहाय समझकर निराश होकर अपने कष्ट की चर्चा श्री गुप्तः जी के सामने करें तो श्री गुप्तः जी आपको फौरन कष्ट के निवारण का उपाय बताकर आपके कष्ट का निवारण कर देंगे। मैंने भी अपनी अनेक कठिनाइयों को आपके सहयोग से दूर करके जीवन को सुखी बनाया है। आपके संपर्क में आने पर मैंने आपके अनेक गुणों को देखकर इन गुणों को समाज के सामने इस लेख के माध्यम से रखने का प्रयास किया है, हालाँकि आपके गुणों का वर्णन करना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है और इस पर एक पुस्तक तैयार हो सकती है, लेकिन यह "अभिनन्दन ग्रन्थ" है इसमें अत्यन्त संक्षेप में आपके कुछ गुण जिनका मैंने अनुभव करके लाभ उठाया है रखता हूँ–

सफल साहित्यकार (लेखक)–आप नगर के प्रमुख लेखकों में से एक हैं, आपने समाज कल्याण की अनेक पुस्तकों को लिखकर समाज से अज्ञान के अंधकार को दूर किया है। पुस्तकें अनेक हैं लेकिन मैं केवल दो–चार पुस्तकों के नाम लिखूँगा। १.जीवन में सुख सम्पत्ति एवं आनन्द हेतु जीवन को साधना के मार्ग पर चलाने हेतु 'गायत्री साधन' एवं 'दैनिक पंच महायज्ञ' २.जीवन में सन्तान सुख प्राप्ति के लिये 'इच्छानुसार सन्तान'। ३.ज्ञान प्राप्ति एवं वेदों व अन्य धार्मिक ग्रन्थों की जानकारी हेतु 'वेद दर्शन'। ४.बच्चों को सुन्दर मार्ग दिखाने एवं सही ज्ञान हेतु 'आनुषक्'।

निःशुल्क सलाहकार–आज समाज में अज्ञानी एवं ढोंगियों की भरमार हो गई है एवं उनके बताये हुये गलत मार्ग पर चलकर जनता जहाँ अनेक प्रकार की हानि उठा रही है, वहीं आप सभी को निःशुल्क परामर्श देकर सब का हित कर रहे हैं। आपके पास कोई भी अमीर, गरीब, हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई मनचाही सलाह ले सकते हैं।

सफल चिकित्सक–आप एक सफल चिकित्सक हैं, आपको अनेक जड़ी बूटियों एवं देसी औषधियों का अपार ज्ञान है जिसके कारण अत्यन्त कम खर्च में बड़े–बड़े रोगों से आसानी से छुटकारा पाया जा सकता है। सूर्यगुणी औषधि के सेवन द्वारा पुत्र प्राप्ति सम्भव है जिसका पूरे भारत में सेवन किया जाता है।

योगाचार्य–श्री गुप्तः जी को योग का भी अति सूक्ष्म ज्ञान है जिसके कारण अनेक साधकों ने आपकी छत्रछाया में साधना करके स्वयं स्वास्थ्य लाभ पाया एवं समाज को साधना मार्ग में प्रवृत्त किया है।

क्रमशः पृष्ठ १३०

इदन्नमम


मास्टर खजान सिंह आर्य

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने छोटी–बड़ी कई दर्जन पुस्तकों की रचना की। मैंने इनकी सभी पुस्तकों का स्वाध्याय किया है। इनका साहित्य सरल, सरस तथा रोचकता से परिपूर्ण और उच्चकोटि के ज्ञान से भरा पड़ा है। एक बार मैंने आग्रह किया कि आप एक पुस्तक ज्ञान, कर्म, उपासना के विषय में लिखने की कृपा करें। आपने मेरी इस प्रार्थना को स्वीकार कर १९८७ में 'ज्ञान–कर्म–उपासना' पुस्तक तैयार कर जन–जन को अर्पित कर दी। जब मैंने उसे पढ़ा तो मैं आश्चर्य में रह गया कि उन्होंने कितनी सरलता के साथ उपमा सहित इस विषय को समझाया है। इन्होंने सागर को गागर में भर कर दिखा दिया है।

इनके 'वेद–दर्शन' ग्रन्थ में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्ति पर बल दिया गया है। जो मानव को उसके लक्ष्य प्राप्त करने में प्रेरणा देता है। इसी प्रकार इनकी 'इच्छानुसार सन्तान', 'पुत्र प्राप्ति का साधन', 'सीमित परिवार' पुस्तकें संसार में आज तक इस विषय पर लिखी गई सभी पुस्तकों में सर्वोपरि हैं। यह पुस्तकें वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं और इनमें आयुर्वेद प्रदत्त ज्ञान का भी समावेश है। आज संसार के सामने जितनी भयंकर समस्याऐं जैसे–बढ़ रही जनसंख्या, अशान्ति, भाई–भाई की कलह, मां से बेटी का विरोध, पिता से पुत्र का झगड़ा, पड़ोसी से ईर्ष्या, गरीबी, अश्लीलता, पापाचार, अनाचार, पर्यावरण, प्रदूषण, भ्रष्टाचार आदि का समाधान इन पुस्तकों में भरा पड़ा है। मैं तो यह कहता हूँ कि प्रत्येक परिवार में ये पुस्तकें होनी चाहिये। इनमें बताई गई बातों पर चलने से कलियुग को सतयुग में बदला जा सकता है। इसी प्रकार इनकी अन्य पुस्तकें भी आज के संसार को सन्मार्ग दिखाने में सक्षम हैं।

वीरेन्द्र गुप्तः जी ने वर्षों गहन स्वाध्याय के द्वारा वेद रूपी गंगा में गोता लगा कर जो सत्य ज्ञान रूपी फल प्राप्त किया है, वह उसे अपने पास न रखकर लेखनी द्वारा संसार के लाभार्थ बाँटने का कार्य कर रहे हैं।

ऋषियों के ऋण से उऋण होने के लिये इन्होंने अपनी शक्ति और समय का भरपूर उपयोग किया है। तथा 'इदन्नमम' को सार्थक करते हुए परमार्थ का उदाहरण स्थापित कर दिखाया है।

इनकी पुस्तकों का अवलोकन करने पर यह तथ्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि श्री वीरेन्द्र जी उच्चकोटि के साहित्यकार होने के साथ–साथ महान विद्वान् तथा आयुर्वेद

के कुशल ज्ञाता भी हैं।

मैं भगवान से प्रार्थना करता हूँ कि इनको स्वास्थ्य पूरित लम्बी आयु प्रदान करे और इनकी लेखनी निरन्तर संसार को सन्मार्ग पर लाने हेतु चलती रहे।

मैं इनके सम्मानार्थ स्मारक ग्रन्थ के प्रकाशन के लिये मंगल कामना भेज रहा हूँ। इस प्रकार का कृतज्ञता प्रकाशन होना ही चाहिये।

सम्पर्क : ग्राम पोस्ट–जाजनपुर
जि० कैथल (हरियाणा) १३२०२०

पृष्ठ १२८ का शेष

प्रकाण्ड पण्डित–आप जाति से वैश्य होते हुए भी पुरोहिताई का अत्यनत सूक्ष्म ज्ञान रखते हैं। बड़े–बड़े पण्डित ब्राह्मण भी आपसे संस्कार कराने हेतु सलाह लेते देखे गये हैं। हवन एवं वेद मन्त्रों के द्वारा प्रभु की स्तुति आपकी दैनिक क्रिया में सम्मिलित है।

सत्यवादी एवं निष्कपट–आपका बहीखातों का व्यापार होते हुए भी व्यापारिक वर्ग में आपकी ईमानदारी प्रसिद्ध है, आपका सभी के साथ सत्य का एवं कपट रहित अत्यन्त सरल व्यवहार है। जो भी आपसे मिल कर जब दुबारा मिलता है तब उसे ऐसा अनुभव होता है कि वह वर्षों से परिचित है।

सफल प्रतिनिध–आप आर्य समाज मण्डी बाँस मुरादाबाद के मन्त्री और प्रधानादि अनेक पदों पर बने रहे और सफलता पूर्वक समाज का संचालन करके जनता को नई दिशा दिखाई।

मैंने अत्यन्त संक्षेप में ही आपके गुणों का वर्णन किया है। मैंने भी आपकी छत्रछाया में अपने इष्ट (ब्रह्म) गायत्री अनुष्ठान उपासना की साधना करने का सही मार्ग पाया, तभी से आपको मैं गुरु मानता हूँ। बीमार होने पर या बच्चों को कष्ट होने पर आपकी सलाह से मैंने सफल उपचार स्वयं करके रोगों से छुटकारा पाया है।

जैसा नाम वैसा गुण–जैसा नाम के साथ गुप्त लिखा है वैसे ही अनेक गुण गुप्त हैं, जिनको मैं आपके पास अनेक वर्षों से आने के बाबजूद भी नहीं जान पाया। उनमें से एक गुण मुझको राम सरन जी वानप्रस्थी द्वारा ज्ञात हुआ कि आप गरीब बच्चों की शिक्षा हेतु काफी धन खर्च करते हैं, साथ में मेरे बच्चों की शिक्षा में तो आपका महत्वपूर्ण योगदान है। जैसा आपका आचरण है वही आपका उपदेश है।

सम्पर्क : डाक विभाग,
गोविन्द नगर, मुरादाबाद

सहृदय साहित्यकार



धर्मवीर सिंह यादव

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी से मेरा परिचय मेरे पिता जी स्व० मौलाना सत्यदेव जी 'आर्य मुसाफिर' शास्त्रार्थ महारथी 'शम शुल मुनाजरीन' ने अपने सन्यास आश्रम में प्रवेश करते समय–जिसके संचालक (पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार) पूज्य स्वामी समर्पणानन्द जी महाराज थे–आर्य समाज मण्डी बाँस मुरादाबाद के वार्षिकोत्सव एवं दीपावली के शुभ पर्व पर कराया था। मेरा यह दुर्भाग्य रहा कि मैं पिता जी के जीवन की खोजपूर्ण प्रकाशन सामग्री को लेखबद्ध नहीं करा सका। मैंने यह समस्या जब श्री वीरेन्द्र जी को बताई तो उन्होंने सहर्ष उक्त सामग्री को प्रकाशित करने का वचन दिया था। मैं उपलब्ध सामग्री को आज कल सूचीबद्ध करने में व्यस्त हूँ। श्री वीरेन्द्र जी ने एक विद्वान साहित्यकार के अनुरूप ही 'वेद दर्शन', 'नींव के पत्थर' आदि उच्चकोटि की ३१ मूल्यवान पुस्तकें लिखी हैं। आर्थिक समस्याओं से जूझते हुए भी उन्होंने लेखन कार्य जारी रखा है, संभवतः यह प्रेरणा श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के अमर शहीद पं० लेखराम जी आर्य मुसाफिर से ही मिली होगी। श्री पं० लेखराम जी की यह गहरी इच्छा थी कि 'आर्य समाज से तहरीर (लेखन) का कार्य बन्द न हो।' वे स्वयं भी लेखन कार्य में लगे रहते थे। अपने अन्त समय भी जब खूनी खंजर उनके पेट में लगा था तब भी वह अलमारी से पुस्तक निकाल रहे थे।

मुझे इस समय पूज्य पिता जी की एक घटना स्मरण हो आई। वे पंजाब में आर्य समाज के वार्षिकोत्सव में गये थे। सांयकाल को खेतों की ओर घूमने निकल गये, लौटते समय उन्होंने देखा, कि सुनसान जंगल में एक १३–१४ वर्ष की बालिका खड़ी–खड़ी रो रही है, वे उसके पास जाकर कहने लगे–बेटा क्या बात है? क्यों रो रही है? उस बालिका ने कहा मैं जंगल से लकड़ी बीनने गई थी, यह बोझा बहुत भारी हो गया, मुझसे जल्दी नहीं चला जा रहा, मुझे घर पहुँचने में देर हो जायेगी तो मेरी सौतेली माँ मारेगी। पिता जी ने बालिका से कहा बोझ को सहारा लगा, और मेरे सर पर रख दे, और वह उस बालिका के साथ पीछे–पीछे चले गये और घर से कुछ दूर पहले रुक कर बोझा बालिका के सर पर रख दिया और वह अपने घर पर चली गई। पिता जी की इस घटना का स्मरण आते ही वीरेन्द्र जी द्वारा भी गुप्त रूप से किये गये सेवा एवं सहायता सम्बन्धी कार्यों का भी स्मरण होने लगता है। बहुत कम लोग जानते हैं कि नगर के ही एक प्रतिष्ठित बर्तन व्यापारी महोदय के परिवार में भारी घाटा होने से आर्थिक संकट पैदा हो जाने पर विपन्नता की दशा उपस्थित हो गई थी। तब उनके प्रति श्री गुप्तः

क्रमशः पृष्ठ १३३

प्रतिष्ठित व्यक्तियों की नगरी



उमेश चन्द्र चतुर्वेदी

मुरादाबाद जनपद में समय–समय पर अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने जन्म लिया है। जिनमें पं. ज्वालादत्त शर्मा, नरोत्तम व्यास, पं० दुर्गादत्त त्रिपाठी आदि ने अपनी लेखनी से कई ग्रन्थ लिख डाले। मुझे यह कहने में हर्ष हो रहा है कि श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है जिसमें भारतीय संस्कृति और वेदादि ग्रन्थों से नैतिक मूल्य के लिये बहुत ही प्रयत्न किये हैं। यहाँ पर मैं उस व्यक्ति की बात करना चाहता हूँ जिनके ग्रन्थ को पढ़ कर श्री गुप्तः जी ने आर्य समाज की अटूट सेवा की है। मेरा परिचय आपसे उस दिन हुआ जब स्वामी दयानन्द सरस्वती के विषय में वार्ता हुई। स्वामी जी द्वारा रचित ग्रन्थ मेरे बड़े भाई स्वर्गीय श्री कुंवर जगदीश प्रसाद के सुपुत्र श्री यतीश प्रसाद जी के पास स्वामी जी का हस्तलिखित ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश सुरक्षित रखा है।

श्री गुप्तः जी का स्वभाव शान्त, नम्र तो है ही यदि उन्हें आज के युग में मानवता तथा नैतिकता का प्रतीक कह दिया जाये तो यह अतिशयोक्ति नहीं होगी।

गुप्तः जी से मेरा अनुरोध है कि वह किसी न किसी प्रयत्न द्वारा हमारे छोटे बालक बालिकाओं, युवा युवतियों में वैदिक संस्कृति के संस्कार डालने के लिये ऐसा कोई संगठन करा सकें जिसमें प्रत्येक हिन्दू को गायत्री मन्त्र और अन्य मन्त्रों को अर्थ सहित कंठस्थ हो जायें। रात्रि में टी०वी० पर जो चित्र बच्चे देखते हैं उससे हमारी भारतीय संस्कृति बच्चों के मन मस्तिष्क से मीलों दूर भाग रही है। इन सबको रोकने के लिये एक जन–जागरण की आवश्यकता है जिसमें श्री गुप्तः जी के साथ हम सब को कार्य करना चाहिये। गुप्तः जी पथ प्रदर्शक हों और हम सब उनके अनुयायी।

श्री गुप्तः जी के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हुए चिरायु हों।

सेवानिवृत शिक्षक
राजकीय इन्टर कालेज
दीवान बाजार, मुरादाबाद

व्यापारी एवं लेखक


जगदीश सरन

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी से मेरा परिचय बहुत समय से रहा है क्योंकि हम दोनों के व्यापारिक संस्थान बराबर बराबर ही हैं। मेरे पिता जी स्व० श्री राम स्वरूप तथा इनके पिता जी स्व० श्री भूकन सरन जी का भी घनिष्ट सम्बन्ध रहा था। व्यापार तथा व्यवहार की स्थिति मेरे सामने रही है जिसके अवलोकन से जीवन की व्यावहारिक मधुरता की स्थिति स्पष्ट है। श्री वीरेन्द्र जी को लेखन कार्य में अत्यधिक रुचि है। आपने बहुत अच्छी ज्ञानवर्धक पुस्तकें लिखी हैं। मैंने स्वयं भी इनकी प्रकाशित पुस्तकों में से अनेक पुस्तकें पढ़ी हैं। मैं इनके लेखन कार्य का बहुत प्रशंसक हूँ। इनकी साहित्यिक सेवा को देखते हुये नगरवासियों ने इनको जो सम्मान प्रदर्शित करने हेतु निश्चय किया है वह अति आवश्यक एवं प्रशंसनीय है।

मैं स्वयं भी इस अवसर पर अपनी शुभकामनाएं देता हूँ।

अभिषेक ट्रेडिंग कारपोरेशन
मुरादाबाद

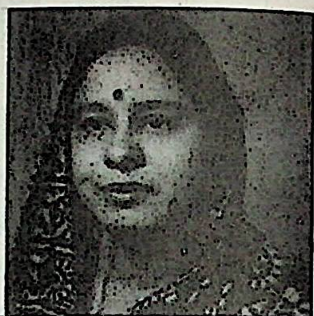
पृष्ठ १३१ का शेष

जी ने संकोच सहित एवं उनका पूरा सम्मान बनाए रखते हुए उनकी आर्थिक रूप से सहायता की थी।

वीरेन्द्र जी लेखक हैं, साथ ही सहृदय मानव भी हैं। ईश्वर से मैं प्रार्थना करता हूँ कि वह दीर्घायु हों और समाज एवं आर्य समाज की सतत् सेवा करते रहें।

जे०सी०ओ० द्वितीय महायुद्ध
ग्राम रफातपुरा, मुरादाबाद

वेदवाणी चिन्तक



श्रीमती निर्मला आर्या

इस कर्म भूमि रूपी मनुष्य जीवन में समय–समय पर साधकों, विचारकों, तपस्वियों तथा लेखकों ने अपने जीवन की साधना की बत्ती बनाकर तिल–तिल जलाकर जो कार्य क्षेत्र में चहुँ ओर प्रकाश फैलाया है आने वाला समय इस प्रकाश से प्रकाशित होकर अपना मार्ग/प्रशस्त कर आगे बढ़ेगा।

समय आयेगा और चला जायेगा, किन्तु समय की छाती को चीर कर जो कदम आगे बढ़े हैं उन्हें कौन रोक सकता है? मुरादाबाद नगर को जानकर, श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के नाम से कौन अनभिज्ञ रह सकता है। आने वाले समय की धड़कने इनकी सेवा में गीत गायेंगी और श्रद्धा से नतमस्तक होंगी।

हमारे नगर मुरादाबाद के प्रबुद्ध चिन्तक श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी वेद ज्ञान से प्रकाशित होकर अपनी प्रबुद्ध लेखनी के द्वारा ईश्वर की वाणी वेद का चिन्तन, मनन कर उसके अंश अपनी पुस्तकों में समेट कर व्यक्ति–व्यक्ति तक पहुँचाने में प्रयत्नशील हैं। सामयिक यज्ञ अनुष्ठान के मन्त्रों को, आपने वेदों में से चुनकर क्रमबद्ध कर पुस्तक का रूप देकर यज्ञ कर्त्ता के लिये सुगमता प्रदान की है। इतना ही नहीं छोटी–छोटी कहानियों के माध्यम से गूढ़ प्रश्नों का समाधान करके आपने परिवार में बच्चों तथा बुजुर्गों के लिये सरल समाधान का मार्ग दिखाया है।

अपने व्यापार कार्य में रत होने पर भी आप आर्य समाज के कर्मठ कार्यकर्ता तथा ऋषि दयानन्द सरस्वती के दीवाने के रूप में जाने जाते हैं। 'जहाँ–जहाँ आप हैं, वहाँ–वहाँ आर्य समाज दीखता है' की कहावत आप पर चरितार्थ होती है क्योंकि काम करते–करते ग्राहकों से, विचारकों से, स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों की चर्चा, वेद वेदांगों, उपनिषदों की चर्चा, वैदिक सिद्धान्त की चर्चा, करते ही आप दिखाई देते हैं।

ईश्वर! तेरी इस पवित्र सृष्टि में हम इस कर्मनिष्ठ, तपोनिष्ठ साधना में रत मानवता के पुजारी श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के शतायु, स्वस्थ, विवेकी, गतिशील जीवन की कामना करते हैं।

हमारा शरीर और भोजन

भोजन को शक्ति का स्त्रोत मानना, रोग का प्रधान कारण है। मनुष्य का शरीर परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इसी को ही आठ चक्र नौ द्वारों वाली सुन्दर अयोध्या नगरी के नाम से भी पुकारा गया है। इस सुन्दर मानव शरीर का निर्माण पाँच तत्व–आकाश, अग्नि, वायु, जल, पृथ्वी से हुआ है।

दिृति जल पावक गगन समीरा।
पंच तत्व से बना शरीरा ।।

अन्न में पृथ्वी तत्व, सब्जियों में जल तत्व, फलों में अग्नि तत्व (सूर्य की धूप में पकने के कारण) और पत्तियों में वायु तत्व की प्रधानता होती है। उपवास में हम आकाश तत्व का प्रयोग करते हैं। जो चीज जिससे बनती है उसी से उसकी मरम्मत होती है, लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि वह उससे चले भी। बिजली और वाष्प से चलने वाले इंजन लोहे से बनते हैं और उसी से उसकी मरम्मत भी होती है, लेकिन वह लोहे से चल नहीं सकते हैं। चलते हैं वाष्प या बिजली से। अतः यह मानना कि पंच तत्वों से बने शरीर को चलने के लिये इन्हीं पंच तत्वों की आवश्यकता है, उचित नहीं भोजन शरीर निर्माण का तत्व है शक्ति दाता नहीं।

दैनिक कार्यों के उपरान्त हमारे शरीर में दो चीजों की कमी आती है। १—शरीर के कोष्ठों में टूट—फूट हो जाती है। २—शक्ति घटती है अर्थात् थकावट आती है। आइये विचारें क्या इन दोनों की पूर्ति भोजन से हो सकती है? नहीं। उत्तर है कि शक्ति का संचार गहरी निद्रा से होता है और थकावट का अन्त आराम करने से होता है। केवल शरीर के चलने से हुई कोष्ठों की टूट—फूट की पूर्ति भोजन से होती है।

मनुष्य और पशुओं में मुख्य अन्तर विवेक का है। शरीर में भोजन की उपयोगिता जाने बिना खाते रहना एक पशुवत क्रिया है। अतः विचार पूर्वक यह अवश्य जानना चाहिये कि भोजन क्यों खाना चाहिये तथा वह हमारे लिये क्या कार्य करता है? यह ठीक है कि भोजन जीवन के लिये अनिवार्य है अतः भोजन के सही प्रयोग और महत्व को जानना आवश्यक है। भोजन को शरीर में शक्तिदाता मानकर खाना गलत है। उदाहरण के लिये कोई भी पहलवान कुश्ती लड़ता है तो भोजन नहीं करता है। विचारिये वह किसकी ताकत पर लड़ता है? लड़ने के उपरान्त टूट—फूट के अनुपात में ही भोजन करता है और गहरी निद्रा में शक्ति प्राप्त करता है। थकान के समय गहरी निद्रा ही हमें शक्ति देती है। थोड़ी देर के लिये यह मान लें कि भोजन से शक्ति आती है तो क्या यह ताकत भोजन करते ही आ जाती है या उसके पचने के बाद में, जबकि पचने में कुछ घण्टों का समय लगता है। अगर भोजन पेट में पहुँचते ही ताकत दे दे तो भोजन करने के तीन—चार घण्टे बाद शरीर क्यों शिथिल पड़ जाता है और भोजन की पुनः आवश्यकता क्यों महसूस होने लगती है।

विश्लेषण के आधार पर स्वतः पता लग जायेगा कि भोजन के बाद मल का उभार (उखाड़) रुक जाने से हमें शक्ति की प्रतीती भ्रान्तिवश होती है। भोजन के अभाव में जिस कमजोरी की प्रतीति होती है वह शरीर में रुके मल का उखाड़ है 'मलं शरीरस्य बलं'।

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार 'आहारं पचति शिखि दोषान् आहार वर्जितः।' अर्थात् जठराग्नि आहार को पचाती है। आहार के अभाव में शारीरिक व्याप्त दोष नष्ट होते हैं, और प्राकृतिक रूप से भोजन को पचाने में प्राथमिकता मिलती है। भोजन के शरीर में जाते ही शारीरिक मल दोषों के निकलने की प्रक्रिया रुक जाती है, रक्त में प्रवाहित दूषित कण पुनः कोष्ठों में चले जाते हैं और हमें शक्ति प्रतीत होने लगती है। मल के ही दवाब का रूप आगे चलकर रोगों का रूप धारण करता जाता है। जब तक शरीर

की प्रकृति को सफाई का पूरा समय नहीं देंगे, हमारा शरीर पौष्टिक भोजन के बाद भी रोगी बना रहेगा।

बहुधा मनुष्यों का कहना होता है कि हम तो भूँख लगने पर खाते हैं। याद रखें भूँख हमें या तो आदत वश लगती है या अम्ल के खरोचन से। व्यक्ति अच्छे से अच्छा पौष्टिक भोजन करके रात–दिन कार्य करता रहे, यह सम्भव नहीं है। जीवनी शक्ति ही शरीर में भोजन पचाती और उसे शक्ति देती है। विचारें जब मनुष्य थकान अनुभव करता है तो पुनः यह शक्ति उसे कैसे प्राप्त होती है? विचारें! मनुष्य जब गहन निद्रा में होता है तब वह अपने को भूल जाता है उस समय उसका आन्तरिक सम्बन्ध परमात्मा की सत्ता से होता है। कार्य करते समय जो शरीर के सैल टूट–फूट जाते हैं वह निद्रा विश्राम की स्थिति में जुड़ते हैं और शरीर पुनः शक्ति का अनुभव करता है। दूसरे शंब्दों में शरीर की बैटरी चार्ज हो जाती है।

भोजन का प्रत्येक ग्रास जीवनी शक्ति पर भार है। इसी कारण भोजन करने के उपरान्त सुस्ती आने लगती है। अनुभव करें! उपवास (निराहार) काल में शरीर का भार भले ही घटता है किन्तु शक्ति का शरीर में तेजी से संचार होने लगता है। उपवास से तात्पर्य यह है कि शरीर को अन्न से दूर, केवल जल और वायु पर रखा जाता है। जितनी साधना हमारी गहन होती है हम देखते हैं कि शरीर के अन्दर छिपे नाना प्रकार के रोग उखड़ कर सामने आते हैं, यहाँ तक कि छोटी आँत–बड़ी आँत के अन्दर पड़ा सड़ रहा मल भी स्वतः बाहर आने लगता है, कीट, क्रमी भी मल के साथ शरीर को छोड़ने लगते हैं। शरीर रोग रहित होने लगता है। कमजोरी का कारण गैस, तेजाब तथा मल का शरीर में उभार होता है, यह वाह्य कमजोरी एनीमा लगाने तथा स्नान करने से दूर होती जाती है। पाचन संस्थान शक्ति संपन्न होते ही हमारा शरीर स्वस्थ और शक्तियुक्त होने लगता है।

इसके विपरीत जो व्यक्ति भोजन को ही शक्ति का स्रोत समझता है वह बिजली पानी के इंजन की तरह श्रम से पहले और आवश्यकता से अधिक भोजन करता है, परिणाम स्वरूप पाचन तन्त्र पर आवश्यकता से अधिक बोझ पड़ जाता है, भोजन ठीक से न पचने के कारण शरीर रोगी होने लगता है। वास्तविक बात तो यही है कि आवश्यकता, आयु, श्रम और अपने पाचन तन्त्र की क्षमता को देखते हुए जो व्यक्ति सीमित पोषक तत्व युक्त भोजन करता है वह व्यक्ति स्वस्थ रह सकता है। 'भोजन जीवन के लिये है, न कि जीवन भोजन के लिये।' इस उक्ति को सदैव सामने रखना चाहिये।

२५ वर्ष की आयु तक शरीर के प्रत्येक अंक प्रत्यंग को पुष्ट बनाना होता है, उस अवस्था में दोनों समय अन्न, दूध, मेवे, फल, घी, मिष्ठान आदि पुष्टिकारक पदार्थों की शरीर के लिये आवश्यकता होती है। इस पुष्टता को सदैव बनाये रखने के लिये यह आवश्यक है कि हमारा भोजन सदैव १–हितभुख, २–मितभुख, ३–ऋतुभुख होना चाहिये।

क्या खायें?–ईश्वर की सृष्टि में समय–समय पर प्रकृति मनुष्यों के लिये सुन्दर, स्वादु, रुचिकर खाद्य पदार्थों की रचना करती रहती है। जो वस्तु जिस रूप में उत्पन्न

होती है, उसमें निहित प्राकृतिक तत्वों को बनाये रखना ही उत्तम आहार होता है। जितना हम अन्न, फल, सब्जी, दूध आदि को अग्नि के सम्पर्क में लाते हैं उतना ही उसके पोषक तत्व क्षीण होते जाते हैं, और वह वस्तु पोषक तत्वों से हीन होकर सार रहित हो जाती है, ऐसी वस्तुओं के सेवन से रस कम और मल अधिक बनता है। जैसे–जैसे मनुष्य ने अग्नि पर पके भोजन, तथा घी, तेल से बनी मिठाइयाँ और मिर्च मसाले का मन चाहा प्रयोग प्रारम्भ किया तो शरीर रोगग्रस्त होने लगा और आयु भी सीमित हो गई। आज भी हम देखते हैं, पक्षी प्रकृति की निर्मित रसोई से कच्चे पदार्थ खाकर प्रसन्न और आरोग्य दीखते हैं। अग्नि सम्पर्क से रहित भोजन करने से और प्रकृति से अधिक से अधिक सम्पर्क से, स्वच्छ वायु और जल का प्रयोग करने से, प्रातः साँय भ्रमण तथा एनिमा, उपवास पद्यति को अपनाकर कैंसर, तपेदिक, पोलियो, पक्षाघात जैसे रोगों से भी मुक्ति पा ली गई है।

कैसे खायें?—प्रातः उठकर जलपान (ऊषापान) शौच, भ्रमण, व्यायाम करें। दोपहर १२ बजे तक मात्र ताजा जल, जल में नीबू, शहद भी मिला कर सेवन करें। इस समय शरीर के आन्तरिक यन्त्र स्वस्थ तथा पुष्ट हो रहे होते हैं, इन पर अतिरिक्त भार न डालें। मध्यान्ह १२ से २ बजे के अन्तराल में ऋतु अनुसार फल, सलाद, कच्ची या कम उबली सब्जी आवश्यकतानुसार ग्रहण करें। संध्योपरान्त एक समय भोजन करें। स्मरण रहे इसमें अधिक मिर्च मसालेदार और तले पदार्थ कम से कम प्रयोग करें। साथ में सलाद, चोकर युक्त आटे का प्रयोग हरी सब्जी, अंकुरित अन्न का प्रयोग हितकर रहेगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी शारीरिक क्षमता अनुसार ही भोजन करना चाहिये। मानसिक कार्य करने वाले व्यक्ति को दूध तथा फलों का प्रयोग आवश्यकतानुसार करना चाहिये। शारीरिक श्रमी को घी, दूध, मेवे का प्रयोग सामर्थ्यानुसार करना चाहिये।

दोपहर के भोजनोपरान्त विश्राम और रात्रि का भोजन करके भ्रमण अवश्य करें। भोजन निद्रा काल से ३ घन्टे पूर्व कर लेना चाहिये।

शरीर में रोग लक्षण दिखाई देने पर चिन्तित न हों। धैर्य और साहस से कार्य लें। ईश्वर को धन्यवाद दें, जिसने हमें अन्दर के विकारों को दिखाकर सचेत किया। तत्काल एक योग्य शिल्पी की भांति इस विकार (विजातीय द्रव्य) को शरीर से बाहर फेंकना प्रारम्भ करें।

क्या करें?—१—प्रातः जल धोती, वमन की क्रिया करें, इसे कुंजर और गजकरणी भी कहते हैं। इस प्रकार आँख, नाक, कान की नस नड़ियों में पड़ा विजातीय द्रव्य बाहर आ जायेगा। वमन क्रिया गुनगुने जल से करें, पचे हुए जल से आमाशय साफ होने लगेगा। व्यायाम प्राणायाम के द्वारा शरीर में निष्क्रिय पड़ी नस नाड़ियों को गति प्रदान करें। ताजे जल का पान करें। हरे वृक्षें के बीच भ्रमण कर स्वच्छ वायु का सेवन करें।

२—मिट्टी—पट्टी तथा एनिमा का विधिवत प्रयोग करें।

३—दिन में २—३ बार पर्याप्त जल पीकर वमन करें।

४—शरीर को धूप की गर्मी दें। विशाक्त पसीना निकालें। ५ या ७ दिन रोग के अनुसार उपवास करें। इस प्रकार क्रिया करने से शरीर के विजातीय द्रव्य निकल जायेंगे।

क्रमशः पृष्ठ १४०

शंका का समाधान


शिवशंकर लाल आर्य

मुरादाबाद नगर वास्तव में ही देव भूमि है। इस नगर को इतिहासकारों द्वारा भले ही महत्व न दिया गया हो परन्तु इस नगर ने हमेशा भारतीय समाज को अपने रत्नों द्वारा उपकृत किया है। वर्तमान समय को साहित्याकाश में यहाँ के मूर्धन्य विद्वान् श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी द्वारा मुरादाबाद नगर को ध्रुव तारे के समान प्रतिष्ठित किया है।

मेरा कार्यवश मुरादाबाद जाना आना होता रहता है। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी हमारे मौसेरे भाई हैं। इस बार उनकी दुकान पर एक विद्वान वयोवृद्ध महापुरुष बैठे थे, उनसे भाई साहब का वार्तालाप हो रहा था। भाईसाहब ने मेरा परिचय दिया कि यह हमारे मौसेरे भाई कायमगंज से आये हैं इस पर विराजमान बन्धु जी ने कहा कि कायमगंज से एक आर्य पुरुष आर्य समाज के उत्सवों में मिला करते थे, उनका नाम था श्री लक्ष्मीनारायण जी। इस पर भाई साहब ने कहा वे ही हमारे मौसा थे और यह उनके सुपुत्र शिवशंकर जी हैं और उनका परिचय देते हुए कहा कि आप बदायूँ निवासी श्री राजाराम जी जिज्ञासु हैं।

उस समय चर्चा चल रही थी सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास के इस पहरे पर जिसका मूल पाठ इस प्रकार है :–

"प्रश्न–जातिभेद ईश्वर कृत है व मनुष्यकृत?

उत्तर–ईश्वरकृत और मनुष्यकृत भी जातिभेद है।

प्रश्न–कौन से ईश्वरकृत और कौन से मनुष्यकृत?

उत्तर–मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, जलजन्तु, आदि जातियाँ परमेश्वर कृत हैं। जैसे पशुओं में गौ, अश्व, हस्ति आदि जातियाँ। वृक्षों में पीपल, वट, आम आदि। पक्षियों में हंस, काक, वकादि। जलजन्तुओं में मत्स्य, मकरादि जाति भेद हैं वैसे मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज जातिभेद हैं, ईश्वरकृत हैं। परन्तु मनुष्यों में ब्राह्मणादि को सामान्य जाति में नहीं किन्तु सामान्य विशेषात्मक जाति में गिनते हैं। जैसे पूर्व वर्णाश्रम व्यवस्था में लिख आये वैसे ही गुण, कर्म, स्वभाव से वर्णव्यवस्था माननी अवश्यक है। इसमें मनुष्यकृत उनके गुण, कर्म, स्वभाव से पूर्वोक्तानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्रादि वर्णों की परीक्षा पूर्वक व्यवस्था करनी राजा और विद्वानों का काम है।"

इसमें जिज्ञासु जी की शंका थी कि इस पाठ में कहीं कोई बात रह गई है या आगे पीछे हो गयी है। उन्होंने कहा मैंने इस प्रश्न को कई विद्वानों के सामने रखा परन्तु कोई उचित समाधान न मिल सका। इस पर भाईसाहब ने कहा कि आपको विचार कर उत्तर लिखूँगा। इस प्रश्न पर मेरी भी जिज्ञासा बनी रही। मैंने कुछ समय के पश्चात भाई साहब से उसी प्रश्न समझाने के लिये कहा–तो उन्होंने जो पत्र श्री राजाराम जी जिज्ञासु को बदायूँ लिख कर भेजा था वह मुझे दिखाया और मैंने समझा कि इस विषय

में इससे स्पष्ट और कोई समाधान नहीं हो सकता। इससे भाई श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के स्वाध्याय और योग्यता का पूर्ण परिचय मिलता है। मैं आपके सामने इस पत्र को अवलोकनार्थ प्रस्तुत करता हूँ।

श्री रामाराम जी जिज्ञासु को शिष्टाचारादि के पश्चात लिखा—आपने चर्चा के बीच बताया कि सत्यार्थप्रकाश के ११ वें समुल्लास में लिखा है कि "मनुष्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज जातिभेद हैं, ईश्वरकृत हैं।" इस प्रकार जातिभेद कर्म से नहीं जन्म से सिद्ध होता है। उसी पहरे में आगे लिखा है 'जैसे पूर्व वर्णाश्रम व्यवस्था में लिख आये वैसे ही गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण व्यवस्था माननी अवश्यक है।" इन दोनों बातों में मतभेद स्पष्ट दीखता है। मैंने इस पर विचार किया, इस विषय में प्रायः तीन वाक्य प्रयुक्त होते है।, १—ईश्वर कृत, २—ईश्वर प्रदत्त, ३—ईश्वर प्रणीत। मेरी समझ से इन तीनों में भेद है जो इस प्रकार से है। १—ईश्वरकृत का अर्थ है ईश्वर का कार्य, जैसा जाति भेद ऊपर लिखा है। २—ईश्वर प्रदत्त का अर्थ है ईश्वर के द्वारा दिया गया, जैसे वेद का ज्ञान, ३—ईश्वर प्रणीत का अर्थ है ईश्वर ने जो ज्ञान दिया है उसके अनुसार प्रमाणित होना, जैसे स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश २—में लिखा है "परतः प्रमाण अर्थात् वेदों के अनुकूल होने से प्रमाण और जो इनमें वेद विरुद्ध वचन हैं उनका अप्रमाण करता हूं।" इसके पश्चात् मेरा ध्यान ऋग्वेद के इस मन्त्र पर गया—

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवे मिरुत मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्मणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।

ऋग्वेद १०/१२५/५

"अर्थ— मैं परमेश्वर यह स्वयं उपदेश करता हूँ जिसका विद्वान और मंननशील जन प्रेम पूर्वक श्रवण एवं मनन करते हैं। मैं जिस—जिस को चाहता हूँ उस—उस को बलवान (क्षत्रिय) करता हूँ और जिसको चाहता हूँ उसको ब्रह्मा चतुर्वेदवित (ब्राह्मण) बनाता हूँ और जिसको चाहता हूँ उसको ऋषि और जिसको चाहता हूँ उसको उत्तम बुद्धि से युक्त करता हूँ।"

इस मन्त्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि ईश्वर कर्मानुसार न्याय व्यवस्था के साथ सारी व्यवस्था को स्वयं ही चलाता है। यह उसका 'कृत' है, कार्य है। इस प्रकार ऋषिवर ने जो सत्यार्थप्रकाश में लिखा है वह 'ईश्वरकृत' ईश्वर कार्य है उसी के अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, अन्त्यज सब आ जाते हैं।

जिस प्रकार 'इतरा' तिक्त, पतित स्त्री का पुत्र एतरीय ब्राह्मण ऋषि बना, सत्यकाम, माता ज्वाला के पतित कर्म का फल पुत्र 'सत्यकाम ज्वाला' ऋषि बना, पण्डित रामचन्द्र देहलवी 'महर' होकर भी पण्डित बने, इत्यादि घटनाओं से सिद्ध है कि कर्मानुसार जिस परिवार में उसे भेजना है वह उसे वही भेजता है और न्याय व्यवस्था के अनुसार उसे कर्मफलानुसार ऋषि, विद्वान, वेदानुरागी आदि भी बना देता है, इसी प्रकार यह भी देखने में आया है कि कर्मानुसार उसे अच्छा, सम्पन्न, योग्य परिवार मिला परन्तु न्याय व्यवस्था के अनुसार वे वहाँ पर भी अयोग्य, मूर्ख, अविवेकी बना हुआ है।

इस प्रकार यह ईश्वरकृत है कि वह कर्मानुसार न्याय व्यवस्था के साथ शूद्र के

घर में जन्मे बालक को ऋषि ब्राह्मण और ब्राह्मण के घर में जन्मे बालक को मूर्ख शूद्र बना देता है। यदि हम इस प्रकार सत्यार्थप्रकाश में लिखित उक्त वाक्य को देखें तो वह शंका रहित सत्य ही दीखेगा। वर्ण की व्यवस्था करना राजा और विद्वान का कार्य है कि वह गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार परीक्षा करके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि वर्णों की व्यवस्था करे, परन्तु योग्यता के गुणों को देना 'ईश्वरकृत' है अर्थात् न्याय के साथ उसकी व्यवस्था वह स्वयं ही करता हैं।

कायमगंज

पृष्ठ १३७ का शेष

शरीर स्वस्थ तथा रोग रहित हो जायेगा।

उपवास के उपरान्त फल और सब्जी के रसों का प्रयोग करें। धीरे–धीरे अन्न की ओर बढ़ें। ईश्वर का गुणगान करें, सात्विक जीवन यापन करें।

मनुष्य देह परमात्मा की ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ कृति है। अपने संयम विवेक और साधना के द्वारा यथोचित भोजन पद्धति को अपना कर पंच तत्वों से बने इस शरीर की उपयोगिता को समझें। क्षणिक स्वाद के कारण इस शरीर को विशाक्त न बनने दें।

महिला आर्य समाज
स्टेशन रोड,
मुरादाबाद

श्री वीरेन्द्र गुप्तः के साहित्य में राष्ट्रवाद



शिवअवतार "सरस"

सौम्य, सुशील एवं स्वाध्यायी श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी विगत अनेक वर्षों से वैदिक साहित्य के सृजन और सम्पादन का संकल्प लिये हुए हैं। "वेद दर्शन" की भूमिका में 'उद्गार' शीर्षक से अपने मन्तव्य को व्यक्त करते हुए उनका कथन है "मेरी उत्कट अभिलाषा यह है कि सत्य ज्ञान वेद–गंगा की लहरों को संसार के प्रत्येक प्राणी तक पहुँचाने के प्रयास में मैं पूर्ण सफलता प्राप्त करुँ"।

उक्त मन्तव्य में उनका एक ही लक्ष्य प्रतीत होता है कि विश्व के आदि ग्रन्थ वेदों में अन्तर्निहित ज्ञान–गंगा को किसी भी प्रकार से सरल सुबोध एवं संग्राह्य शैली में विश्व भर में प्रवाहित किया जाये। हर्ष का विषय है कि इस लक्ष्य की पूर्ति हेतु श्री गुप्तः जी ने सर्वप्रथम स्वाध्याय द्वारा वेदों में व्याप्त ज्ञान को आत्मसात किया और फिर उस ज्ञान को बहुजन हिताय–बहुजन सुखाय सरल व सुबोध शैली में 'वेद में क्या है" "यज्ञों का महत्व" "ज्ञान दीप" "दिव्य दर्शन" "वेद दर्शन" "वेदांग परिचय" जैसे अनेक ग्रन्थों का लेखन व प्रकाशन करके एक महान कार्य किया है। निश्चय ही उनके इस सत्प्रयास से वे लोग अवश्य ही लाभान्वित होंगे जो संस्कृत का ज्ञान न रखने के कारण वेदाध्ययन के पुनीत कर्म से वंचित हैं।

श्री गुप्तः जी ने अपने वैदिक साहित्य के सृजन में द्रष्टान्तों एवं उदाहरणों का प्रयोग करके जो सरलता सहजता सुबोधता और उपयोगिता प्रदान की है वह निश्चय ही उनके सौम्य, सरल, सहज एवं सात्विक व्यक्तित्व की छाप है। भाव पक्ष की प्रबलता एवं भाषा शैली की सरलता व सहजता के बाद भी भले ही श्री गुप्तः जी को हिन्दी साहित्य के इतिहास में कोई भी स्थान मिले मगर साहित्य के सृजन की दृष्टि से उन्हें और उनके साहित्य को चिरकाल तक याद किया जायेगा। कारण स्पष्ट है कि काव्य साहित्य के लक्ष्य बिन्दुओं "काव्यं यशसे ऽर्थक्रते शिवेतरक्षतये" में से उन्होंने 'शिवेतरक्षतये' को ही अपनाया है। 'आनुषक्' पुस्तक की भूमिका में अपने विचार व्यक्त करते हुए वह लिखते हैं–"जिस साहित्य से मानव जीवन निखरे, उन्नत हो, प्रगति के पथ पर चलने के लिये उत्सुक हो, केवल अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न हो वरन् सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझे, इस प्रकार की प्रेरणा देने वाला साहित्य ही वास्तविक साहित्य है।" निश्चय ही श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के ये विचार राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तः के इन उद्गारों की याद दिलाते हैं :–

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिये।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिये।।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के साहित्य में उपदेश मर्म क्या है? यह जानने के लिये जब

मैंने उनसे भेंट की तो ज्ञात हुआ कि साहित्य के सृजन की सत्प्रेरणा उन्हें आर्य समाज के संस्थापक एवं वेद की दिव्य ज्योति के प्रकाशक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सदुपदेशों से प्राप्त हुई है। महर्षि दयानन्द कितने बड़े राष्ट्रवादी थे और भारत राष्ट्र की स्वतन्त्रता में उनका क्या योगदान था ये सब तथ्य तो अब उभर कर सामने आ रहे हैं। क्योंकि जो लोग भ्रमवश लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के उद्घोष "स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है" से 'स्वराज्य की एवं भारतीय राष्ट्रीय महासभा' की स्थापना १८८५ से राष्ट्र शब्द की उत्पत्ति समझ रहे थे, उन सभी के भ्रम का निवारण करने के लिये ही गुप्तः जी जैसे लेखकों ने वैदिक ऋचाओं द्वारा उक्त शब्दों की प्रामाणिकता प्रस्तुत की है। 'वेद दर्शन' में 'राष्ट्र भूमि सूक्त' में ऋग्वेद की ऋचा में स्वराज्य शब्द का प्रयोग इस रूप में हुआ है–

आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये।।

ऋग्वेद ५/६६/६

हे स्नेही एवं दर्शन करने योग्य विद्वान् पुरुषों! आप और हम समस्त विद्वज्जन मिलकर अति विस्तृत और बहुत से वीर पुरुषों द्वारा रक्षा करने योग्य 'स्वराज्य' के निमित्त सब प्रकार से यत्नवान होते रहें।

इसी प्रकार यजुर्वेद की एक ऋचा में 'राष्ट्र' शब्द का उल्लेख करते हुए प्रमाणित किया गया है–

वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।

अर्थात् हम लोग राष्ट्र के सब कार्यों में अग्रसर रह कर सदा जागते रहें। लेखक ने इसी ग्रन्थ में अथर्ववेद के १२/१/१२ का संदर्भ देते हुए राष्ट्रवाद की महिमा इस प्रकार प्रतिपादित की है।

माता भूमिः पुत्रो ऽ हं पृथिव्याः।
पर्जन्यः पिता स उं नः पिपर्तु।।

सभी वस्तुओं की उत्पादक भूमि मेरी माता है और मैं भूमि का पुत्र हूँ। सभी रसों को प्रदान करने वाला मेघ हमारा पिता है और वही हमारा पालन करे।

देश के महान पुरातत्वविद् डा० वासुदेव शरण अग्रवाल जब 'राष्ट्र के स्वरूप' के निर्धारण में वेद की उक्त ऋचा का सहारा ले सकते हैं तब श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के इस साहित्य सृजन में राष्ट्रवाद की परिकल्पना क्यों नहीं की जा सकती? राष्ट्रवाद की चर्चा में त्याग भाव का उल्लेख न हो तो वह कैसा राष्ट्रवाद है? कविवर रामनरेश त्रिपाठी ने भी तो त्याग को ही सच्चे देशप्रेम की कसौटी कहा है–

सच्चा प्रेम वही है जिसकी तृप्ति आत्मबलि पर हो निर्भर।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है, करो प्रेम पर प्राण निछावर।।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने भी वैदिक वाङ्मय के मन्थन से ऐसे अनेक सूक्त खोज निकाले हैं जो हमें राष्ट्र के लिये कर (टैक्स) भरने की प्रेरणा देते हैं।

उपस्थास्ते अनमीवा अयक्ष्मा अस्मभ्यं सन्तु पृथिवि प्रसूताः।
दीर्घ न आयुः प्रतिबुध्यमाना वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याय।।

अथर्ववेद १२/१/६२

हे पृथवी! हमारी उत्पन्न सन्तति तेरी गोद में सदा रोग रहित, सुखी एवं हृष्ट–पुष्ट होकर रहे। हमारी आयु बहुत लम्बी है ऐसा समझते हुए हम तेरी रक्षा के लिये भेंट पूजा या कर (टैक्स) देने वाले रहें। 'वेद दर्शन' में विद्वान् लेखक ने कुछ इस प्रकार की ऋचाओं के भी दर्शन कराये हैं जिनमें सूर्य देव से एक ऐसे राष्ट्र की कामना की गई है जो सब प्रकार से शत्रु रहित एवं नीति पर आधारित हो।

परित्वा धात् सविता देवो अग्निर्वर्चसा मित्रा वरुणावभित्वा।
सर्वा अरातिरवक्रामन्नेहीदं राष्ट्रमकरः सूनृतावत्।।

अथर्ववेद १३/१/२०

सब का उत्पादक सूर्यदेव तेरी सब ओर से रक्षा करे। अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष अपने तेज से तेरी रक्षा करें। स्नेही जन और शत्रुवारक सेनापति दोनों तेरी रक्षा करें और तू समस्त शत्रुसेनाओं को अपने नीचे पददलित करता हुआ राष्ट्र को उत्तम ज्ञान और सद्व्यवहार से युक्त कर।

वैदिक साहित्य में से राष्ट्रीयता के तत्व को मुखरित करते हुए श्रद्धेय श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी जिस प्रकार का साहित्य सृजन कर रहे हैं वह आज की आवश्यकता के अनुरूप है। भारतीय शिक्षा, सभ्यता एवं संस्कृति के वर्तमान अवमूल्यन को देखते हुए उक्त साहित्य की महती आवश्यकता है। परम पिता परमात्मा से कामना है कि वह श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी को स्वस्थ रखें एवं दीर्घजीवी बनायें तथा उनकी लेखनी इसी प्रकार अबाध गति से निरन्तर चलती रहे।

उपमन्त्री
आर्य समाज, स्टेशन रोड
मालती नगर,
मुरादाबाद



अभिनन्दनीय व्यक्तित्व

परशुराम
'नया कबीर'

आदरणीय भ्राता श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी द्वारा लिखित पुस्तक 'आनुषक्' कहानी संग्रह पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। यह कहानियाँ बच्चों में एक दिन परमात्मनिष्ठा को जन्म तो देंगी ही, साथ ही बच्चों में ईमानदारी के प्रति जागरुकता भी प्रदान करेगी, तथा साथ ही साथ बच्चों में बौद्धिक विकास कर चारित्रिक उत्थान के प्रति सचेत कर उंन्हें एक दिनचरित्रवान बनाने के लिये विवश भी करेंगी। यह पुस्तक एक दिन भविष्य निर्माण हेतु सराहनीय सिद्ध होगी।

पुस्तक से विदित हुआ कि श्री गुप्तः जी ने इससे पूर्व और भी बहुत सी उपयोगी पुस्तकों को जन्म दिया है। मैं श्री गुप्तः जी को बधाई देता हूँ, अभिवादन करता हूँ और कांमना करता हूँ कि वे इसी प्रकार फले-फूलें और यशस्वी बने।

दूरभाष केन्द्र
मुरादाबाद

विनम्रता की मूर्ति



अशोक विश्नोई

जिस भांति सागर अथाह गहराई लिये होता है उसमें कितने अनमोल रत्न छिपे होते हैं इसका अनुमान लगाना सरल ही नहीं अपितु कठिन है। जब सागर में कोई हलचल होती है उसमें पठारें उठती हैं और जब पठारें उछाल लेती हैं तो वह खजाना बाहर निकल कर किनारों पर एकत्र हो जाता है, जिसका हम सभी आनन्द उठाते हैं, लाभ उठाते हैं, जब कि सागर इस बात से अनभिज्ञ होता है कि उसके भीतर क्या क्या है? और वह जो हमें सौंपता है उसे हम आजीवन सम्भाल कर रखते हैं–ठीक इसी प्रकार सागर सी गहराई लिये मेरे शहर मुरादाबाद में एक व्यक्तित्व है, जिन्हें हम श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के नाम से जानते हैं।

सागर सी गहराई लिए यह व्यक्तित्व और इस व्यक्तित्व में छिपा खजाना बाहर आ रहा है, साहित्य सृजन के रूप में! उनके अद्भुत साहित्य का लाभ आज हमें प्राप्त हो रहा है। कितना अनमोल खजाना श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के महान ह्रदय सागर में है इसका पता करना कठिन है, हाँ यह विश्वास है कि वह खजाना पुस्तकों के रूप में हमारे समक्ष है। साहित्य के माध्यम से राष्ट्र–सेवा करने वाले गुप्तः जी का योगदान अकथनीय है। उनका यह खजाना हमें नई दिशा, प्रेरणा और ज्ञान का भण्डार सौंपता है हम इसे धीरे–धीरे संचय करते चलते हैं, उनकी पुस्तकों का मनन करने हेतु हम तत्पर रहते हैं।

यहां यह बात भी कहता चलूँ कि आपने देखा होगा और सुना भी होगा कि मेघ जब बरसते हैं तो पता चलता है कि नगर के एक क्षेत्र में वर्षा हुई है और दूसरे क्षेत्र में एक भी बूंद पानी की नहीं पड़ी है यह प्रकृति का अपना खेल है, उसकी अपनी लीला है। लेकिन गुप्तः जी की साहित्य वर्षा किसी एक क्षेत्र के लिए नहीं होती है, हर क्षेत्र में बराबर साहित्य वर्षा होना और हर वर्ग के लिए लाभकारी होना अपने में अनूठी बात है यह उस प्राणी मात्र के ऊपर है कि वह उसे ग्रहण करे या न करे, साहित्य की वर्षा का आनन्द ले या न ले परन्तु वर्षा होती बराबर है। अतः गुप्तः जी का साहित्य और उनका व्यक्तित्व अपने में अछूता है।

जहां तक मेरे एवं श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के परिचय की बात आती है सो वह दिन मुझे आज भी याद है–जब श्री गुप्तः जी एक स्मारिका प्रिन्ट करवाने हेतु किन्हीं सज्जन के साथ मेरी प्रेस में आये थे, स्मारिका में प्रकाशित विज्ञापनों में रिक्त स्थान देखकर मैंने अपनी प्रेस का भी विज्ञापन उसमें प्रकाशित कर दिया। जब स्मारिका के प्रिन्टिंग के भुगतान का समय आया तो उन महाशय ने मेरे विज्ञापन के भी पैसे काटकर मुझे भुगतान थमा दिया मुझे बड़ा अजीब और अनुमान से परे यह बात लगी, लेकिन तभी सज्जनता की मूर्ति, इन्साफ और न्याय के साक्षात स्वरूप श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने उनका

विरोध किया और उनसे पूर्ण राशि भुगतान हेतु कहा, हालांकि वह सज्जन गुप्तः जी के सम्पर्क में पहले से ही थे, मैं तो उनके लिए नया ही था, गुप्तः जी चाहते तो उनका पक्ष भी ले सकते थे लेकिन ऐसा नहीं हो सका और उन्होंने पूरा भुगतान करा दिया। बस तब से आज तक मैं उनके विनम्र व्यक्तित्व से प्रभावित होता रहा हूँ।

इस बात को काफी समय व्यतीत हो गया, इस बीच मेरा सम्पर्क भी ऐसा नहीं बन सका कि मैं गुप्तः जी से भेंट करता, इसी बीच सहृदयता की एक कड़ी और जुड़ गई जब उनके प्रकाशन की प्रकाशित कृति सस्नेह भेंट मुझे दी गई। एक के बाद एक विनम्रता लिए गुप्तः जी की स्मरण शक्ति और साधुवादिता का मैं ऋणी होता चला गया और सम्पर्क में प्रगाढ़ता आती चली गई। जब कभी उनके प्रकाशन की कृति प्रकाशित होती उसका विमोचन होता तो मुझे अवश्य ही स्मरण करते हैं। हर बार उनका स्नेह भरा निमंत्रण मेरे पास आता रहता है।

साहित्य प्रकाशित कर पाठकों के हाथों में पहुंचाना और निःस्वार्थ साहित्य सेवा करना उनके जीवन का अंग बन चुका है। मैं साहित्यकार के नाते कुछ और भी बताना चाहता हूँ कि हम कवि गोष्ठियां आयोजित करते हैं, साहित्यिक गोष्ठियां आयोजित करते रहे हैं। और आज भी इस परम्परा का निर्वाह कर रहे हैं। हमारी गोष्ठियों में नगर के प्रबुद्ध वर्ग का सहयोग सदा रहा है। गोष्ठी में—डा० अजय अनुपम, श्री शंकर दत्त पांडे, श्री पुष्पेन्द्र वर्णवाल, श्री शिवअवतार सरस जी, श्री वहोरन सिंह वर्मा प्रवासी जी, श्री शील जी, श्री सर्वेश्वर सरन जी, श्री ईश जी, भाई अम्बरीष जी आदि भाग लेते रहे हैं। अनेकों परिचर्चायें होती रही हैं और इन साहित्य आयोजनों में श्री गुप्तः जी हमारे बीच अवश्य ही रहते हैं। गोष्ठी में जब किसी विषय पर अधिक चर्चा होने लगती और वह चर्चा बहस में आने लगती तो श्री गुप्तः जी बड़े सरल ढंग से वेदों के मंत्रों का उदाहरण देकर उस विषय को आसानी से हल कर देते हैं और शंका का सारगर्भिता के साथ हल हो जाता है। श्री गुप्तः जी इन गोष्ठियों में अपने प्रकाशन की कृति निःशुल्क सभी को भेंट करते रहे हैं।

श्री गुप्तः जी की सज्जनता के किस—किस रूप का वर्णन करूँ यदि लिखने बैठ जाएँ तो उनके व्यक्तित्व में एक ग्रन्थ बन जाएगा।

जब—जब बाजार में मेरी उनसे भेंट हुई है उनको प्रणाम किया है जो उनके आशीष का अनूठा प्रिय ढंग मुझे मिलता है वह मुझको कहीं और ले जाता है उस क्षण मैं सोचता हूँ कि इस धरातल पर गुप्तः जी साक्षात विनम्रता की मूर्ति हैं जिनको बारम्बार नमन करने का मन बना रहता है।

साहित्य के माध्यम से राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की सेवा करने वाले गुप्तः जी के प्रकाशन में कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और वे निरन्तर इस कार्य में प्रगतिशील हैं उनका यह क्रम चलता रहे — — चलता रहे — — चलता रहे — —।। यही कामना है।

सम्पर्क : सागर तरंग प्रकाशन
२६—ए, गांधी नगर, मुरादाबाद

वे परमेश्वर की इच्छा से ही साहित्यकार हैं



विजय कुमार

मुरादाबाद नगर का भारतीय साहित्य में एक विविधता पूर्ण विशिष्ट स्थान है। यहाँ वैदिक साहित्य के प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को पूर्णता मिली वहीं दूसरी ओर तन्त्र मन्त्र से सम्बद्ध साहित्य का भी बोलबाला रहा है। वैदिक साहित्य तथा आज के आधुनिक विज्ञान ने तन्त्र मन्त्र के दावों को पीछे धकेल दिया है परन्तु प्राचीन ज्योतिष गणित को कोई भी नहीं नकार पाया है। आज भी वैज्ञानिक प्राचीन ऋषियों की गणनाओं और उनके आधार पर खगोलीय पिण्डों की स्थिति को अपनी गणनाओं के अनुरूप पाकर आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि किस प्रकार आज के आधुनिक यन्त्रों से रहित होकर भी ऋषियों ने ज्योतिष विद्या के माध्यम से साधारण जन को अपना ज्ञान सुलभ कराया। आकाशीय पिण्डों की स्थिति से फलित ज्योतिष का विज्ञान रचकर भूत, भविष्य, वर्तमान की घटनाओं की निकटतम जानकारी प्राप्त करने का माध्यम प्रदाम कर जीवन को रोमांचक बना दिया।

वर्तमान युग के वैदिक साहित्य के प्रणेता महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा भी ज्योतिष को पूर्ण स्वीकृति मिली है। महर्षि के द्वारा उनके जीवन काल में फैली फलित ज्योतिष की भ्रामक स्थिति का खण्डन करने पर जन साधारण द्वारा वैज्ञानिक (सैद्धान्तिक) पक्ष को तथा महर्षि के मन्तव्य को समझे बग़ैर उसे पूर्ण रूप से नकारने का प्रयास किया गया। महर्षि ने फलित ज्योतिष को न नकारकर अधकचरे ज्योतिषियों द्वारा ज्योतिष को धर्म से अनावश्यक रूप से जोड़े गये पक्ष को त्यागने को कहा था। महर्षि ने स्वयं अपने वर्तमान एवं भविष्य के कष्टों के निवारणार्थ परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करने की आज्ञा दी है।

महर्षि के भावों को समझे बिना अथवा अधकचरे ज्योतिषियों के कारण इस विद्या को त्याग देने से साधारण जन अपने ही पूर्वजों के महत्वपूर्ण ज्ञान से वंचित रह गये थे। आज इस विज्ञान के पारंगत विद्वानों द्वारा फलित ज्योतिष की सत्यता सिद्ध करने के कारण साधारण जन को पुनः उस समय की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए महर्षि के खण्डन का मर्म समझ, इस विज्ञान को महर्षि के अनुरूप बनाकर स्वीकार करना ही होगा।

जब किसी बालक का जन्म होता है तो उस पर उसके माता–पिता, परिवार, समाज का समयानुसार प्रभाव पड़ता है और वह उसी के अनुरूप बन जाता है। इसी प्रकार प्रकृति भी उस बालक को अपना प्रभाव देती है, जिसका उस पर जीवन–पर्यन्त प्रभाव रहता है। इसी का ज्योतिक के द्वारा अध्ययन कर उस बालक (जातक) की कार्य प्रणाली व अन्य परिस्थितियों का आँकलन किया जाता है।

मैं पूज्य पिता जी (श्री राजेन्द्र नाथ जी) के माध्यम से पूज्य श्री जसवन्त राय जी (कानून गोयान निवासी) के सम्पर्क में आया। आपने मुझे ज्योतिष के गणित और फलित दोनों पक्षों से परिचित कराया और व्यावहारिक ज्ञान दिया। आज तक जो कुछ भी गुरुवर श्री जसवन्तराय जी से सीख पाया हूँ उसी के आधार पर श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी की लेखन के प्रति रुचि का ज्योतिषीय विवेचन प्रस्तुत करता हूँ।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का जन्म ३ अगस्त १९२७ दिन बुद्धवार को रात्रि ३ बजकर २० मिनट पर मुरादाबाद में हुआ।

बु. ४ सू.
२
मं. शु. ५
३ रा.
१
६
१२ गु.
च. ७
९ के.
११
श. ८
१०

१ के.
११
२
१२
१०
३
शु. ९ सू.
बु. ४
६ श.
८ चं
५ मं.
रा. ७ गु०

विंशोत्तरी भोग्य दशा १ वर्ष ७ माह २६ दिन मंगल की थी।

सामान्यतः जीवन की प्रमुख घटना विवाह को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है अतः मैं आपके विवाह तिथि १८ नवम्बर १९४६ की पुष्टि करते हुए ही आगे बढ़ना उचित समझता हूँ।

विवाह के समय गुरु की महादशा में शनि का अन्तर चल रहा थां। गुरु सप्तमेश है और शनि पर उसकी नवम् दृष्टि है। साथ ही शनि चन्द्र लग्न से सप्तमेश मंगल से दृष्ट है और उसी की राशि में चन्द्र से द्वितीय भाव में स्थित है। इसके अतिरिक्त यदि हम महर्षि जैमिनी के अनुसार दाराकारक का प्रयोग विंशोत्तरी दशा में करके देखें तो हम पायेंगे कि शनि नवांश में दाराकारक बुध की राशि में है। स्वयं दाराकारक बुद्ध, महादशा नाथ गुरु के नक्षत्र में है। अतः गुरु की महादशा, शनि अन्तर में विवाह होना निश्चित हुआ।

विद्वानों की सम्मति के अनुसार किसी भी जातक को लेखक बनाने के लिये निम्न घटक महत्वपूर्ण भूमिका निर्वाह करते हैं।

१. किसी भी जातक का शुक्र अथवा चन्द्र आत्मकारक होना चाहिये।
२. यदि पंचमेश आत्मकारक हो तो लेखक बनाता है।

उक्त दोनों नियम भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा प्रतिपादित हैं। श्री गुप्तः जी की कुण्डली में शुक्र आत्मकारक है जो कि पंचमेश भी है। इस प्रकार आपकी कुण्डली में दोनों नियम पूर्ण रूप से दृष्टव्य हैं।

दशम भाव में स्वराशिस्थ गुरु का होना जातक को प्रकाशक व लेखन सामग्री

का व्यवसायी बनाने के अतिरिक्त लेखक बनने में सहयोग करता है।

श्री गुप्तः जी की कुण्डली में दशम भाव में मीन राशि में गुरु स्थित है अतएव आपका व्यवसाय बही खाते (लेखन सामग्री) का है और पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य आप करते ही रहते हैं। लेखन तो निर्बाध रूप से कर ही रहे हैं।

लेखन लेखक के विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम होता है। द्वितीय स्थान को वाक् स्थान कहा जाता है। श्री गुप्तः जी की कुण्डली में लग्नेश व चतुर्थेश बुध जो कि विद्या व वाणी (अभिव्यक्ति) का नैसर्गिक कारक भी होता है, द्वितीय स्थान में वर्गोत्तम स्थिति में स्थित है जिससे अभिव्यक्ति लेखन की सक्षमता स्पष्ट रुप से प्रतिबिम्बित होती है।

आपकी कुण्डली में सरस्वती योग भी दृष्टव्य है। सरस्वती योग का जातक, विचारक, विद्वान् व लेखक होता है। वर्गोत्तम बुध द्वितीय स्थान में, शुक्र चतुर्थ भाव में (भाव चलित में) दशम भाव में गुरु स्वराशि में बैठ कर सरस्वती योग का प्रतिपादन कर रहे हैं।

मंगल का सिंह राशि में होना चिकित्सा कार्य में निपुण करता है। श्री गुप्तः जी की कुण्डली में मंगल (वर्गोत्तम) सिंह राशि में स्थित है। आपके चिकित्सा ज्ञान का लाभ प्रत्येक व्यक्ति अबाध रूप से उठाता रहता है। आपका चिकित्सा ज्ञान पाश्त्चात्य न होकर आयुर्वेदिक है। इसका कारण है सूर्य की द्वितीय स्थान में बुद्ध के साथ स्थिति, क्योंकि सूर्य वेद कारक ग्रह है। इस पर देव गुरु की पंचम दृष्टि दैविक चिकित्सा (आयुर्वेदिक) की पुष्टि करती है।

श्री गुप्तः जी के लेखन का मुख्य क्षेत्र मानव जीवन को ऊर्ध्वोन्मुखी बना सरस कर सफलता प्राप्त कराने का है अर्थात् आपका लेखन वेद परक है। देखें प्राचीन ऋषियों का विज्ञान इस बारे में किस प्रकार संकेत देता है।

१. गुरौ केन्द्रकोण बुद्धिमान। ४ सारावली

२. केन्द्र कोणे जीवे वेदन्तज्ञ। ६३ सारावली

उक्त दोनों सूत्रों को मीन राशिस्थ गुरु दशम भाव (केन्द्र) में बैठकर साकार कर रहा है। श्री गुप्तः जी का लेखन तर्कपूर्ण व वेदों की जानकारी को जन साधारण को सुलभ कराने वाला है। इसी क्रम में महर्षि जैमिनी का निम्न सूत्र भी है।

रविणा वेदान्तज्ञो गीतज्ञश्च। (११३) जैमिनी सूत्र द्वितीय पाद

अर्थात् कारकांश लग्न में, उससे पंचम में यदि सूर्य स्थित हो तो जातक वेदान्त का जानकार होता है। श्री गुप्तः जी की कुण्डली में करकांश लग्न में स्थित है। अतएव आपका लेखन वेद परक है।

आत्मकारक जिस नवांश में हो उसे कारकांश लग्न कहते हैं

इसके अतिरिक्त योग और भी आपको लेखक होना सुनिश्चित करता है, आइये देखें आपकी कुण्डली में नवमेश शनि पंचमेश शुक्र पर दृष्टि डाल रहा है और यह शनि, चन्द्र लग्न से पंचमेश होकर चन्द्र लग्न से द्वितीय में है और शुक्र, चन्द्र लग्नेश भी है। इसी पर चन्द्र लग्न से द्वितीयेश मंगल की भी दृष्टि है।

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुतः मानुषेभिः।
यं कामये तंतमुग्रं कृणोमि तं ब्रह्माणं तमृषिं तं सुमेधाम्।।

ऋग्वेद १०/१२५/५

ऋग्वेद के इस मन्त्र के माध्यम से परमेश्वर का कथन है कि वह जिस–जिस को चाहता है उस–उस को बलवान करता है और जिसको चाहता है उसको ब्रह्मा, चतुर्वेदवित बनाता है और जिसको चाहता है उसको ऋषि और जिसको चाहता है उसको उत्तम बुद्धि से युक्त करता है। अर्थात् परमेश्वर को जिसको जैसा बनाना होता है, जैसा बल देना होता है उसे वैसे ही ग्रह, नक्षत्र एवं योगादि में उत्पन्न कर वैसी ही योग्यता तथा सार्मथ्य प्रदान करता है। इस प्रकार उपरोक्त मन्त्र व लेखक एवं साहित्यकार श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी के लेखन का ज्योतिषीय विवरण दर्शाता है कि ज्योतिष एक विज्ञान है तथा उसे अपनाने व गहन शोध की आवश्यकता है। तभी उसके प्रयोग से जीवन को सरल बनाया जा सकेगा।

अपनी सामर्थ्यानुसार श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी की लेखन प्रवृत्ति को ज्योतिष के दर्पण में स्पष्ट करने का प्रयास किया है, हो सकता है कोई त्रुटि अल्पज्ञ होने के कारण रह गई हो, अतः समस्त विद्वानों से मेरा करबद्ध निवेदन है कि वे उससे अवगत करा कृतार्थ करें। परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि वे श्री वीरेन्द्र गुप्तः को दीर्घायु करें जिससे हम सभी उनसे लाभान्वित होते रहें।

इसके साथ ही मैं डा० अजय अनुपम जी का हृदय से आभारी हूँ कि उन्हीं की प्रेरणा से यह विश्लेषण आपके समक्ष प्रस्तुत करने का साहस कर पाया हूँ।

६४, राजो गली,
मुरादाबाद–२४४००१



दस ऋषि नियम

उमेश पाल बरनवाल

ऋत–विद्या और पदार्थ ज्ञान से जो जग में जाना जाता।
इस सृष्टि मात्र के आदि–मूल में परमेश्वर माना जाता।।१।।
सच्चिदानन्द वह निराकार, है सर्वशक्ति, ईश्वर जग में,
वह जन्म–जरा से रहित, न्यायकारी, अनन्त, है कण रज में,
वह निर्विकार, अनुपम, अनादि, वह सर्वाधार, सर्व–व्यापक,
सर्वेश्वर सर्वान्तर्यामी, वह अजर अमर है नित्य, अभय,
वह पावन, स्वयं सृष्टिकर्ता, उसका जग से अभिन्न नाता।
उसकी उपासना उचित, वही एकात्म–शक्ति माना जाता।।२।।
ऋत–विद्याओं का ग्रन्थ एक, है वेद–राशि इस धरती पर।
उसका अध्ययन, आर्य जन का है परम धर्म, इस धरती पर।।३।।
ऋत का हो ग्रहण, अनृत का त्याग, आर्य के हैं लक्षण ये दो।
सर्वदा सतत उद्यत रहना, इसके हित जीवन प्रण यह हो।।४।।
सब कर्म अपेक्षित सत्यासत्य विचार जहाँ माना जाता।
धर्मानुसार आचार–विचार भाव से जब जाना जाता।।५।।
होता समाज का मुख्य लक्ष्य, उपकार विश्व का करने में।
शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक उन्नति के साथ विचरने में।।६।।
जो सृष्टि मात्र पर जीवन से भरपूर, प्रीति उसको दीजे।
धर्मानुसार सबसे ही यथायोग्य व्यवहार आप कीजे।।७।।
हर समय रहे रत नाश अविद्या करने यह जो प्रण पाता।
विद्या की वृद्धि तभी सम्भव होती, जीवन में सुख पाता।।८।।
जिज्ञासा जीवन का लक्षण, अपनी उन्नति तक धर्म न हो।
सबकी उन्नति में अपनी उन्नति को समझो, अपकर्म न हो ।।९।।
सामाजिक और सर्व हितकारी नियम, धर्म माना जाता।
परतन्त्र भाव यह, है स्वतन्त्र हितकारी ही जाना जाता।।१०।।
कल्याणमयी दस नियम इन्हें सत्यार्थ भाव जो अपनाता।
उसका सारा जीवन समृद्ध हो शान्ति–युक्त है बन जाता।।

"VIEWS OF A READER"



S.P. Saxena 'Surya"

In the midst of the present bemusing atmosphere where the affairs have turned topsyturvy, state of confusion is dancing recklessly, values are dealt cruelly, ethics have gone to morbidity, where nothing is left as to generate nobility the need is realised to evoke and revoke the basic values of life, the fundamental principles of life as to incorporate the moral soundness and ethical stoutness in the minds, irrespective of age, era, caste and creed.

Undoubtedly creative efforts have been made or being made in the direction of character building but seldom is written in the voice of bird's chuckling, appeasing ears and appealing heart. In the present output, little catching the eyes of sane and insane both, Shri Virendra Gupta has come out with his sweet pills to infuse serenity and softness, tearing off the murky clouds of ignorance, hatred, envy, jealousy and other evils swallowing the virtues slowly and silently even blackening innocent scules, specially of children the future of nation.

A good writing of words and appreciation has come out from the operant coffer that Shri Gupta has stored. He has rich inculcating in his treasure but the present creative work in the name of "ANUSHAK" literally-ment a sequence, an order, a correct placement. "ANUSHAK" comprising twenty-one anecdotal radiences is the fine texture of the classical values once diminished in the frency persuation of wordly charm but now revived by tender tone of teachings and preachings. Very softly Shri Virendra Gupta has touched the spiritual horizon and diving deep has come out with the most precious values, the indispensable requisites of life worth living and meaning. Affirming the deep rooted conviction of omnipotence and omnipresence of the MIGHTY CREATER, Shri Gupta has beautifully rather skillfully drawn the moral values and made them indispensable through maxims and wise sayings. In the present collection the classical references which are the basic realities, are prudently put through conversation and dialogues. The values of love, truth, kindness, charity, humility and courtesy have been nicely analysed. On the top of it there is the lively depiction of those values which merely stand for their existence but very little put in action. The feeling of respect, obedience, obeisance - The voices of God, the devotion to mother, father, teacher and elder echoing the divinity calls are the basic needs towards the making of character, a noble character not of self but of the whole, we see perceive, feel and behave. Childhood is the most delicate and tender state if educated and advocated sagaciously, the basic values are infused wisely, there is every possibility that the best will come out not

Contd. १५५

श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी —एक भाव भरित हृदय



राजेन्द्र जिज्ञासु
प्राध्यापक

कुछ वर्ष पूर्व मैं मुरादाबाद गया। श्री वीरेन्द्र जी के दर्शन करके आनन्दित हुआ। तब से मेरा उनसे सम्पर्क बना हुआ है, परन्तु उनके नाम से तो मैं बहुत वर्षों से परिचित था। कुछ व्यक्ति पर्वत के समान दूर से तो बड़े सुहावने लगते हैं परन्तु समीप जाने पर पत्थर ही पत्थर और कुछ होता ही नहीं। इसके विपरीत संसार में ऐसे सज्जनों से भी मिलने का कभी न कभी सौभाग्य प्राप्त हो जाता है जो सुमन के समान होते हैं। दूर से भी सुन्दर लगते हैं और पास जाओ तो सारा वातावरण सुगंध से सुवासित मिलता है। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी भी एक ऐसे ही समाजसेवी हैं।

उनमें एक विशेष विशेषता मैंने देखी है कि वह स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करते। सदा कुछ न कुछ पढ़ते ही रहते हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि आप बहुत अल्प शिक्षित हैं। किसी गुरुकुल या कालेज के स्नातक नहीं परन्तु अपने स्वाध्याय के बल पर वह किसी भी धार्मिक व दार्शनिक विषय पर बहुत योग्यता से चर्चा करते हैं। बात भी ठीक है पढ़ाई लिखाई व उपाधियों का विद्या ज्ञान से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है।

श्री रवीन्द्र नाथ ठाकुर व अन्य अनेक विभूतियों के नाम हम प्रमाण के रुप में दे सकते हैं जो अल्प शिक्षित थे परन्तु अपनी साधना व स्वाध्याय से जन–जन के लिये पूज्य बन गये। उत्तर प्रदेश के गंगोह नाम के कस्बे में एक आर्य पुरुष थे रहतूलाल जी। वह एक सम्पन्न वैश्य कुल में जन्मे थे। अल्प शिक्षित थे परन्तु वेद, शास्त्र, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, महर्षि दयानन्द के ग्रन्थों, इस्लाम, ईसाई मत, पुराणों, जेन्दावेस्ता किसी पर भी बात कर लो, उनके गहन व विस्तृत स्वाध्याय को देखकर व्यक्ति दंग रह जाता था। आर्य समाज के प्रसिद्ध विद्वानों के साहित्य को वह गहराई से जानते थे। देश की प्रचलित राजनीति का उन्हें सूक्ष्म ज्ञान था। सहस्त्रों ग्रन्थों के महत्वपूर्ण प्रमाण उन्हें कण्ठस्थ थे। वह एक दानी थे, धनीमानी थे और विचित्र ज्ञानी थे। उनका निजी पुस्तकालय विश्वविद्यालयों के कंई कुशल प्राध्यापकों के पुस्तकालयों को लजाता था। यह सब श्रद्धा का चमत्कार है। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी भी एक ऐसे ही सज्जन हैं। ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता, ज्ञान का आविर्भाव, ईश्वर की सत्ता व स्वरुप, कर्म फल सिद्धान्त, पुनर्जन्म, मुक्ति से लौटना, त्रेतवाद, मानवीय आहार, स्वास्थ्य, आयुर्वेद व देश की स्थिति आदि किसी भी विषय पर इनसे बात कर लें, आपको इनसे चर्चा करके आनन्द प्राप्त होगा। कुछ नई जानकारी ही मिलेगी। आज के भाग दौड़ के युग में दूर दर्शन की कृपा के कारण भी, लोग प्रायः यह कहते हुए सुने जाते हैं कि पुस्तकों को पढ़ने का समय ही नहीं मिलता। श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी एक व्यापारी होते हुए

स्वाध्याय के लिये और साहित्य सृजन के लिये इतना समय निकाल लेते हैं, यह श्रद्धा का चमत्कार नहीं तो क्या है? इसी को साहित्यिक साधना कहा जायेगा। यही ज्ञान पिपासा व जिज्ञासा है। मैंने आप में एक विशेषता और देखी है। आप धर्मभाव से दूसरों को सहयोग देते हैं। सहायता करते हैं। दाहिने हाथ से कुछ देते हैं तो बायें हाथ को पता ही नहीं लगने देते। मैं निजी रूप से जानता हूँ कि समाज हित, धर्म हित व जाति हित में कुछ अशक्त व्यक्तियों को अपने पाँवों पर खड़ा करने के लिये आपने समय–समय पर ठोस आर्थिक सहयोग किया। केवल परमार्थ भाव से, किसी स्वार्थ के लिये नहीं।

'दुकानदारी नर्म की' यह सूक्ति सबने सुन रखी है परन्तु आप में सत्य कहने का विशेष साहस देखा गया है। सत्य का मूल्य चुकाना पड़ता है और आप सहर्ष इसे चुकाते रहते हैं अर्थात् हानि उठाते रहते हैं। सत्य की प्रतिष्ठा के लिये साधक को अप्रतिष्ठित होना पड़ता है और आप अप्रतिष्ठित होने से भी नहीं सकुचाते।

बड़ा बनने के लिये और आगे बढ़ने के लिये छोटी–छोटी बातों पर ध्यान देना पड़ता है। आपका खानपान पर कड़ा संयम सबके लिये एक उदाहरण है। मैंने कई उच्च शिक्षित व्यक्तियों व कई साधुओं को खानपान की अनियमितता व असंयम के कारण घोर दुःख पाते हुए देखा है परन्तु गृहस्थी वीरेन्द्र जी का खानपान का संयम देखकर मन गद्–गद् हो जाता है। यह भी एक साधना है।

आपके ह्रदय की निर्मलता व कोमलता की एक घटना का यहाँ संकेत देता हूँ। एक जन्माभिमानी व्यक्ति ने दलित वर्ग में जन्मे एक शिक्षित व प्रतिष्ठित व्यक्ति के घर पर अनेक लोगों की उपस्थिति में एक अनुचित व्यवहार किया जिसे कोई भी न समझ सका। आर्य समाजी होने के नाते श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी उस व्यक्ति की दुर्भावना को ताड़ गये। सबके बीच में उसको लताड़ा और फटकारा। उस गृहपति को तो पता था कि वीरेन्द्र जी आर्य समाजी होने के नाते उसके हितैषी हैं। यह अनर्थ नहीं सह सकते।

अपने हानि–लाभ की सोच किये बिना खरी बात कहने से नहीं टलते। यह भी अपनी–अपनी प्रवृत्ति होती है। मैंने अनेक बार अनेक उच्च शिक्षित व विद्वान् बन्धुओं को पाप को सहते देखा है अर्थात् उनके सामने अनर्थ होता है, पाप होता है परन्तु वे चुप्पी साध लेते हैं। विरोध करने पर उनकी आर्थिक हानि होती है, बिगाड़ होता है, मान सम्मान जो मिलता है, वह नहीं मिल सकता। अतः वे मौन साध लेते हैं किन्तु ऐसे अवसरों पर वीरेन्द्र गुप्तः जी अपने मनोभावों कों निर्भीकता से व्यक्त करते हैं। कोई भी व्यक्ति यदि सत्य को जानता है तो यह अच्छी बात है परन्तु यदि उसमें सत्य कहने का साहस ही नहीं है तो उसका अस्तित्व ही क्या है? उसके ज्ञान का क्या उपयोग है?

श्री गुप्तः जी विद्वानों व गुणियों का बड़ा आदर करते हैं। समाज सेवियों व गुणियों का आदर करते हुए आप की विनम्रता देखते ही बनती है। आर्य समाज के वयोवृद्ध भजनोपदेशक श्री नरपत सिंह का अभिनन्दन प्रथम बार मेरी ही प्रधानता में हुआ था। लाला लाजपतराय, राजर्षि पुरुषोत्तमदास जी टण्डन, श्री लालबहादुर शास्त्री व वर्तमान समय के महामुनि स्वामी सर्वानन्द जी महाराज के नेतृत्व में समाज सेवा, देश सेवा,

कर्म करने वाले अकिंचत सीधे साधे नरपत सिंह जी के चरण स्पर्श करते हुए मैंने उन्हें शाल व मान पत्र भेंट किया तो श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी, श्री वेदप्रकाश जी, श्री राजेन्द्र कुमार जी गुप्तः आदि सब महानुभावों ने भी नरपत सिंह जी को शीश झुकाकर मालायें पहनाकर अपनी श्रद्धा व्यक्त की थी। ज्ञानवर्द्धक नई–नई पुस्तकों के रचयिता श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी का अभिनन्दन! शत–शत वन्दन।

धर्म देश हित काज सदा कुछ करते रहिये।
जब तक तन में प्राण सुपथ पर चलते रहिये।।

सम्पर्क : वेदसदन
अबोहर – १५२११६

Contd. to 152

welfaring the individuality but the whole universality.

Touching the strings of VEDAS, PURANAS and UPNISHADAS, Shri Gupta has taken us to the world of wonders in the tone of tenderness, simplicity and melting understanding. In his creative writing in most precise and concise way Shri Gupta has opened a panoramic atmosphere embedded with the most appealing touches reminding us the life of purity, dignity and majesty enjoyed in the open stretches of Shanti Niketan.

Taking the opportunity of extending my genial feelings for Shri Gupta for skilful naration of values with all the softness and sweetness and desired expectations from the readers through his creativity, I may look forward for a better world 'a world worth living and meaning.'

4 i, Avas-Vikas
Civil Lines,
Moradabad

वेद ईश्वर की वाणी है।

वेद सबके लिए उपकारी है।

वेद सबको पढ़ना चाहिए।

सिद्धान्त

ऋषि–प्रणाम लो



डा० अजय अनुपम

अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा के ध्वज वाहक,
सरस्वती के पुत्र ज्ञान सागर अवगाहक।
तुम अज्ञान तिमिर के लिये दहकती ज्वाला,
भ्रम भूले भटके जन के हित दिव्य उजाला।
दिशा दिशा में सत्य ज्ञान का दीप जलाया,
अखिल विश्व में पुनः मन्त्र, ओंकार जगाया।
तुम पाखण्ड जाल कर्तन को चक्र–सुदर्शन,
काम, क्रोध, मद मोह, लोभ के लिये शरासन।
शिव की सत्य प्रेरणा से मन का भ्रम टूटा,
सकल लोक कल्याण वृत्ति का निर्झर फूटा।
मन की सुन्दरता चरित्र का बल होती है,
'सच' नश्वर शरीर का अविनश्वर मोती है।
छोटे बड़े, अछूत, उच्च का भेद मिटाया,
मिल नाना के साथ राष्ट्र का ओज सजाया। (क)

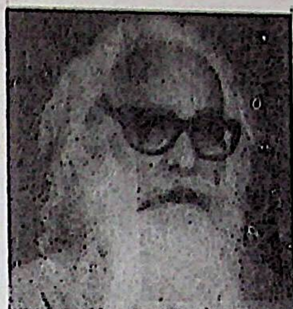
मथुरा से. काशी, प्रयाग, सौराष्ट्र, द्वारिका,
ध्वस्त कर दिया गढ़ अधर्म का अनाचार का।
रचकर आर्य–समाज राष्ट्र को सबल बनाया,
देश प्रेम का मन्त्र ओ३म् के साथ गुँजाया।
सत्य मूल परमेश्वर[1] व्यापक अजर अमर है[2],
परम धर्म है वेद[3] असत् का त्याग डगर है।[4]
सत्यासत्य विचार कर्म का मूल[5] रहेगा,
जो इस पथ पर चला उसे जग शूर कहेगा।
जग उपकार समाज देह मन की उन्नति है,[6]
सबसे धर्म विचार आचरण ही सद्गति है।[7]
नाश अविद्या का विद्या की वृद्धि कर्म है,[8]
सर्वोन्नति में ही आत्मोन्नति मनुज धर्म है।[9]
जनहित में परतन्त्र, स्वतन्त्र नियम पालन में,[10]
यही पुण्य सबसे बढ़कर है इस जीवन में।
तभी सृष्टि में लोक और परलोक सधेगा,
भटक रहा यह जीव मुक्ति की ओर बढ़ेगा।
सदा अपेक्षित धारा में बह कर सुख पाना,
संभव तब ही जिस पल वेद वचन को जाना।
हरिद्वार में सम्पूर्णानंद दिशा दिखाई,

श्री वीरेन्द्र गुप्तः

दण्डी विरजानन्द वेद लौ हृदय जगाई।
राम, कृष्ण, शंकराचार्य सेवित श्रुति पथ पर,
इस भटके समाज को लेकर आए ऋषिवर।
रक्षा सत्य सनातन वैदिक परम्परा की,
करके, भीति मिटा दी फिर से जन्म–जरा की।
पुनि–पुनि वेद ऋचाओं के स्वर गूँजे दिशि–दिशि,
उऋण न होगा मानव तुमसे दयानन्द ऋषि।
कोटि–कोटि वन्दन अभिनन्दन पूर्ण काम लो,
'अनुपम' कृत्य तुम्हारे हैं जग का प्रणाम लो।

☼ (क) नाना साहब धूं धूं पन्त के साथ १८५७ के संग्राम का संगठन किया था।
☼ १ से १० तक आर्य समाज के नियम हैं।

वेदान्त



स्वामी वेदमुनि परिव्राजक

आजकल वेदान्त की बड़ी धूम है, भारत में ही नहीं विदेशों में भी। भारत में तो बड़े–बड़े विद्वानों, बड़े–बड़े महारथियों के अत्यन्त मार्मिक, ओजस्वी तथा लच्छेदार भाषण होते हैं सम्मेलनों में।

सम्मेलनों का होना अच्छा है, उपयोगी है अतएव होने ही चाहिये। इनके होने से जनता के सामने विचार आते हैं, चित्र का कोई पहलू आता है। लोगों को विचारने, सोचने और समझने का अवसर मिलता है। भाषणों को सुनने से, विचारों के कर्णगोचर होने से मनुष्य को प्रेरणा मिलती है। वाणी की बड़ी शक्ति है–वाणी अग्नि है "वाग्वै अग्निः"। "अग्निः अग्रणीर्भवति" अग्निः अग्रणी होता है, आगे ले जाने वाला होता है, आगे ले चलने वाला होता है, आगे–आगे चलता है। वाणी सचमुच आगे–आगे चलती है, आगे ले जाने और ले चलने वाली होती है। वाणी से निकली ध्वनि सुनकर मनुष्य उसके आश्रय से अन्धेरे में भी निर्दिष्ट स्थान पर अर्थात् इच्छित स्थान पर पहुँच जाता है। वाणी के द्वारा ज्ञानोपदेश सुनकर मनुष्य इहलौकिक और पारलौकिक, भौतिक और आत्मिक दोनों प्रकार की उन्नति करता है, दोनों ही क्षेत्रों में प्रगति को प्राप्त होता है, दोनों ही क्षेत्रों में आगे बढ़ता है।

(अग्–अगि–इण्) इन तीनों धातुओं से अग्नि शब्द बनता है। इन तीनों ही धातुओं का अर्थ है 'गति'। जिससे जीवन को गति, प्रगति, उन्नति प्राप्त हो, उस का नाम अग्नि है। जो लोग अध्ययन नहीं कर पाते और जिन्हें अध्ययन के साधन उपलब्ध नहीं होते, वह भी सभा–सम्मेलनों में विद्वान् वक्ताओं की वाणी से निकले शब्दों द्वारा ज्ञान–चर्चा सुनकर अपने को पतन के गर्त से निकाल कर सद्मार्ग की ओर ले जाते हुये देखे जाते हैं। इतिहास साक्षी है कि अत्यन्त पतितावस्था में पड़े लोगों के जीवन भी वाणी के प्रभाव से अत्यन्त पवित्र बने हैं। इस सन्दर्भ में इस प्रकार की घटनाओं में से हम यहाँ यह कहने का लोक संवरण नहीं कर सकेंगे कि मद्यपान और वेश्यागमन में अत्यन्त लिप्त अमीचन्द को महर्षि स्वामी दयानन्द के इन शब्दों ने कि "अमीचन्द! थे तो तुम मोती मगर कीचड़ में फंसे हो।" 'भक्त अमीचन्द' बना दिया था।

"अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्"

अर्थात् किये हुए कर्मों का फल चाहे वह शुभ हो या अशुभ–अवश्य ही भोगना पड़ता है। स्वर्गीय श्री पण्डित गणपति शर्मा के भाषण में इन शब्दों को सुनकर करनाल जनपद (हरियाणा) मुगला डाकू भी धर्म प्रचारक बन गया था एतदर्थमेव उपरोक्त प्रकार के सम्मेलनों की उपयोगिता और उनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

यही वाणी जो सभा–सम्मेलनों में सुनने को मिलती हो, लिखी जाकर पुस्तक के रूप में शिक्षित और अध्ययन शील जनों के जीवनों के लिये प्रगति का कारण बनती

श्री वीरेन्द्र गुप्तः

है। परन्तु प्रश्न तो यह है कि इस प्रकार के सभा सम्मेलनों में जो चर्चा सुनने को मिलती है, वह कितावी उपयोगी होती है? अभिप्राय यह है कि वह चर्चा जो हम इन सम्मेलनों में सुनते और पुस्तकों में पढ़ते हैं, तो वह विषय के अनुरूप भी होती है या नहीं? उदाहरण के लिये वेदान्त की ही बात ले लीजिये, जो हमारा प्रस्तुत विषय है। क्या 'वेदान्त सम्मेलन' के नाम पर श्रोताओं के वेदान्त चर्चा सुनने को मिलती है? यदि मिलती है तो कितने अंशों में? यह एक ऐसा प्रश्न है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। कुछ न कुछ तो मिलता ही है यह एक अलग बात है, किन्तु जो मिलना चाहिये, वह भी मिलता है या नहीं?

उपरोक्त शब्दों में वेदान्त सम्मेलनों की आलोचना करना हमारा उद्देश्य नहीं है किन्तु हमें यह सोचने का तो अधिकार है कि इन सम्मेलनों को तिरस्कृत किया जाये, पुरस्कृत किया जाय या परिष्कृत किया जाये? जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, हम इन का तिरस्कार नहीं करना चाहते, परन्तु यह भी सत्य है कि हम इन्हें पुरस्कार देने को भी तैयार नहीं। हमारी सम्मति में तो इन सम्मेलनों का परिष्कार होना चाहिये। जो इधर–उधर की निरर्थक सामग्री, अनर्गल और अनावश्यक चर्चा इन सम्मेलनों में होती है वह बन्द की जाये, उस की छटनी की जाये और जो आवश्यक, अनिवार्य तथा वास्तविक वेदान्त–चर्चा हो, उसे सम्मिलित किया जाये।

जहाँ तक वेदान्त सम्बन्धी साहित्य का प्रश्न है, पुस्तक विक्रेताओं के यहाँ स्वामी विवेकानन्द जी का वेदान्त तो मिल सकता है। स्वामी रामतीर्थ और रामकृष्ण परमहंस की वेदान्त सम्बन्धी विचारधारा के ग्रन्थ भी मिल जायेंगे किन्तु वेदान्त दर्शन जो छः दर्शनों में से एक है, जिसके रचयिता महर्षि वेदव्यास थे वादरायण मुनि के शिष्य कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास–वह परोक्ष की वस्तु बनने जा रहा है, वह पर्दे के पीछे पड़ता जा रहा है, वह जनता की दृष्टि से दूर, अतिदूर–जनता की आँखों से ओझल होता जा रहा है। वेदान्त–सूत्रों के प्रणेता उस साक्षात्कृत धर्म को लोग भूलते जा रहे हैं। उसकी ज्ञान–रश्मियाँ अब जनता की दृष्टि के सामने नहीं हैं।

जब उस परम तपस्वी तथा महामनीषी महर्षि वेद व्यास का वेद–दर्शन ही जनता की दृष्टि में नहीं है तो उसका मूल स्रोत अर्थात् वह ज्ञान अत्यन्त तपस्या पूर्वक जिसका मन्थन करके अपनी प्रतिष्ठित पूजा द्वारा उस तपोधन ने मानव कल्याण के लिए इन सूत्रों की रचना की थी, वह जनता के सामने किस प्रकार आये? जनता उस अक्षय ज्ञान–कोष को किस प्रकार प्राप्त करे? यह समस्या है। इसी समस्या के समाधान को लक्ष्य करके यह पंक्तियाँ लिखने का साहस किया है। इन पंक्तियों में सर्वश्री स्वामी विवेकानन्द जी, स्वामी रामतीर्थ जी तथा रामकृष्ण परमहंस जी के दार्शनिक दृष्टिकोण की आलोचना हम नहीं कर रहे–न हम उनके महत्तव को कम करके आँकना चाहते हैं। हम तो इन मनीषियों को अपने–अपने समय की विभूतियाँ मानते हैं किन्तु हमें यह कहने में लेशमात्र भी संकोच नहीं है कि इन तीनों मनीषियों की विचार धारा कलाबद्ध है। यह तीनों महानुभाव आचार्य शंकर के पीछे चलते हैं। इनके प्रेरणास्रोत आद्य शंकराचार्य हैं और शंकराचार्य की विचार धारा तात्कालिक परिस्थितयों से प्रेरित तथा

प्रभावित है। उस समय प्रबाध गति से फैलते हुये बौद्ध तथा जैन मतों की अनीश्वरवादी विचार धारा से आकुल होकर परम आस्तिक भगवान शंकराचार्य ने ईश्वरवाद की विचार धारा के रक्षण, प्रसार तथा प्रचार के लिए इस विचार धारा को अपनाया था, जो शंकर–दर्शन के नाम से प्रचलित है और जिसे सामान्यतया अद्धैतवाद के नाम से जाना जाता है।

आधुनिक युग के महान् विचारक व सुधारक महर्षि दयानन्द सरस्वती ने जगद्‌गुरु शंकराचार्य के विषय में अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश के ग्यारहवें समुल्लास में लिखा है– "जो जैनियों के खण्डन के लिये ब्रह्म सत्य, जगतमिथ्या और जीवब्रह्म की एकता कथन की थी।" इन शब्दों से यह स्पष्ट है कि आचार्य शंकर की विचार धारा तात्कालिक परिस्थितियों से प्रभावित थी। "विषस्य विषमौषधम्" अर्थात् विष की औषधि विष ही होती है, इस सिद्धान्त के अनुसार शंकराचार्य ने "सब कुछ प्रकृति ही है और कुछ है ही नहीं।" की समानान्तर रेखा खींची थी। उन्होंने उस समय को वेदान्त–दर्शन की गहराइयों में जाने के लिए उपयुक्त नहीं समझा।

वेदान्त दर्शन–जिसके रचयिता महर्षि वेदव्यास हुए हैं और जिसकी चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं, वह सत्य, अपरिवर्त्तित, कालातीत तथा मूलभूत सिद्धान्तों तथा वास्तविकताओं का तत्व–सार–संग्रह है और उसका मूलाधार वेद है। वह वेद–जो अकाल पुरुष की देन है, जो उस अनादि पूर्व पुरुष परमेश्वर के ज्ञान में सदा नवीन बना रहता है। जो कालबधित नहीं है अर्थात् जिसका मूल सम्बन्ध न भूत है, न वर्तमान से और न भविष्य से। जो सब कालों में समयानुसार समस्त मूलभूत समस्याओं के वास्तविक हल प्रस्तुत करता है। जिसमें समस्त सत्य विधाओं का मूल हो जिनमें कोई ऐसी बात नहीं जो अब अनुपयोगी हो जायगी। जिसमें ऐसी भी कोई बात नहीं जिसकी भविष्य में आवश्यकता होनी सम्भव हो या जो भविष्य के लिये ही हो। वह ऐसा भण्डार है, जो सर्वकालिक और सार्वभौमिक ही नहीं अपितु उससे भी – सर्वकालिक तथा सार्वभौमिक से भी आगे उपस्थिति समस्त सृष्टि में जहाँ–जहाँ भी मानव की उपस्थिति सम्भव हो अथवा जहाँ–जहाँ भी मानव है– यह ज्ञान परमोपयोगी है। कारण इसका यह है कि यह किसी मनुष्य की कृति नहीं, अपितु ईश्वरीय देन है।

कहीं भी वार्ताकार देखिये– अपवादों की तो बात नहीं कही जा सकती किन्तु सामान्यतया वेदान्त की बात करने वालों की समझ में यह नहीं आता कि वेदान्त वेद का तत्व है अथवा वेदान्त का मूल वेद में है। सामान्यतया तो लोग यही समझते हैं कि वेदान्त आद्य शंकराचार्य की देन ही है, कुछ लोग महर्षि वेदव्यास के वेदान्त दर्शन तक जाने को तैयार हैं। इससे आगे विचार करने को वो अपवाद स्वरूप और बिरले ही अत्यन्त अध्ययनशील तथा गम्भीर, तत्व चिन्तक व्यक्ति ही तैयार होते हैं।

वेद शब्द का अर्थ ज्ञान है और वेदान्त का अर्थ (वेद+अन्त) वेद अर्थात् ज्ञान का अन्त। ज्ञान दो प्रकार का होता है, एक व्याख्यात्मक और दूसरा क्रियात्मक। व्याख्यात्मक ज्ञान का नाम 'श्रुति' है और क्रियात्मक ज्ञान का नाम है 'दर्शन'। वेद शब्द का भावार्थ है– वेद समुच्चय, वेद चतुष्टेय अर्थात् वेदों में वर्णित ज्ञान, विज्ञान, कर्म

और उपासना। दूसरे शब्दों में अर्थात् लौकिक व्यवहार में ज्ञान–विज्ञान पूर्वक कर्म करके फल प्राप्त करना। एक तो ज्ञान हुआ, दूसरा विज्ञान– इन दोनों के अनुसार कर्म करने से ही सफलता प्राप्त होती है। ज्ञान है श्रुति और विज्ञान है दर्शन। वेद का नाम श्रुति भी है। जब तक काग़ज आदि साधन नहीं थे, जिससे पुस्तक का निर्माण हो सके, तब तक सुन और सुनाकर ही पढ़ा और पढ़ाया जाता था। अतः वेद श्रुति शब्द से प्रसिद्ध हो गया। उपनिषदों को भी श्रुति कहा जाता है, सम्भवतः इसलिये ही लोग उपनिषदों को भी वेद कहने लगे, किन्तु बात वास्तव में यह है कि उपनिषदों में ज्ञान (परमात्मा) ज्ञान का श्रवणात्मक स्वरूप वर्णित है। उपनिषद् उपदेशात्मक (अध्यात्म) विद्या है। उपनिषद् में जिस ज्ञान का वर्णन है, उसके सुनने से मनोवैज्ञानिक रुप से परमात्मा की निकटता प्राप्त होती है। उसे सुनते–सुनते और पढ़ते–पढ़ते मनुष्य उसी में मग्न होने लगता है, और यह स्थिति उसे भगवान भजन और भगवद् आराधना में लगा देती है।

दर्शन है वैज्ञानिक विश्लेषण– यह सुनने की नहीं अपितु अनुभव करने की वस्तु है। दर्शन ग्रन्थों में जो विश्लेषण परमाणु से लेकर परमात्मा पर्यन्त तत्वों का है, वह उस–उस विषय के ऋषि द्वारा अनुभूत है। अध्यात्म की प्रयोगशाला समाधि में बैठकर अनुभव किया हुआ है। कहना चाहिये कि उपनिषद् विवेचन है और दर्शन विश्लेषण है। उपनिषद् विद्या समझने की सामग्री प्रदान करती है तो दर्शन देखने की। दर्शन इसे इसलिये कहते हैं, क्योंकि यह दिखलाता है, दर्शन का अर्थ ही देखना है।

बात हमने प्रारम्भ की थी वेदान्त दर्शन की। वेदान्त का अर्थ है– वेद अर्थात् 'ज्ञान का अन्त और दर्शन का अर्थ है देखना' ज्ञान की अन्तिम सीमा, ज्ञान की पराकाष्ठा का देखना। ज्ञान दो प्रकार का है– अपरा और परा, इहलौकिक और पारलौकिक, द्रश्य जगत् सम्बन्धी और अद्रश्य जगत् सम्बन्धी, भौतिक तत्व, प्रकृति सम्बन्धी और अभौतिक आत्म तत्व अर्थात् आत्मा और परमात्मा सम्बन्धी। भौतिक ज्ञान, प्रकृति सम्बन्धी ज्ञान– साधारण है और जीवात्मा–परमात्मा सम्बन्धी ज्ञान–ज्ञान की अन्तिम सीमा है, ज्ञान का अन्त है, ज्ञान की पराकाष्ठा है। वेदान्त–दर्शन जिस ग्रन्थ का नाम है, उसमें ज्ञान की पराकाष्ठा है। वह इहलौकिक नहीं–पारलौकिक ज्ञान का ग्रन्थ है। उसमें ब्रह्म की चर्चा है अनुभूत चर्चा– जिसकी महर्षि वेदव्यास ने समाधि में बैठकर अनुभूति की थी, समाधिस्थ होकर जिसके दर्शन किये थे, जिस ज्ञान का साक्षात किया था।

वेदान्त शब्द का दूसरा अर्थ है (वेद+अन्त) वेद का अन्त। यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय, जो उसका अन्तिम अध्याय है, वह वेदान्त है। अभिप्राय यह है कि यही अध्याय वेदान्त–दर्शन का मूल है। उपनिषद् विद्या का प्रारम्भ भी इसी अध्याय से होता है। ईशोपनिषद् जिसे ईशावास्योपनिषद् भी कहते हैं और जो प्रथम उपनिषद् कहलाती है– थोड़े परिवर्तन के साथ वह यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय ही है। ईशोपनिषद् में मन्त्र संहिता दी गयी है, जो विवेचनात्मक है और वेदान्त–दर्शन में उसका वह तत्व प्रदर्शित किया गया है, जो अनुभूत तथा अनुभवात्मक है जो सामधिस्थ होकर

आत्म–साक्षात्कार द्वारा देखा गया है। है तो उपनिषद् भी वेदान्त ही किन्तु उपनिषद् श्रुति–वेदान्त है और वेदान्त–दर्शन है, दर्शन–वेदान्त। उपनिषद् श्रवणात्मक ज्ञान है और दर्शन साक्षात्कार का ज्ञान, जैसा कि ऊपर विचार किया जा चुका है। यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का प्रारम्भ जिस मन्त्र से होता है, उसमें कहा गया है कि इस गतिशील (संसार) में जो कुछ भी गति करता द्रष्टिगोचर हो रहा है, उस सम्पूर्ण में ईश्वर का वास है "ईशावास्यमिदं ँ॒ सर्वं यत्किञ्चजगत्याञ्जगत्" यदि पहले मन्त्र में ईश्वर की व्याप्ति का वर्णन इस प्रकार है तो सत्रवहें मन्त्र में स्पष्ट रुप में कहा गया है कि सदैव रहने वाले {उस प्रभु} का मुख यद्यपि इस संसार के हिरण्मय पदार्थें अर्थात् सांसारिक चमक–दमक से ढका हुआ है, तथापि वह प्रभु सब स्थानों से पुकार–पुकार कर अपनी सत्ता का पता दे रहा है, यह कहकर इस प्रकृति से उत्पन्न संसार में जो निवास कर रहा हो, वह मैं हूँ। वही परमात्मा इस सृष्टि का उत्पादक, पालक तथा संहारक है। वह आकाशवत् व्यापक तथा महान है। मन्त्र इस प्रकार है–

हिरण्येन पात्रेण सत्यस्यपिहितं मुखम्।
यो ऽ सावादित्ये पुरुषः सो ऽ सावहम् ओ३म खं ब्रह्म।।

वह प्रभु है किस प्रकार का ? इस विषय में इसी अध्याय के आठवें मन्त्र में कहा गया है– वह सब ओर व्याप्त है, बल का भण्डार है, उसमें न कोई छेद है, न उसके कोई घाव है, न उसके घाव हो सकता है, न वह काटा जा सकता है। उसके कोई नाड़ी–नस नहीं है, वह शुद्ध पवित्र है, पाप उसे नहीं लगते। क्रान्तदर्शी, मनीषी,सब ओर स्थित, स्वयं स्थित तथा आधारित सब पदार्थों का यथार्थ रूप से रचयिता तथा धारणकर्त्ता है। मन्त्र पढ़िये–

सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर ँ॒ शुद्धम–
पापविद्धम्। कर्विमनीषी परिभूः स्वयम्भूर्या–
तातथ्यतोर्थान्व्यदः धाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः।।

यही नहीं अपितु इसी अध्याय में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वह अत्यन्त दूर भी है और अत्यन्त निकट भी, वह सब के बाहर भी है और सबके भीतर भी, वह कम्पित नहीं होता। वह अकेला ही है, मन से भी बलवान है, वह इन्द्रियों से प्राप्त नहीं होता इत्यादि।

इस प्रकार से ईश्वर के स्वरूप और उसकी स्थिति अवस्थिति का वर्णन, उसकी प्राप्ति का उपाय तथा साथ ही उसी प्राप्ति के अधिकारी कौन होते हैं? संक्षेप से यही इस अध्याय का सार है।

अब थोड़ा सा वेदान्त–दर्शन पर भी दृष्टिपात कीजिये, जिससे यह निश्चय हो जाय कि यह लेख कल्पनाओं पर आधारित नहीं, अपितु इसमें तथ्यात्मक विचार प्रस्तुत किये गये हैं सचमुच वेदान्त का मूल यजुर्वेद है तथा उसका भी चालीसवाँ जो अन्तिम अध्याय है। वेदान्त दर्शन का प्रथम सूत्र है–

सूत्र–अथातो ब्रह्म जिज्ञासा।
पदच्छेद–अथ अतः ब्रह्म जिज्ञासा।

पदार्थ—अथ = अब, अतः = यहाँ से, ब्रह्म = ब्रह्म, जिज्ञासा = विचार।
अर्थात्—अब यहाँ से ब्रह्म विषयक विचार प्रारम्भ करते हैं।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस ब्रह्म का विचार प्रारम्भ किया जा रहा है? ब्रह्म शब्द के अनेक अर्थ होते हैं इस लिये यह प्रश्न उपस्थित होता है। ब्रह्म शब्द का एक अर्थ तो है 'वेद', दूसरा अर्थ है 'ज्ञान' तीसरा अर्थ है 'विवेक' चौथा अर्थ है 'वीर्य' पाँचवाँ अर्थ है 'महान' छठा अर्थ है 'ब्राह्मण' और ब्रह्म का सातवाँ अर्थ है 'परमात्मा'। अध्ययन कर्ताओं को भ्रान्ति न हो, वह असमंजस में न पड़ जायें, क्योंकि उद्देश्य दर्शन कराना है अतएव जिसका दर्शन कराना उद्देश्य हो, उसकी ओर प्रवृत्ति कराना भी आवश्यक है। दर्शन ज्ञान का, विवेक का नहीं करना, दर्शन वीर्य या ब्राह्मण का नहीं करना और न महानता की ही अनुभूति करानी है अपितु अनुभूति, दर्शन, साक्षात्कार कराना है परमात्मा का एतदर्थमेव दूसरे सूत्र में कहा गया है—

सूत्र—जन्माद्यस्य यतः।

पदच्छेद—जन्म आदि अस्य यतः।
पदार्थ—यतः = जिससे, अस्य (अस्य संसारस्य)

इस संसार के जन्म आदि होते हैं।

जन्म आदि का अर्थ है—जन्म अर्थात् उत्पत्ति आदि तथा आदि का अर्थ है उत्पत्ति के आगे की स्थितियाँ धारण, व्यवस्थायन, संचालन तथा प्रलय।

प्रिय पाठकवृन्द! यत्र सूत्र जो वेदान्त—दर्शन का दूसरा सूत्र है, प्रथम सूत्र के ब्रह्म शब्द को स्पष्ट कर देता है। इस सूत्र का कहना है कि भ्रान्ति में पड़ने की आवश्यकता नहीं है। इस पुस्तक (दर्शन) में उस ब्रह्म का विचार किया जा रहा है, जो इस सृष्टि को उत्पन्न करता है, इसे सँभाल (धारण) कर रहा है, इसकी व्यवस्था जिसके हाथ में है और उस व्यवस्था के अनुसार जो इस का संचालन भी कर रहा है तथा जो इसका प्रलय अर्थात् समाप्ति भी करता है।

इन दोनों सूत्रों की व्याख्या और ऊपर दिये हुए यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के उद्धरण पाठकों को यह स्पष्ट करने के लिये पर्याप्त हैं कि हमारी यह धारणा जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है कि यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय वेदान्त है और वेदान्त—दर्शन का मूल है—निराधार तथा मिथ्या नहीं है।

सामान्यतया वेदान्त के नाम पर जो प्रसिद्धियाँ हैं, उन पर भी थोड़ा विचार कर लिया जाय तो वेदान्त विषयक भ्रान्तियाँ दूर होने में सहायता मिलेगी। वेदान्त की चर्चा करने और वेदान्त में साधारणतया रुचि लेने वाले सज्जन जिन्हें जगद्गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती ने "नवीन वेदान्ती" नाम दिया है, प्रायः वेदान्त की मुख्य धारायें जिन्हें समझे बैठे हैं और जिनके आधार पर जीव—ब्रह्म की एकता सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं, वह दो वाक्य नीचे दिये जाते हैं। उन में से एक वाक्य तो है— 'अहं ब्रह्मस्मि' अर्थात् मैं ब्रह्म हूँ। नवीन वेदान्ती इस वाक्य का यही अर्थ करते हैं। एक तो किसी वाक्य को प्रसंग से पृथक कर के उसका वास्तविक से विरुद्धार्थ किया जा सकता है। दूसरे कई बार वाक्य का शब्दार्थ कुछ और होता है और भावार्थ कुछ और। यही स्थिति इस वाक्य

की भी है। इसका शब्दार्थ तो यही है, जो ऊपर लिखा है किन्तु भावार्थ इसके ठीक विपरीत है अर्थात् मैं "ब्रह्मस्थ हूँ, मैं ब्रह्म में स्थित हूँ" मैं ब्रह्म हूँ ऐसा नहीं।

विज्ञपाठकगण! यहाँ तात्थ्योपाधि है। मिट्टी में दहकता हुआ कायेला भी यदि उसके पास बोलने का साधन वाणी हो, यह नहीं कहेगा कि मैं कोयला हूँ अपितु यही कहेगा कि सावधान! मैं अग्नि हूँ, यदि छुओगे तो जला डालूँगा। बस उपरोक्त वाक्य भी साधक, योगी और समाधिस्थ व्यक्ति की इसी ब्राह्मी स्थिति, ब्रह्म में स्थित–अवस्थित होने की दशा की अभिव्यक्ति क़र रहा है। इसी प्रकार का एक वाक्य है "मञ्चाः क्रोशन्ति" मञ्चान पुकारते हैं किन्तु क्यों कि मञ्चान जड़ होने के कारण पुकारने की शक्ति नहीं रखते अतः इस वाक्य का वास्तविक अर्थ मञ्चानों (मचानों) पर बैठे हुए व्यक्ति पुकार रहे हैं, यह होता है। उदाहरण देखना हो तो पढ़िये महाभारत का अश्वमेघ पर्व अध्याय १६। वहाँ कुरुक्षेत्र के मैदान में योगीराज श्रीकृष्ण द्वारा किये गये उपदेशों की पुनः माँग करने पर योगीराज ने अर्जुन को जो उत्तर दिया, वह इस प्रकार है–

"न च शक्यं पुनर्वक्तुं अशेषतः धनञ्जयः" और "योग युक्तेन तन्मया"

अर्थात् हे अर्जुन! मैं आज उस ज्ञान को फिर ज्यों का त्यों वर्णन कर सकने में असमर्थ हूँ क्योंकि वह तो मेरे द्वारा योग युक्त होकर कहा गया था। इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट है कि कृष्ण जी ने जो कुछ उस समय कहा था, वह ब्राह्मी स्थिति में अर्थात् ब्रह्मस्थ होकर, योगस्थ होकर कहा था। वह उस समय समाधि के द्वारा ब्रह्म में स्थित हो चुके थे। नवीन वेदान्तियों द्वारा प्रयुक्त होने वाला दूसरा वाक्य है–

"एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति"

इस वाक्य का अर्थ किया जाता है, एक ब्रह्म ही है, दूसरा कोई नहीं अर्थात् ब्रह्म (परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है)। यद्यपि इस वाक्य स्पष्टार्थ यह कदापि नहीं है। वास्तविक अर्थ प्रस्तुत है अवलोकन कीजिये–

एकम् = एक, ब्रह्म = परमात्मा, द्वितीय = दूसरा, न–अस्ति = नहीं है। परमात्मा एक है, दूसरा परमात्मा कोई नहीं है। पाठकगण ध्यान दें कि इस वाक्य का कितना भ्रान्त अर्थ किया जाता है। परमात्मा एक ही है दूसरा कोई परमात्मा नहीं है, यह बात सभी ईश्वर को मानने वालों को मान्य है, इसमें सन्देह को अवकाश नहीं है।

अभिप्राय यह है कि इस प्रकार के भ्रान्त अर्थों को करके वास्तविकता को नहीं जाना जा सकता और यह वेदान्त नहीं अपितु वेदान्त विषयक भ्रान्त विचारधारा है। वेदान्त तो महर्षि वेद व्यास विरचित वेदान्त दर्शन ही है, जो यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय पर आधारित है। शमित्योम्

वैदिक संस्थान,
नजीबाबाद

वैदिक संस्कारों का महत्व


आचार्य ऋषिपाल शास्त्री

मानव जीवन की उन्नति में संस्कारों का विशिष्ट महत्व है। मानव की शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक उन्नति के लिये जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त भिन्न–भिन्न समय पर संस्कारों की व्यवस्था प्राचीन ऋषि मुनियों ने बहुत ही सुन्दर ढंग से की है। संस्कारों से ही मानव को द्विज बनने का अधिकार मिलता है। महर्षि मनु ने इस विषय में बहुत ही सत्य लिखा है।

वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनाम्।
कार्यः शरीर संस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च।।

द्विजों के गर्भाधानादि संस्कार वैदिक पुण्य कर्मों के द्वारा सम्पन्न होने चाहिये। क्योंकि इस लोक तथा परलोक में पवित्र करने वाले संस्कार ही हैं।

गार्भेर्होमैजतिकर्मचौडमोञ्जीनिबन्धनैः।
वैजिकं गर्भिकं चैनो द्विजानाम पर्मृज्यते।।

गर्भ सम्बन्धी हवन (गर्भाधान, पुंसवन तथा सीमन्तोन्नयन संस्कार) जातकर्म, चूड़ा कर्म, और उपनयन संस्कारों के द्वारा द्विजों के गर्भ एवं वीर्य सम्बन्धी दोष दूर हो जाते हैं।

इस प्रकार मनु जी का संस्कारों के विषय में स्पष्ट निर्देश है कि माता–पिता के वीर्य एवं गर्भाशय के दोषों को गर्भाधानादि संस्कारों से दूर किया जाता है। अतः संस्कार शरीरादि की शुद्धि करते हैं।

महर्षि दयानन्द ने संस्कारों को परमोपयोगी समझकर ही प्राचीन ऋषि मुनियों की पद्धति का अनुसरण करके संस्कार विधि की रचना की है उसमें महर्षि ने संस्कारों का महत्व इस प्रकार बताया है। "जिसे करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं और सनतान अत्यन्त योग्य होते हैं। इसलिये संस्कारों का करना सब मनुष्यों को अति उचित है।"

संस्कारैस्संस्कृतं यद्यन्मेध्यमत्र तदुच्यते।
असंस्कृतं तु यल्लोके तदमेध्यं प्रकीर्त्यते।।
अतः संस्कारकारणे क्रियतामुद्यमो बुधैः।
शिक्षयौषधिभिर्नित्यं सर्वथा सुखवर्धनः।।

अर्थात् संस्कारों से संस्कृत को ही पवित्र तथा असंस्कृत को अपवित्र कहते हैं। अतः शिक्षा तथा औषधियों से सुख वर्धक संस्कारों के करने में बुद्धिमानों को सदा उद्यम करना चाहिये।

जीवात्मा अमर तथा नित्य है। जन्म जन्मान्तरों में उसके साथ सूक्ष्म शरीर मुक्तिपर्यन्त रहता है और यही सूक्ष्म शरीर जन्म–जन्मान्तरों के संस्कारों या वासनाओं का वाहक होता है।

ये संस्कार शुभ तथा अशुभ दोनों प्रकार के होते हैं। जब जीवात्मा दूसरे शरीर में प्रवेश करता है, उसकी नई परिस्थिति के भी बहुत से शुभाशुभ प्रभाव मिलते हैं। उनमें बुरे प्रभावों को अभिभूत करने तथा शुभ प्रभावों को उन्नत कराने के लिये संस्कारों तथा स्वच्छं वातावरण की परम आवश्यकता है। महर्षि दयानन्द ने इसलिये माता–पिता को सचेत करते हुए लिखा है।

"माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध रूक्ष, बुद्धि नाशक पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करें वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपनादि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें, जिससे रजस् वीर्य भी दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुण युक्त हों।"

अतः माता–पिता के शुद्धाहार व शुद्ध विचारों का बालक पर बहुत प्रभाव होता है। बालक के पूर्व जन्मस्थ अशुभ संस्कार पवित्र वातावरण को पाकर वैसे ही ओझल हो जाते हैं, अथवा दग्ध बीजवत् प्रसव गुण रहित हो जाते हैं। जैसे पौदीना या धनियाँ के पौधे वर्षा की प्रतिकूल परिस्थिति को पाकर मुर्झा जाते हैं और वर्षा के बाद अनुकूल परिस्थिति पाकर फिर से प्रस्फुरित तथा विकसित हो जाते हैं।

संस्कारों में प्रथम तीन संस्कार तो बच्चे के जन्म से पूर्व ही किये जाते हैं, जिनका पूर्ण उत्तरदायित्व माता–पिता पर ही है। यदि बच्चे के पूर्व जन्म के संस्कार भी उत्तम हों, गर्भावस्था में भी माता–पिता के उत्तम संस्कार पड़े हों और जन्म के बाद भी उत्तम वातावरण प्राप्त हो जाये तो ऐसे बच्चे महा भाग्यशाली होते हैं। महर्षि ने इनके विषय में लिखा है–"सन्तान बड़ी भाग्यवान, जिसके माता–पिता धार्मिक और विद्वान् हों।"

स्वयं संस्कार शब्द भी संस्कारों की महत्ता को बताता हैं संस्कार शब्द में सम् उपसर्ग पूर्वक 'कृ' धातु से 'घज्' प्रत्यय है। और पाणिनि के 'सम्पर्युपेभ्यः करोती भूषणे' सूत्र से अलंकार अर्थ में सुडागम होता है। इसके अनुसार भी संस्कार शब्द का अर्थ है, जिससे शरीरादि सुभूषित हों, उन्हें संस्कार कहते हैं। अथवा भाव में 'घज्' प्रत्यय करके–

'संस्कारणं गुणात्तर्धानं संस्कारः अर्थात् अन्य गुणों के आधान को संस्कार कहते हैं। संस्कारों से मानव की सर्वांगिक उन्नति तो होती ही है, साथ ही पुरुषार्थ चतुष्टय की प्राप्ति से मानव अपने जीवन–लक्ष्म को प्राप्त करने में भी समर्थ हो जाता है। अतः आर्यों के जीवन में संस्कारों को विशेष महत्व दिया गया है।

इन सोलह संस्कारों को पाँच भागों में विभक्त किया जा सकता है।

अ–प्रागजन्म संस्कार = १. गर्भाधान, २. पुसंवन, ३. सीमन्तोन्नयन।

ब–बाल्यावस्था के संस्कार = ४. जात क़र्म, ५. नामकरण ६. निष्क्रमण, ७. अन्न प्रासन, ८. चूड़ा कर्म, ६. कर्ण वेध।

स–शैक्षणिक संस्कार = १०. उपनयन, ११. वेदारम्भ, १२. समावर्णन।

द–आश्रम प्रवेश के संस्कार = १३. विवाह संस्कार, १४. वानप्रस्थ आश्रम, १५ सन्यास आश्रम।

ध–अवसान संस्कार = १६. अन्तेष्टि संस्कार।

संस्कारों के उक्त विभाजन पर दृष्टिपात करने से जहाँ इस बात का पता चलता है कि यह संस्कार जन्म के पूर्व से मृत्यु पर्यन्त किये जाने योग्य है, वहाँ इस रहस्य का भी बोध होता है कि आधे से अधिक संस्कार मानव जीवन की प्रारम्भिक अवस्था में ही करने योग्य हैं। यह रहस्य मानव जीवन की प्रारम्भिक अवस्था के महत्व को प्रकट करता है जिसके सम्बन्ध में स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ "जीवन की भूलें" नामक पुस्तक में लिखते हैं "पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के इस सिद्धान्त से मैं कुछ–कुछ सहमत हूँ कि मनुष्य का वास्तविक निर्माण बालक के प्रारम्भ के चार वर्षों में हो जाता है। यह बात एक सीमा तक अवश्य सत्य है यह ठीक है कि उस समय बालक बोल कर अपने हृदय के भाव व्यक्त नहीं कर सकता किन्तु उसकी ग्राहक शक्ति बहुत अधिक प्रबल होती है। बोलने की शक्ति न होने के कारण उसकी मनन शक्ति कुछ अधिक प्रबल होती है। माता–पिता तथा समीपवर्तियों की प्रत्येक चेष्टा का वह अनुकरण करने का यत्न करता है। अतः यदि माता–पिता अविचारशील, दुर्विचारी, अनाचारी, दुराचारी हुए तो बालक भी वैसे ही होंगे। यदि माता–पिता विवेकी, सुविचारी, सदाचारी, वृतधारी होंगे तो सन्तान भी वैसे संस्कारी होगी।"

इसी प्रकार श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी "इच्छानुसार सन्तान" ग्रन्थ में लिखते हैं "वसुदेव–देवकी इच्छानुसार सन्तान को जन्म देने में सभी साधनों के पूर्ण ज्ञाता थे। यदि आप भी इस विज्ञान को समझ कर इसके अनुसार गर्भाधान करें तो निश्चय ही श्री कृष्ण जैसे महापुरुष के माता–पिता कहलायेंगे। पूर्ण ब्रह्मचर्य, उत्तम विवाह, शुद्ध भोजन, मासिक धर्म दिनचर्या, ऋतुस्नान के पश्चात की भावना, गर्भाधान समय की भावना, सोलह कला, तिथि बार, नक्षत्रादि, गर्भाधान के पश्चात का भोजन, दिनचर्या आदि सभी की जानकारी अत्यन्त आवश्यक है। प्रस्तुत पुस्तक में उत्तमोत्तम सन्तति निर्माण के सभी साधनों को पूर्ण विवेचनात्मक दृष्टि और विस्तार से समझाया गया है।"

बाल्यावस्था के अनन्तर कुमारावस्था भी कम महत्व की नहीं होती, वृद्धि की इस अवस्था में ब्रह्मचर्य पालन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। संस्कार विधि में महर्षि इस सम्बन्ध में लिखते हैं "जो कोई इस वृद्धि की अवस्था में वीर्यादि धातुओं का नाश करेगा वह कुल्हाड़े से काटे वृक्ष व डण्डे से फूटे घड़े के समान अपने सर्वस्व का नाश करके पश्चाताप करेगा, पुनः उसके हाथ में सुधार कुछ भी न रहेगा।"

वैदिक संस्कारों और ब्रह्मचर्य–पालन का घनिष्ट सम्बन्ध है। कुछ १६ संस्कारों में से १२ संस्कार ब्रह्मचर्याश्रम में ही सम्पादित होते हैं। गृहस्थ का विशाल भवन जिस सुदृढ़ नींव पर खड़ा होना है वह ब्रह्मचर्य ही है अतः ब्रह्मचर्य के महावृत के पालन पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये।

जीवन के विकास की प्रत्येक महत्वपूर्ण अवस्था में संस्कारों के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की उन्नति और मंगल की भावना की जाये और उसे अपने परिवार समाज एवं राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों का बोध कराया जाये और जीवन के लक्ष्य का एवं उसकी प्राप्ति के पवित्र साधनों का ज्ञान कराया जाना चाहिये, जीवन के प्रारम्भ से लेकर अन्त तक प्रत्येक

महत्वपूर्ण कार्य का प्रारम्भ पवित्र विचारों एवं शुभ संकल्पों के साथ होना चाहिये ताकि मनुष्य के जीवन का प्रत्येक मोड़ उसके लिये दिशा सूचक बन जाएं।

संस्कार निरी प्रथायें ही नहीं—आजकल वैदिक संस्कारों को मात्र प्रथायें और रीति—रिवाज समझा जाने लगा है पर वास्तविकता कुछ और ही है, जिसका वर्णन अमर शहीद पं० लेखराम आर्य मुसाफिर महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवन चरित्र में निम्न शब्दों में करते हैं—"कई लोग भूल से संस्कारों को केवल प्रथायें समझते हुये कहा करते हैं कि केवल सोसाइटी के लिये हमें इनका करना अवश्यक है अन्यथा निजी उन्नति इनसे नहीं हो सकती। हम इसके उत्तर में कहेंगे कि संस्कार शुद्ध क्रिया का नाम है, न कि निरर्थक प्रथाओं का और शुद्धि क्रिया सदा वैयक्तिक और सोसाइटी की उन्नति का भाग हुआ करती है। सार्थक प्रथायें, संस्कारों की पूर्ति का साधन है। संस्कार का करने वाला सदा अपना और दूसरों का कल्याण करता है। उदाहरणार्थ—यदि कोई ऋतुगमन के श्रेष्ठ सिद्धान्त का अनुकरण करता हुआ गर्भाधान संस्कार करता है तो ऐसा करने से जहाँ वह अपनी पत्नी के आरोग्य की हानि नहीं करता, वही अपने स्वास्थ्य को नहीं बिगाड़ता। व्यभिचारी मनुष्य अपनी पत्नि को ही दुःख नहीं देता प्रत्युत वीर्यनाश करने से अपने बलबुद्धि का भी नाश कर बैठता है। सन्तान को अच्छा और भला उत्पन्न करने में ही हमारा कल्याण और भलाई है। यदि शाहजहाँ ने बिना संस्कार या शुद्ध क्रिया के औरंगजेव को उत्पन्न किया तो उसके हाथ से दुःख भी आप ही भुगता। यदि राजा शान्तनु की धर्म पत्नी गंगा ने गर्भाधान की शुद्ध क्रिया से भीष्म को गर्भ में धारण किया था तो सपूत भीष्म ने माता—पिता की आज्ञा पालन में तत्पर रहकर पिता को प्रसन्नता प्राप्त करने के लिये आयु भर ब्रह्मचारी रहना स्वीकार किया था। इन संस्कारों के करने से हम जहाँ सन्तान को उत्तम और सदाचारी बनाते हैं, वहीं अपने कल्याण और भलाई का बीज बो देते हैं। यदि कोई केवल सार्वजनिक हित के लिये हवन करने से वर्षा कराता है तो क्या बरसती हुई वर्षा उसके खेत को हरा—भरा नहीं बनाती है? औरों की भलाई में मनुष्य की अपनी भलाई विद्यमान रहती है। महर्षि दयानन्द भी संस्कारों का महत्व क्रिया में मानते हैं। संस्कार विधि की भूमिका में महर्षि लिखते हैं।

"यहां तो (संस्कारों) में केवल क्रिया करनी ही मुख्य है, जिसे करके शरीर और आत्मा सुसंस्कृत होने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं, और सन्तान अत्यन्त योग्य होते हैं। इसलिये संस्कारों को करना सब मनुष्यों को अति उचित है।"

पूर्व पुरोहित, आर्य समाज
रेलवे हरथला कालोनी
शास्त्री सदन
आजाद नगर, मुरादाबाद

दयानन्द के दीवानों से


सियाराम निर्भय

दयानन्द के दीवानों तुम़ चलो वेद की वाणी दो।
ओ३म् ध्वजा लेकर कर में नवयुग को नयी रवानी दो।।
शिक्षा का आधार राष्ट्र में राष्ट्रवाद से प्रेरित हो,
अन्याय, दमन दुर्व्यसन देख युवा पीढ़ी उद्वेलित हो,
ओज, तेज और ब्रह्मचर्य से भरा देश का युवक हो,
काम करे जग में ऐसा जिसका न विदेशी पूरक हो,
वैदिक विद्यालय विकास में 'हँसराज' सा ज्ञानी दो।
लेखराम और श्रद्धानन्द की गौरव गाथा मत भूलो,
भौतिकता के पलने में तुम कभी भूल से मत झूलो,
छात्रशक्ति में ब्रह्मशक्ति का सबल शुद्धतम ज्ञान भरो,
दीन–हीन दुर्बल दुखियों का दुर्दिन से तुम त्राण करो,
नारी समाज में सीता दमयन्ती झांसी की रानी दो।
देशद्रोही सब हिन्द देश में मचा रहे उत्पात यहाँ,
निर्दोष निहत्थे हिन्दू पर वे करते हैं, आघात यहाँ,
मिट रही मनुजता पशुता से सूखा स्वदेश का पनघट है,
शस्य श्यामला वीर भूमि 'काश्मीर' बन रहा मरघट है,
देश धर्म जाति के हित में आर्य वीर बलिदानी दो।
त्याग अमर है गुरुओं का जिसने स्वदेश हित प्राण दिये,
गो, गंगा, गीता की रक्षा में जीवन बलिदान किये,
भूल गये हैं पथ से भटके देश भक्त बलिदानी को,
मान रहें रहनुमा शान से लंपट पाकिस्तानी को,
गुरु गोविन्द के वीर सुतों की उनको आज कहानी दो।
उग्रवादियों याद करो इतिहास अमर जलियाँवाला,
याद करो तुम ऊधमसिंह का देश प्रेम हिम्मत वाला,
जिसने लंदन में डायर को जाकर के गोली मारी,
अमर हो गई राष्ट्रप्रेम की गाथा वह जग से न्यारी
मदनलाल ढिंगरा बन कर तुम चढ़ती हुई जवानी दो।
करो नमस्ते नतमस्तक हो, सर ऊँचा कर जय बोलो,
बन्देमातरम् की गरिमा को सब मिल कर निर्भय बोलो,
विषधर विधर्मियों के गढ़ को तुम शेर शिवा बन कर तोड़ो,
अब जयचन्द, मीर जाफर का कोई वंशज मत छोड़ो,
अमर सिंह बन्दावैरागी नलवा सेनानी दो।

क्रमशः पृष्ठ १६० पर

वेद का अर्थ या परक ही नहीं

स्व० पं० गोपाल शास्त्री

भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षामुपनिषेदुरग्रे।
ततो राष्ट्रं बलमोजश्च जातं तदस्मै देवा उपसन्नमन्तु।।

अथर्व १६/४१/१

आज से सत्तर अस्सी वर्ष पूर्व तक भारत में तथा भारत से अन्यत्र भी सभी वेदाध्ययन शील विद्वानों की यह धारणा थी कि वेद का अर्थ यज्ञ–याग परक ही होता है।

इसका मुख्य कारण श्री सायणाचार्य जी का किया हुआ वेद का यज्ञ–याग परक अर्थ ही है। श्री सायणाचार्य जी १३७३ से १४४४ वि. संवत् तक विद्यमान थे। "उन्होंने जो भी अर्थ किया है, वही वेदार्थ है, इससे भिन्न दूसरा कोई अर्थ नहीं है।" यह धारणा तब तक सभी वेदाध्यायी वर्ग की थी; इस में संदेह नहीं। इसलिये वेद के विषय में अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन इत्यादि भाषाओं में जो कुछ भी अनुवाद पूरे या अधूरे हुए या होते रहे, वे सभी वेद के यज्ञ परक अर्थ के ही प्रतिपादक व पोषक थे, क्योंकि उन अनुवादकों के सामने केवल एक सायणाचार्य का ही भाष्य था और वह भाष्य वेद के यज्ञ परक अर्थों का ही प्रतिपादक था। दूसरे अर्थों का नहीं। इस प्रकार सायण भाष्य "वेद का अर्थ यज्ञ परक ही है दूसरा अर्थ नहीं है" इसी सिद्धान्त का डिण्डिमघोष = प्रचार करता रहा। इसी कारण उन दिनों कोई भी वेदज्ञ विद्वान् चाहे वह भारतीय हो या अभारतीय हो, वेद मन्त्रों के विषय में आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थों का, कहीं भी अनुवाद में नही था स्वतंत्र रूप से वेद के अर्थ करने में, नाम तक नहीं लेता था, न उसने लिया।

ऋग्वेद के विषय में सायणाचार्य और यजुर्वेद के विषय में उण्वटाचार्य तथा महीधराचार्य ये ही वेद भाष्यकार प्रमाणिक कोटि में माने जाते थे। इनके अर्थों के कारण भारतवासियों में तथा अन्य देशवासी विद्वानों में भी वेदों के प्रति अनास्था दिनों–दिन बढ़ती चली गई। महीधराचार्य के वीभत्स अर्थों को देख कर तो किसी को यह साहस ही नहीं होता था कि वह वेद के सम्बन्ध में कुछ लिखने के लिये उद्यत हो।

अंग्रेजी राज्य के डिग्री कालेजों में पढ़ने वाले एम०ए० तथा बी०ए० डिग्रीधारी स्नातकों को तो अंग्रेजी अनुवाद के आधार पर वेदार्थ पढ़ाया जाता था और आज भी पढ़ाया जाता है। जिससे भारतीयों में ८० प्रतिशत व्यक्तियों की आस्था वेद पर से उठती जा रही है। आज यदि विचार कर देखा जाय तो २० प्रतिशत संस्कृत पढ़ने वाले छात्र जो यहाँ उत्तर प्रदेश राज्य में पाये जाते हैं, उनमें ५ प्रतिशत केवल व्याकरण पढ़ते हैं, ७ प्रतिशत साहित्य पढ़ते हैं और ३ प्रतिशत ज्योतिष पढ़ते हैं, इन १५ प्रतिशत संस्कृत पढ़ने वालों को तो वेद का दर्शन तक नहीं होता। शेष ५ प्रतिशत वालों में भी ४ प्रतिशत वैद्यक एवं दर्शन प्रभृति में चले जाते हैं, जिनमें वैद्य एवं नैयायिकों को तो वेद का दर्शन भी नहीं होता। अन्य दार्शनिकों में वेदान्ती–मीमांसक एवं सांख्य योगाचार्य वाले कुछ वेदों का दर्शन कर पाते हैं। केवल वेद पढ़ने वाले तो "द्वित्राः पवित्राः परम्" की कोटि

में हैं।

कहते हुए लज्जा होती है कि जिस वेद के अध्ययन के लिये ही ये छः अंग बनाए गये हैं, उस वेद को अंगाध्येतागण छूते तक नहीं। यह क्या संस्कृत पढ़ने की पद्धति है? और इस पर क्या लिखा पढ़ा जाय, अस्तु—आज जो भी संस्कृत परीक्षार्थियों में एक सहस्त्र में दो तीन विद्यार्थी वेद पढ़ते हैं उन में भी बेचारे कितने आचार्य तक पहुँचते हैं? उनको भी कितना वेदार्थ का ज्ञान होता है? बेचारे बड़ा सिर तोड़ परिश्रम करते हैं, तो सायण, डवट, महीधर इन तीन विद्वानों के भाष्य के अन्दर ही तो चक्कर काटा करते हैं, इससे वेदवाणी के विद्वान् पाठक सोच सकते हैं कि आज के परीक्षार्थी वेदज्ञ विद्वानों का वेद के विषय में कितना सीमित ज्ञान होता है।

इसके अतिरिक्त आज इन केवल यज्ञ परक मात्र अर्थ करने वाले भाष्यकारों के भाष्य पढ़ने वालों को वेद के प्रति कितनी अनास्था हो जाती है। इसके दो उदाहरण मुझे ज्ञात हैं। स्वर्गीय बाबू शिप्रसाद जी गुप्त (काशी) वेद पर बड़ी आस्था रखते थे। उन्होंने बड़ी श्रद्धा के साथ सायण भाष्य का किसी विद्वान् से आदि से अन्त तक पाठ कराया और स्वयं भी वहाँ नित्य नियमतः बैठकर सुनते रहे। उसी अवसर पर एक रोज मैं वहाँ गया तो उन्होंने हाथ जोड़ कर हंसते हुए मुझसे कहा कि शास्त्री जी महाराज पहिले ही अच्छा था, कि मैंने वेद का अर्थ नहीं सुना था, जब से मैंने सायणाचार्य का वेदार्थ सुना है तब से तो मेरी वेद पर अनास्था हो गई है। दूसरा उदाहरण हमारे स्वर्गीय गुरु महामहोपाध्याय पूज्यपाद श्री पं० अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि जी महाराज हैं। उन्होंने एक बार दर्शन पढ़ाते समय प्रसंगतः कह दिया था कि वेद के संहिता भाग में क्या रखा है? इन्द्र की स्तुति और वरुण की स्तुति ही तो भरी पड़ी है। हाँ सार तो उपनिषद् की श्रुतियों में है जिस पर वेदव्यास ने विचार किया है। देखा आपने सायणाचार्य और महीधराचार्य के भाष्य के अध्यायन का यही तो फल निकलता है। इसी कारण मैंने कहा है कि :—

सायणाचार्य ने जहाँ वेदार्थ करके जगत् का उपकार किया है वहाँ ही उन्होंने केवल यज्ञ परक मात्र अर्थ करके बड़ा भारी अनिष्ट भी किया है।

अब पाठक विचार कर सकते हैं कि बड़ी भारी गवेषणा के बाद यह पता चला है कि आज से १४ सौ वर्ष पूर्व तथा श्री सायणाचार्य से नौ सौ वर्ष पूर्व आचार्य श्री स्कन्द स्वामी वेद भाष्यकार हो गये हैं जो लिखते हैं :—

"सर्वदर्शनेषु च सर्वो मन्त्रा योजनीयाः। कुतः? स्वयमेव भाष्यकारेण सर्वमन्त्राणां त्रिप्रकारकस्य विषयस्य प्रदर्शनाय अर्थ वाचः पुष्पफलमाह इति यज्ञादीनां पुष्पफलत्वेन प्रतिज्ञानात्।" स्क०निरु०टी० ७/५ भा० ३ पृ० ३६

(अर्थात् सभी मन्त्रों का तीनों प्रक्रियाओं में आध्यात्मिक आधिदैविक आधियाज्ञिक) अर्थ होता है। यही यास्कमुनि का सिद्धान्त है। इत्यादि इतना ही कह कर वह बैठ नहीं गये, अपितु निरुक्तकार यास्कमुनि वेद के मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ मानते हैं। इसके लिये निरुक्त के कितने उदाहरण भी आचार्य स्कन्द स्वामी ने दिये हैं जो यहाँ स्थानाभाव के कारण नहीं देता हूँ। पाठकों को वहाँ ही देखना चाहिये। ऐसी अवस्था में सायणाचार्य

का किया सम्पूर्ण अर्थ यदि ठीक भी मान लिया जाय (जो कि अभी साध्य कोटि में है तो भी वह तीसरा भाग वेदार्थ माना जा सकता है।) इससे द्विगुणित (दो तिहाई) वेदार्थ अभी गुप्त है, यही कहना पड़ेगा, प्रत्येक विद्वान् इस बात को मानेगा। साम्प्रदायिक विचार वालों के पास भी इसका कुछ उत्तर नहीं है। ऐसी दशा में श्री सायणाचार्य के अतिरिक्त अन्य सभी भाष्यकारों के अर्थों से हमें वेदार्थ ज्ञान में सहायता लेनी होगी। चाहे वे कोई भी हों तभी हम सच्चे वेदार्थ के ज्ञाता हो सकते हैं। **इसीलिये पंडितराज स्वामी भगवदाचार्य ने भी अपने सामवेद के भाष्य में स्वामी दयानन्द सरस्वती को आस्तिक शिरोमणि कह कर उनके ज्ञान परक अर्थ की बड़ी प्रशंसा की है** तथा अपने भाष्य में भी श्री सायणाचार्य से भिन्न वेद मन्त्रों का आध्यात्मिक अर्थ बड़ी सुन्दर भाषा में किया है।

हमने जो कहा है कि श्री सायणाचार्य ने उपकार के साथ एक बड़ा भारी अपकार भी किया है वह सप्रमाण है, वह साफ–साफ कहते हैं कि वेदार्थ यज्ञपरक ही होता है, यदि वह भी अन्य आचार्यों के सदृश विविध अर्थ को मानते होते और केवल यज्ञपरक एक अर्थ को करते तो भी ठीक होता। हमारे उनके बीच मतभेद ही क्या था। देखिये–सायणाचार्य अपने काण्व संहिता के भाष्य की भूमिका में लिखते हैं कि–

"तस्मिंश्च वेदे द्वौ काण्डौ कर्मकाण्डो ब्रह्मकाण्डश्च, बृहदारण्यकाख्यो ग्रन्थो ब्रह्मकाण्डस्तद्व यतिरिक्तं शतपथ ब्राह्मणं संहिता चेत्यनयोर्ग्रन्थ्योः कर्मकाण्डत्वम्, तत्रोभयत्राधानाग्निहोत्रदर्शपूर्णमासादिकर्मण एव प्रतिपाद्यत्वात्।"

इस वाक्य से श्री सायणाचार्य ने स्पष्ट ही अपना हार्दिक भाव व्यक्त कर दिया है कि मैं केवल बृहदारण्यक को ज्ञान काण्ड प्रतिपादक मानता हूँ।

तद्व्यतिरिक्त शतपथ ब्राह्मण एवं संहिता भाग को केवल कर्मकाण्ड परक ही मानता हूँ।

ज्ञान काण्ड परक नहीं। इसी पर मेरा कहना है कि सायणाचार्य जी ने जहाँ वेद भाष्य करके जगत् का उपकार किया है, वहाँ ही लोगों के वेदों पर से अनास्था कराने के कारण हो जाने से एक बड़ा भारी अपकार भी किया है। इसका विचार मैं अपने सहधर्मी सनातन धर्मी श्री सायणाचार्य के पक्षपाती विद्वानों पर ही छोड़ता हूँ।

अब मैं अन्य आचार्यों के कुछ उन उद्धरणों को भी पाठकों के सामने रख देना चाहता हूँ, जिनसे वेद के तीनों अर्थों का उन्होंने प्रतिपादन तथा समर्थन किया है।

हरिस्वामी का शतपथ भाष्य हस्तलिखित

(यह सायण से पूर्ववर्ती है)

"मंत्रा आधियाज्ञिक्या इषेत्वादयः त एव देवतापरत्वेनाधिदैविका त एव आत्मनं अधिकृता आध्यात्मिकाः। ईशावास्यादयः आध्यात्मिका एव।"

भट्टभास्कर – (तै० आ० ३/११ पृ० २७४)

आध्यात्मिकपक्षे तु परमात्मने। ..."इन्द्र ईश्वरश्च" आत्मानन्द अस्यवामीय सूक्त भाष्य पृ० ३

"...स्कन्दादिव्याख्याऽधियज्ञविषया एव क्वचित्तु निरुक्तानुसाराधिदैवतविषया एवेति निश्चित्य क्वचिदध्यात्मविषयां शौनकादिरीतिमाश्रित्याध्यात्मं व्याख्यास्यामः।"

और भी उन्हीं का कथन है–

"आधियज्ञं स्कन्दादिभाष्यम्। निरुक्तमधिदैवतम्। इदं तु भाष्यमध्यात्मविषयमिति, न च भिन्नविषयाणां विरोधः।" पृ० ६०

श्री स्कन्दस्वामी का तो वेदार्थ विषयक भाव मैंने ऊपर दिखा ही दिया है और निरुक्तकार का तो विविधार्थ विषयक प्रसिद्ध ही है जैसे–

"सोऽयमेवमधिदैवतमधियज्ञं चोच्छिद्याध्यात्मेवाभिसम्पादयति।"

निरु० १/२० पृ० १४। सबसे भारी प्रमाण तो वेदार्थ के नानात्व का यह है कि निरुक्त कार यास्कमुनि एक–एक पदों का अनेक प्रकार से निर्वचन करते हैं। जिस का अन्य आचार्यों ने भी समर्थन किया है। आत्मानन्द कहते हैं–

(अस्यवामीय सूक्त भाष्य पृ० ६०)

"वेदानामर्थनानात्वप्रतीतावपि सन्मतिः।
मुनिवाक्यानुरोधेन व्याख्यां कुर्वन् न दुष्यति।।"

अर्थात् यद्यपि वेद के अर्थ अनेक प्रकार के प्रतीत होते हैं तो भी निरुक्ताचार्य के किये हुए शब्दार्थ के ही अनुसार तीन प्रकार के अर्थ करना चाहिये। निरुक्त टीकाकार दुर्गाचार्य तो पद–पद पर त्रिविध अर्थों का प्रतिपादन करते है। देखिये–

"आध्यात्माधिदैवाधियज्ञाभिधायिनां
मन्त्राणामर्थाः परिज्ञायन्ते।" निरुक्त १/१८ पृ० ८६ दुर्गा टीका।

"तत्रैवं सीत प्रतिविनियोगमस्यान्येनार्थेन भवितण्यम्। त एते वक्तु रभिप्रायवशादन्यार्थत्वमपि भजन्ते मन्त्राः। नह्येते तेष्वर्थस्येयत्तावधारणमस्ति, महार्थो ह्येते दुष्परिज्ञानाश्च। यथाश्वारोहवैशिष्ट्यादश्वः साधुः साधुतरश्च वहति। एवमेते वक्तृवैशिष्ट्यात् साधून् साधुतरांश्चार्थान् स्रवन्ति। तत्रैवं सति लक्षणोद्देश्यमात्रमेवेतस्मिञ्छास्त्रे निर्वचनमेकैकस्य क्रियते क्वचिच्चाध्यात्माधिदैवाधि यज्ञोपप्रदर्शनार्थम्। तस्मादेतेषु यावन्तोऽर्था उपपद्येरन् अधिदैवाध्यात्माधियज्ञाश्रयाः, सर्व एव ते योज्याः, नात्रापराधोऽस्ति।"

निरुक्त २/८ पृष्ठ १२६ दुर्गा टीका।

अर्थ स्पष्ट है अतः पाठक स्वयं समझ सकते हैं। संक्षेप में इन उद्धरणों से यह सिद्ध है कि हमारे प्राचीन वेदार्थकर्त्ता विद्वान् वेद मन्त्रों के तीन प्रकार के अर्थ (आध्यात्मिक, आधियाज्ञिक और आधिदैविक) निर्विवाद मानते हैं। ऐसी स्थिति में श्री सायणाचार्य का यह कथन कहाँ तक संगत हो सकता है कि–

"तद्व्यतिरिक्तं शतपथब्राह्मणं संहिता चेत्यन योर्ग्रन्थयोः कर्म काण्डत्वम्" इत्यादि। इस पर पाठक स्वयं विचार करें और श्री सायणाचार्य के समर्थक विद्वान् समझ लें कि यहाँ पर श्री सायणाचार्य के वाक्य के उत्तरार्द्ध "तत्रोभयत्राधानाग्नि होत्रदर्शपूर्णमासादिकर्मण एव प्रतिपाद्यत्वात्।" में 'एव' दशा से क्या उनका भाव व्यक्त होता है? क्या वे वेद के त्रिविध अर्थ के पक्षपाती हैं? ऐसी दशा में उनके पक्षपाती विद्वानों

का यह कहना कि सायण ने "अन्य अर्थ का निषेध तो नहीं किया है", यह उनका वेदार्थ सम्बन्धी अज्ञान नहीं तो और क्या कहा जा सकता है? इससे तो स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन लोगों ने श्री सायणाचार्य की इस काण्ड संहिता की भाष्य भूमिका को देखा ही नहीं है। यदि देखा है तो क्यों, अप्रलाप करते हैं?

जो लोग 'विष्णु' शब्द का भगवान अर्थ नहीं हो सकता तथा 'अग्नि' शब्द का आधिभौतिक अग्नि के अतिरिक्त दूसरा अर्थ नहीं है, ऐसी धारणा रखते हैं, उनको ऋग्वेद प्रथम सूक्त का मध्वस्वामी कृत भाष्य अवश्य देखना चाहिये जिसमें उन्होंने 'अग्नि', 'वायु' प्रभृति शब्दों का अर्थ भगवान परक ही किया है और उन्होंने सर्वानुक्रमणी से भिन्न देवता मान कर मन्त्रों के अर्थ किये हैं। आत्मानन्द कृत अस्यवामीय सूक्त का भाष्य भी परमेश्वर परक अर्थ वाला है। तथा अभी हाल में सामवेद का भाष्य पण्डित राम स्वामी भगवदाचार्य ने ईश्वर परक अर्थ वाला ही किया है, जो बड़ी मञ्जुल भाषा में है। तथा अभी थोड़े दिन हुए हैं, मन्त्रार्थ चन्द्रोदय के कर्त्ता मैथिली विद्वान् श्री पं० दामोदर ओझा शास्त्री ने भी वेद मन्त्रों का अर्थ ईश्वर परक किया है। स्वर्गीय पं० मधुसूदन ओझा जी को, जो वैदिक, संस्कृत साहित्य के प्रगाढ़ पण्डित थे, कौन विद्वान् नहीं जानता है? उनका यत्र तत्र वेदों पर आध्यात्मिक भाष्य संस्कृत साहित्य में एक अद्भुत आविष्कार है। मेरा तो संस्कृत साहित्य के ज्ञाता विद्वानों से साग्रह अनुरोध है कि वे स्व० मधुसूदन ओझा जी के वैदिक साहित्य पर किये गये आध्यात्मिक गवेषणात्मक भाष्यों तथा अनुसंधानों का गम्भीर अध्ययन करें। उनके अनुसंधान एवं भाष्य वर्तमान युग के अनुरूप बड़े ही उपयोगी एवं उपादेय वस्तु हैं। उन्होंने महीधर के वीभत्स अर्थों का परित्याग कर उन मन्त्रों के अच्छे अर्थ किये हैं।

क्या यहाँ मैं अपने सनातन धर्मी होने के कारण केवल सायणाचार्य का पक्षपाती होकर इन वैदिक विद्वानों को सनातनधर्म से बहिष्कृत कर दूँ? तब तो मेरा सनातन धर्म भी लीगी मुसलमानों की तरह संकुचित एवं एकदेशी कहलाने लगेगा। लीगी मुसलमानों ही ने "इस्लाम खतरे में है" इसका नारा लगाकर भारत को टुकड़ों में बाँट दिया है और आज भी "इस्लाम खतरे में है' का नारा लगा कर 'जेहाद' का शोर मचा रहे हैं। वैसे ही हमारे सनातनी विद्वान् भी कहा करते हैं कि—'यह अर्थ तो सायण ने नहीं किये हैं। यह तो सर्वानुक्रमणी के विरुद्ध है। इसका विनियोग इस अर्थ में नहीं आया है।' इत्यादि।

अब इस वैज्ञानिक युक्तिवाद के युग में रूढ़िवादों से काम चलने का नहीं। अब तो युक्ति और विद्वत्ता का उत्तर युक्ति और विद्वत्ता से ही देना होगा। वेदों में तो कहीं भी नहीं है कि वेद का अर्थ यज्ञ परक ही होता है। हाँ! 'यज्ञ' भले वेदों के ही द्वारा होता है, यह ठीक भी है। देखिये— स्वयं 'यज्ञ' शब्द ही परमेश्वर अर्थ का प्रतिपादक है—

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दाँसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।। यजुः ३१/७

यह पुरुष सूक्त है जो चारों वेदों में आता है। अर्थ स्पष्ट है कि उसी परमेश्वर

श्री वीरेन्द्र गुप्तः

से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद आविर्भूत हुए हैं।

अब रही देवतावाद की बात सो तो यजुः सर्वानुक्रमणी में 'इषे त्वोर्ज्जेत्वा' इस मन्त्र का 'शाखा' देवता लिखा है। और शाखा छेदन में यह मन्त्र विनियुक्त भी किया है। अर्थात् इस मन्त्र का शाखा छेदन में (काटने में) विनियोग होता है। तो इसका 'शाखा' देवता कैसे हो सकता है? क्योंकि प्राचीन सिद्धान्त तो यह है कि "यस्यै हविर्दीयते सा देवता" जिस को छवि दी जाती उसे ही देवता माना जाता है। यहाँ 'शाखा' को तो छवि नहीं दी जाती, तो फिर 'शाखा' देवता कैसे हो सकता है? जरा सोचने की बात है।

यह कहने का मेरा इतना ही तात्पर्य है कि आँखें मूँदकर श्री सायणाचार्य के ऊपर भरोसा करने वाले अर्थात् वेद का केवल यज्ञ परक अर्थ मानने वाले महाशयगण 'संतः परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः।' इस कालिदासीय पद्य के अंतिम पाद के उदाहरण के अतिरिक्त क्या होंगे? पाठकों ही पर छोड़ता हूँ।

अंत में मुझे इतना ही कहना है कि मेरे इस संक्षिप्त विवेचन से पाठक यह तो समझ ही जायेंगे कि वेद का अर्थ यज्ञ परक ही नहीं है। किन्तु वेद का एक अर्थ यज्ञ परक भी है। परन्तु आज स्वतंत्र भारत में संसार को वेद का आध्यात्मिक, आधिदैविक (वैज्ञानिक) अर्थ की अधिक आवश्यकता है। यज्ञ करते हुए भी वेद के आध्यात्मिक तथा आधिदैविक (वैज्ञानिक) अर्थों द्वारा जगत् के सामने वेदों की महत्ता का प्रकाशन कर केवल यज्ञ परक अर्थ के कारण लोगों में फैली हुई वेदार्थ के प्रति भ्रान्ति को मिटाना तथा आधिभौतिकवाद के ही गर्त में रहकर मरने पचने वाले पश्चिम देशों की आँखों को आध्यात्मिक सदुपदेश की ज्ञानशलाका से अंजित कर अपने भारतीय आर्यों की जगद्गुरुता को पुनः प्रख्यापित करना आज स्वतंत्र भारत का पहला कर्तव्य होना चाहिये।

आध्यात्मिक अर्थ करने वालों की दृष्टि में 'शिव', 'विष्णु', 'अग्नि' आदि उस परमेश्वर (ब्रह्म) की भिन्न भिन्न शक्तियों के नाम ही तो हैं। इसीलिये जब हम लोग वेद के आध्यात्मिक अर्थ करने की ओर दृष्टि देते हैं तो सर्व प्रथम स्वामी दयानन्द सरस्वती का ही स्मरण हो आता है। जिन्होंने वेद का ज्ञानपरक अर्थ करके वेद की पूर्ण महत्ता को पुनः इस संसार में प्रख्यापित किया है।

दर्शन केसरी
सभापति पंडित सभा, काशी

वैदिक प्रार्थना की उत्कृष्टता

भवानी लाल भारतीय

वैदिक साहित्य में स्तुति, प्रार्थना और उपासना ये तीनों शब्द भिन्न–भिन्न अर्थों में आये हैं। किसी व्यक्ति, वस्तु या पदार्थ के वास्तविक गुणों का कथन स्तुति कहलाती है जब कि अपने से श्रेष्ठ, उत्कृष्ट और महान से किसी वस्तु, पदार्थ या अन्य गुणादि की याचना को प्रार्थना कहते हैं। परमात्मा को सदा निकट मान कर उसकी भक्ति करना उपासना है। वेदों में प्रार्थना के अनेक मन्त्र मिलते हैं। प्रायः यह समझा जाता है कि वैदिक काल के ऋषियों को एक परमात्मा का ज्ञान नहीं था और वे सूर्य, चन्द्र, जल, पृथ्वी, द्यौ, अन्तरिक्ष आदि जड़ पदार्थों की पूजा करते थे। यह धारणा अत्यन्त भ्रामक है। वस्तुतः वेदों में सर्वत्र एक ही परमेश्वर का स्तवन, पूजन तथा अर्चन उपदिष्ट किया गया है। ऋग्वेद के उस प्रसिद्ध मन्त्र में उस तथ्य को स्पष्ट कर दिया गया है कि सत्य ईश्वर तो एक ही है, उसे ही विद्वान् लोग भिन्न–भिन्न नामों से पुकारते हैं–एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।

वेदों में जिन मन्त्रों में परमात्मा से प्रार्थना की गई है वह मनुष्य के शरीर या आत्मा आदि की पवित्रता सभी प्रकार के ऐश्वर्य, सुख और अन्ततः उसे मोक्ष मार्गी बनाने के लिये ही की गई है। यजुर्वेद के ४० वें अध्याय में अग्नि नामधारी तेजस्वी तथा मार्गदर्शक परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह उपासक को सुपथ गामी बनाये, भौतिक तथा पारलौकिक ऐश्वर्य प्राप्त कराये, उसके कुटिलता रूपी पाप कर्मों को दूर करे।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम।।

परमात्मा यह कहने में समर्थ भी है क्योंकि वह मनुष्य के सभी शुभाशुभ कर्मों का ज्ञान रखता है।

वैदिक चिन्तन में शरीर, बुद्धि, मन तथा आत्मा सभी के सन्तुलित विकास का प्रावधान है। यहाँ शरीर को धर्म साधन का माध्यम कहा गया है।

शरीरमाद्यं खलुधर्मसाधनम्

इसलिये वैदिक प्रार्थना में शरीर को तेजोमय, बलवान, ओजस्वी, मन्युयुक्त तथा सहनशीलता से परिपूर्ण बनाने का अनुरोध किया गया है–

तेजाऽसि तेजोमयि धेहि, वीर्यमसि वीर्यं मयि धेहि।
बलमसिबलं मयि धेहि, ओजोऽस्योजो मयि धेहि।
मन्युरसि मन्युं मयि धेहि, सहोऽसि सहो मयि धेहि।

यजु० १९/९

वेद की इन उदात्त तथा तेजस्वी प्रार्थनाओं के विपरीत मध्यकाल में शरीर की पूर्णतयः उपेक्षा करते हुए उसे पाप युक्त तथा पाप से ही उत्पन्न कहा गया।

पापोऽहम् पाप कर्माऽहम् पापात्मा पाप संभवः।

जैसे हीनता वर्धक तथा दीनता सूचक वाक्यों से की गई प्रार्थना हमारे पतनशील चिन्तन की ही परिचायक है।

वैदिक प्रार्थना में परमात्मा से मेधा, बुद्धि, प्रज्ञा तथा विवेक की ही कामना की गई है। यजुर्वेद में कहा गया है कि जिस मेधा नामक विचारशील बुद्धि की उपासना देवता तथा हमारे पूर्वज पितृगण करते हैं, हे अग्नि तुल्य तेजस्वी परमात्मा आप हमें भी वैसी ही उत्कृष्ट मेधा बुद्धि प्रदान करें–

यां मेधां देवगणा पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधायग्रे मेधाविनं कुरु।।

यजु० ३२/१४

अगले मन्त्र में इसी मेधा बुद्धि की याचना वरुण, अग्नि, प्रजापति, इन्द्र, वायु तथा धाता नामों वाले परमात्मा से की गई है।

वैदिक तत्वज्ञान का सर्वश्रेष्ठ निचोड़ हमें उस प्रसिद्ध गायत्री मन्त्र में मिलता है जिसका देवता सविता है, अतः यह मन्त्र सावित्री मन्त्र के नाम से भी जाना जाता है। उपनयन संस्कार के समय आचार्य इस मन्त्र को खण्डशः अपने शिष्य को सिखाता है तथा उसके अर्थ भी बताता है। पुराकाल में महर्षि विश्वामित्र ने इस मन्त्र के अर्थ का विचार किया था तथा उसको समस्त भूमण्डल पर प्रचारित किया, इसलिये इस मन्त्र का दृष्टा ऋषि विश्वामित्र को ही माना जाता है। यजुर्वेद में यह मन्त्र भू–भुवः और स्वः इन महा व्याहृतियों के सहित आया है (३६/३) तो अन्यत्र (३०/२) इन व्याहृतियों के बिना भी आया है। चौबीस अक्षरों वाले गायत्री छन्द में आया यह मन्त्र संसार के रचयिता, सर्वोत्कृष्ट सविता देव से प्रार्थना करते हुए उनके उस उत्कृष्ट तेज (भर्ग)? की याचना करता है जो मनुष्यों को सद्मार्ग की ओर चलने की प्रेरणा करे तथा उसकी बुद्धियों को सत्कर्मों में प्रेरित करे।

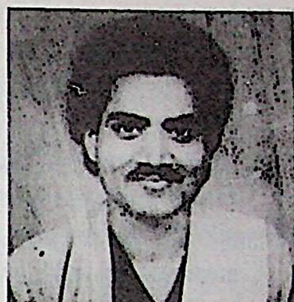
इसी प्रकार २५ वें अध्याय के १५ वें मन्त्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह हमें देवताओं की उस भद्र बुद्धि को प्रदान करे जिससे हम विद्वान् देवों की मित्रता को प्राप्त करें तथा दीर्घायु प्राप्त कर स्वजीवन को सफल बनायें। वैदिक प्रार्थना में सर्वोत्कृष्ट यजुर्वेद (३०/३) की निम्न प्रार्थना है जिस में भक्त सविता देव से निवेदन करता है कि वह उसके समस्त दुर्गुणों, दुर्व्यसनों तथा दुःखों को दूर कर दे तथा जो कल्याणकारी गुण, कर्म, स्वभाव तथा पदार्थ हैं वे उसे प्राप्त करायें।

विश्वानिदेव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यद् भद्रं तन्न आसुवा।।

व्यक्ति की ही भाँति वेदों में राष्ट्रीय प्रार्थनाएं भी उपलब्ध होती हैं। यजुर्वेद २२/२२ में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह हमारे राष्ट्र में ब्रह्म वर्चस्वी ब्राह्मण, शूरवीर क्षत्रिय, युद्ध में विजय प्राप्त करने वाले धनुर्धारी महारथी पैदा करें, दुग्ध देने वाली गायें, बलवान और आशुवाही घोड़े, पुष्ट बैल भी इस देश में हों, सती नारियाँ तथा माता–पिता के आज्ञाकारी पुत्रों की कामना करने के अनन्तर, यह भी प्रार्थना की गई है कि परमात्मा

क्रमशः पृष्ठ १६५

वैदिक यज्ञ स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विज्ञान



पं० व्यासनन्दन शास्त्री
प्राध्यापक

वैदिक यज्ञ द्वारा उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति संभव है। प्राचीन काल में हमारे ऋषि महर्षि इसके द्वारा सफल चिकित्सा भी कर लिया करते थे। यही कारण है कि उस समय रोग फैलने पर बड़े–बड़े यज्ञ किये जाते थे और जनता उनसे आरोग्य लाभ करती थी। इन्हें भैषज्य यज्ञ कहते थे। गोपथ ब्राह्मण में वर्णित है कि जो चातुर्मास्य यज्ञ है, वे भैषज्य यज्ञ कहलाते हैं, क्योंकि ये रोगों को दूर करने के लिये होते हैं। ये ऋतु–सन्धियों में प्रयुक्त होते हैं, चूँकि इन्हीं में रोग फैलते हैं।

भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि।
तस्माद ऋतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते।
ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते।।

गोपथ ब्राह्मण उ० १/१६

ऐसे भैषज्य यज्ञ में जुकाम, बुखार, दस्त, शरीर पीड़ा इत्यादि मौसमी, हैजा, चेचक, प्लेग, इन्फ्लुएंजा आदि प्रचलित बीमारियों का सामूहिक रीति से निवारण किया जाता है। इस प्रकार यज्ञ भेषज कृत है जिसमें अथर्ववेद का पुरोहित ब्रह्मा भेषज गुणों को जानने वाला होता है। ऐसे यज्ञ में 'प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, वयानाय स्वाहा' (यजु० २२/२३–२४) आदि बोल–बोल कर आहुतियाँ देने का विधान है। इससे सिद्ध है कि औषधि विशेषज्ञ ब्रह्मा ऋतु–सन्धियों में उत्पन्न तत्तद् रोगनिवारणार्थ तत्तद् गुण–विशिष्ट औषधियों को चयन करे जिनसे प्राणापानादि वायु की यथावत् सिद्धि सम्पादित कर मनुष्य स्वास्थ्य लाभ करे। गिलोय (सोमलता), गुग्गुल, चिरायता आदि रोगनाशक औषधियाँ अग्नि द्वारा छिन्न–भिन्न हो सहस्त्र गुणी शक्ति पाकर जलवायु को शुद्ध करती हैं और यह औषधीय प्रभाव वातावरण को प्रदूषण से मुक्त करके लोगों के स्वास्थ्य लाभ में सहायक होते हैं।

यज्ञ से रोग निवारण :– यज्ञ द्वारा रोग–निवारण का उल्लेख चरक संहिता, बृहन्निघण्टु आदि आयुर्वेद के महत्वपूर्ण ग्रन्थों में अनेकत्र मिलता है। होमयज्ञ से ज्ञात् अज्ञात् तथा दुःसाध्य सभी रोगों का निवारण हो जाता है। कुछ रोग ऐसे होते हैं जिनका निदान नहीं हो पाता अथवा जिनके उपचार के लिये उपयुक्त औषधि उपलब्ध नहीं हो पाती। ऐसे सभी रोगों की चिकित्सा हेतु वेद में यज्ञ का विधान है। यज्ञ द्वारा यहाँ वेद के सामान्य रुप से चिकित्सा का उपदेश दिया है, वहाँ विशेष द्रव्यों से रोग–विशेषों की चिकित्सा का भी संकेत किया है। जैसे–जैसे गुग्गुल औषधि की उत्तम गन्ध प्राप्त

होती है, उसे राज्यक्ष्मा (तपेदिक) तथा स्पृश्य = संक्रामक रोग नहीं होते।

न तं यक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथो अश्नुते।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते।।
अथर्व १९/३८/१

यज्ञ द्वारा रोग–निवारण की प्रक्रियाएँ

प्रक्रिया १–मन्त्र पाठ पूर्वक जब यज्ञ प्रारम्भ होता है तब एक–एक मन्त्र के साथ स्वाहाकार पूर्वक अग्नि में हविष् पड़ती है। मन्त्र का एक–एक शब्द रोगी के हृदय पर असर करता है। थोड़े–थोड़े अन्तर के पश्चात् प्रत्येक स्वाहाकार के साथ अग्नि से हविर्धूम उठता है और श्वासवायु के साथ रोगी के अन्तस्तल को स्पर्श करता हुआ रोग को दूर भगाता है।

प्रक्रिया २–यज्ञाग्नि में जब घृत अन्न तथा रोग नाशक औषधियों की आहुति दी जाती है तब उनकी रोग निवारक गन्ध वायुमण्डल में फैल जाती है। वह वायु नासिका मार्ग से सांस द्वारा प्रवेश करके वक्ष स्थल में फुफ्फुसों (फेफड़ों) में प्रवेश करती है तो फेफड़ों के अन्दर जो छोटे–छोटे वायु कोश विद्यमान हैं, उनमें वह व्याप्त हो जाती है। उसके प्रवेश से फुफ्फुसों के वायुकोशों के अन्दर का अशुद्ध भाग शुद्ध होने लगता है। इस प्रकार यज्ञ के परिवेश में बार–बार दीर्घ श्वास प्रश्वास से शरीरस्थ वायुकोश शुद्ध हो जाते हैं। यज्ञ की सौरभ शुद्धि के साथ पुष्टि भी करती है तथा उसमें प्रविष्ट रोग–कीटाणुओं का नाश भी करती है जिससे आरोग्य की प्राप्ति होती है।

प्रक्रिया ३–इसी प्रकार जब रोग–निवारक गन्धयुक्त वायु श्वास द्वारा फेफड़ों में भरते हैं, वहाँ उस वायु का रक्त से सीधा सम्पर्क होता है। वह वायु अपने में विद्यमान रोग–निवारक परमाणुओं को रक्त में पहुँचा देती है। इससे रक्त में जो रोग कृमि होते हैं, वे मर जाते हैं। रक्त के अनेक दोष वायु में आ जाते हैं और वायु प्रश्वास द्वारा बाहर निकलती है तब उसके साथ वे दोष भी शरीर से बाहर निकल जाते हैं। इस प्रकार यज्ञ द्वारा परिष्कृत वायु में बार–बार श्वास लेने से शनैः–शनैः रोगी स्वस्थ हो जाता है।

इसी रोग–निवारण की याज्ञिक क्रिया को वेद में दर्शाया गया है कि श्वास–निःश्वास रूपी दो वायु चलती हैं–पहली, बाहर से फेफड़ों के रक्त समुद्र तक और दूसरी, अन्दर से बाहर की ओर। इनमें से पहली, हे रोगी! तेरे लिये बल को प्राप्त कराये, दूसरी रक्त में जो दोष है उसे बाहर ले जाये। हे वायु! तू औषधि को अपने साथ ला, रक्त में जो मल है, उसे तू बाहर निकाल दे। तू निश्चय ही सब रोगों की दवा है। तू स्वास्थ्यवर्धक दिव्य पदार्थों का दूत होकर विचरता है। ऐसी अद्भुत रोग निवारण प्रक्रिया का वर्णन वेद में इस प्रकार है।

द्वाविमौ वातौ वात आ सिन्धोरा परावतः।
दक्षं ते अन्य आवातु व्य१न्यो वातु यद् रपः।।
आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः।
त्वं हि विश्वभेषज देवानां दूत ईयसे।।

ऋग् १०/१३७/२–३, अथर्व ४/१३/२–३

इस तरह और भी वायु औषध को हमारे अन्दर ले जाये, जो हमारे हृदय के लिये रोगशामक और सुखकारक हो। हमारी आयु को बढ़ाये। हे वायु! तू हमारा पिता है, भाई है और हमारा मित्र है। तू हमें जीवन प्रदान कर। हे वायु! जो तेरे घर में अर्थात् तेरे अन्दर अमृत का भण्डार निहित है उसमें से कुछ अंश सुखी जीवन के लिये हमें भी प्रदान कर।

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो इदे। प्रण आयुंषि तारिषत्।
उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा। स नो जीवातवे कृधि।।
यददो वात ते गृहे ३ मृतस्य निधिर्हितः। ततो नो देहि जीवसे।।

ऋग् १०/१८६/१–३

वस्तुतः यज्ञीय वातावरण की शान्ति व पवित्रता रोग–कल्मष दूर करने के लिये सोने में सुगन्ध का कार्य करती है।

रोगोत्पादक कृमियों और उनका विनाश

रोगोत्पादक कृमियों का वर्णन अथर्ववेद १/२/३१, ४/३७, ५/२३, २६ में मिलता है। वहाँ इन्हें यातु धान, क्रव्याद, पिशाच, रक्ष इत्यादि नामों से पुकारा गया है। ये श्वास वायु, भोजन, जल, आदि द्वारा मनुष्य के शरीर में प्रविष्ट होकर या मनुष्य को काटकर उसके शरीर में रोग उत्पन्न करके उसे यातना पहुंचाते हैं, अतः 'यातुधान' हैं। मांस को खाने के कारण ये 'क्रव्याद्' या 'पिशाच' कहलाते हैं। इनसे मनुष्य को अपनी रक्षा करना आवश्यक हो जाता है, इसलिये ये 'रक्षः' या 'राक्षस' हैं। यज्ञ द्वारा अग्नि में कृमि–विनाषक औषधियों की आहुति देकर इन रोग–कृमियों को विनष्ट कर रोगों से बचा जा सकतो है। अथर्ववेद १/८/१ मन्त्र में कहा गया है कि अग्नि में डाली हुई आहुति (हविष्) रोग कृमियों को उसी प्रकार दूर बहा ले जाती है, जिस प्रकार नदी पानी के फेनों को। जो स्त्री या पुरुष इस हविष् को होम करे, वह यज्ञ में मन्त्रोच्चारण द्वारा अग्नि का स्तवन भी करे।

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवावहत्।
य इदं स्त्री पुमानकरिह स स्तुवतां जनः।।

अथर्व १/८/१

इस विषय पर आगे के मन्त्रों में और भी अच्छा प्रकाश पड़ता है कि, हे प्रबुद्धतम यज्ञाग्नि! जिस मांस भक्षक कृमि ने इस मनुष्य को अपना ग्रास बनाया है, उसे विनष्ट कर दे, उसकी आँख फोड़ दे, हृदय को बींध दे, जीभ को काट दे, दाँतों को तोड़ दे। कच्चे पूर्णतः पके अधपके या तले हुए भोजन में प्रविष्ट होकर जिस मांस–भक्षक रोग–कृमि ने मुझे हानि पहुँचाई है, वे सब रोग–कृमि, हे यज्ञाग्ने! तेरे द्वारा सन्तति सहित विनष्ट हो जायें जिससे यह मेरी देह निरोग हो, दूध में, मट्ठे में, बिना खेती के पैदा हुए जंगली धान में कृषि जन्य धान में, पानी में, बिस्तर पर सोते हुए दिन या रात में, जिन रोग कृमियों ने मुझे हानि पहुँचायी है, वे स्वयं तथा अन्य मांस भक्षक कृमियाँ सन्तति सहित यज्ञाग्नि द्वारा विनष्ट कर दिये जायें, जिनसे यह मेरी देह निरोग हो जाये।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः

आमे सुपक्वे शबले विपक्वे यो मा पिशाचो अशने ददम्भ।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदो यमस्तु।।
क्षीरे मा मन्थे यतमो ददम्भ अकृष्टपच्ये अशने धान्येइयः।
अपां मा पाने यतमो ददम्भ क्रव्याद्यातूनां शयने शयानम्।।
दिवो मा नक्तं यतमो ददम्भ क्रव्याद्यातूनां शयने शयानम्।
तदात्मना प्रजया पिशाचा वि यातयन्तामगदोऽयमस्तु।।

अथर्व० ५/२६/६–६

यज्ञाग्नि द्वारा ज्वर तथा इसके सहकारी कास, शिरः पीड़ा, अंगों का टूटना आदि भी दूर हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त चेचक, उन्माद, हृदय, गर्भदोष, गण्डमाला तथा तपेदिक प्रभृति रोगों की सफल चिकित्सा सम्भव है। विस्तारभय से इनमें से नमूने के तौर पर हम यहाँ यज्ञ द्वारा तपेदिक चिकित्सा का विस्तृत वर्णन कर रहे हैं।

तपेदिक को क्षय रोग या राज्यक्ष्मा भी कहते हैं। इसका कीड़ा इतना सूक्ष्म है कि मध्यम कद वाले कीड़े एक पंक्ति में रखे जायें तो पच्चीस हजार कीड़े एक इन्च जगह में आ जायेंगे। अथवा एक खस–खस के दाने पर बीस अरब कीड़े ठहर सकते हैं। कहना न होगा कि इसकी यज्ञ से बढ़कर शीघ्र प्रभावकारी दूसरी कोई श्रेष्ठ चिकित्सा नहीं हो सकती, क्योंकि यज्ञीय गैस श्वास तथा रोमकूपों में जाकर अन्य औषधियों की अपेक्षा अधिक प्रभाव उत्पन्न करेगी। अथर्ववेद ७/७६/३ में कहा गया है कि जो तपेदिक रोग पसलियों को तोड़ डालता है, फेफड़ों में जाकर बैठ जाता है, पृष्ठांश के ऊपरी भाग में स्थिर हो जाता है, उस अति स्त्री–प्रसंग से उत्पन्न होने वाले सब तपेदिक रोग को हे यज्ञीय हविष् तू शरीर से बाहर निकाल दे।

यः कीकसाः प्रशृणाति तलीद्यमवतिष्ठति।
निरास्तं सर्वं जायान्यं यः कश्च ककुदि श्रितः।।

अथर्व० ७/७६/३

तपेदिक रोग पक्षी की तरह उड़ता हुआ फैलता है। वह एक से दूसरे पुरुष में प्रविष्ट हो जाता है। जिसने जड़ नहीं जमाई है और जिसने खूब जड़ जमा ली है, इन दोनों प्रकार के तपेदिक की औषधि यज्ञीय हविष् है।

पक्षी जायान्यः पतति स आ विशति पूरुषम्।
तदक्षितस्य भेषजमुभयोः सुक्षतस्य च।।

अथर्व० ७/७६/४

अथर्ववेद में आगे बड़े मनोरंजक ढंग से कहा गया है कि हे तपेदिक रोग! तेरे उत्पादक कारणों को हम निश्चय ही जानते हैं, जिनसे तू पैदा होता है। जिसके घर में हम हवन करते हैं, उस घर में तू क्या किसी को कैसे मार सकता है? देखिये–

विद्म वै ते जायान्य जानं यतो जायान्य जायसे।
कथं ह तत्र त्वं हनो यस्य कृण्मो हविर्गृहे।।

अथर्व० ७/७६/५

तपेदिक चिकित्सा के सम्बन्ध में अथर्ववेद और ऋग्वेद के कुछ अन्य मन्त्र और

भी अच्छा प्रकाश डालते हैं। यज्ञ के द्वारा चिकित्सा करने वाला वैद्य कहता है कि हे रोगी! यज्ञीय हविष् द्वारा सुखपूर्वक जीने के लिये वह तुझे अज्ञात रोग से छुड़ा देगा जिससे कि तू चिरकाल तक जीवित रह।

मुञ्चामि त्वा हविषा जीवनाय कमज्ञातयक्ष्मादुत राजयक्ष्मात्।
ग्राहिर्जग्राह यद्येतदेनं तस्या इन्द्राग्नि प्र मुमुक्तमेनम्।।

अथर्व० ३/११/१

इन मन्त्रों से स्पष्ट है कि तपेदिक रोग चाहे आरम्भिक अवस्था में, चाहे बहुत बढ़ गया हो, यहाँ तक कि उसके कारण रोगी मरणासन्न हो गया हो, तो भी यज्ञ चिकित्सा द्वारा रोगी स्वस्थ होकर सौ वर्ष तक जीने योग्य हो सकता है।

डा० फुन्दन लाल, एम०डी०, जो एक एलोपैथिक डाक्टर थे, सब–कुछ छोड़कर अन्त में क्षयरोग (तपेदिक) की चिकित्सा करने में जुट गये थे। उन्होंने जबलपुर में एक 'टी०वी० सैनिटोरियम' भी खोला था। यज्ञीय गैस के सम्बन्ध में कुछ परीक्षण करते हुए उन्होंने लिखा है कि जो लोग नित्य प्रति हवन करते हैं उनके शरीर में इस प्रकार के रोग उत्पन्न ही नहीं हो सकते, जिनमें किसी भीतरी स्थान में पीव उत्पन्न हो और यदि कहीं उत्पन्न हो भी तो नित्य प्रति हवन गैस पहुँचाने से वह तुरन्त सूख जायेगा और क्षय अच्छा हो जायेगा। इस सम्माननीय अन्वेषक चिकित्सक ने क्षय रोग चिकित्सा हेतु निम्नांकित क्षय रोग नाशक सामग्री बतायी है।

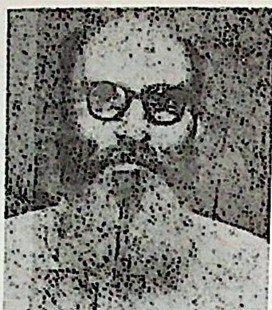
मण्डूकपर्णी, ब्राह्मी, इन्द्रायण की जड़, शतावरी, अश्वगंध, विधारा, शालपर्णी, मकोय, अडूसा, गुलाब फूल, तगर, रासना, वंशलोचन, क्षीर काकोली, जटामांसी, जयफल, कुंडरी, गोखरु, पिस्ता, बादाम, मुनक्का, लौंग, हरड़ बड़ी गुठली सहित, आंवला, जीवन्ती, पुनर्नवा, नगेन्द्र वामड़ी, चीड़ का बुरादा, खूबकलां, समभाग गिलोय, गुग्गुल, चारभाग, केशर, शहद, कपूर, देशी शक्कर, दस भाग घी, घी की मात्रा पर्याप्त होनी चाहिये जिससे सामग्री पूर्ण रूप से मिल सके। शुष्क रहने पर खाँसी हो जाने का भय है। यह ध्यातव्य है कि किसी चिकित्सा हेतु हवन–यज्ञ में व्यवहार की जाने वाली हवन सामग्री में वे औषधियुक्त जड़ी–बूटियाँ ही प्रयुक्त होती हैं, जिनकी रोग–विशेष के उपचार की दृष्टि से उपयोगिता है।

इस प्रकार भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही चली आ रही यज्ञ–परम्परा से अनेक लाभ हैं। यज्ञ में व्यवहृत औषधियों, जड़ी–बूटियों का यज्ञ–माध्यम से वाष्पीकरण होता है। वाष्पीकृत तत्व वायुमण्डल में फैलकर सूक्ष्मीकरण प्रक्रिया से अधिक प्रभावशाली हो शरीर के बहिरंग एवम् अन्तरंग अवयवों तक पहुँचकर रोगों के निदान में सहायक सिद्ध होते हैं। वस्तुतः यज्ञ–प्रक्रिया एक विज्ञान–सम्मत प्रक्रिया है तथा रोग–निवारण में इस पद्धति की अपनी अहम् भूमिका है।

संस्कृत विभाग, वि०वि
भागलपुर, विहार

श्री वीरेन्द्र गुप्तः

योग विचार


मंगलमुनि वानप्रस्थी

योग समस्त विश्व के कल्याण का आधार है। योग का प्रचार–प्रसार करना–कराना और जीवन में क्रियात्मक रुप से स्वाभाविक दशा के समान हो जाना, प्रत्येक मनुष्य का मुख्य् कर्तव्य है। अपने जीवन में प्रत्येक समय योग–मय जीवन बनाना ही जीवनोद्देश्य होना चाहिये।

योग–मानव जीवन के कल्याण का मुख्य मार्ग है। योग साधना के बिना अन्य सभी साधन पूर्णानन्द की प्राप्ति कराने में समर्थ नहीं हैं। प्रत्येक प्राणी समस्त दुःखों से छूट कर पूर्ण स्थायी दुःख रहित आनन्द को प्राप्त करना चाहता हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति योग–साधन को जीवन में ढाले बिना सम्भव नहीं है। इसलिये योग साधन के वास्तविक स्वरूप को जानना और जनाना और यथा शक्ति धीरे–धीरे उस पर चलना–चलाना जीवन का मुख्योद्देश्य होना चाहिये। योग स्वरूप को न जानने और उस पर न चलने के कारण मनुष्य–जाति (मानव) प्रायः दुःख संतप्त देखी जाती है।

इस वर्तमान काल में योग के नाम पर बहुत कुछ प्रयास किये जा रहे हैं। परन्तु योग के स्थान में अयोग सिखाया जा रहा है। यहाँ तक कि सही उच्चारण न करके योगा–योगा कह रहे हैं। और भी अनेक प्रकार की भ्रान्तियाँ चल रही हैं। यदि इस झूठे योग को न रोका गया तो आगे चल कर इस के परिणाम बहुत ही भयंकर होंगे। इस अन्ध परम्परा से सच्चा योग भी कलंकित हो जायेगा। इसलिये योग के वास्तविक स्वरुप को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

योग शब्द पर विचारः–

योग शब्द "यजु समाधौ" धातु से 'घञ' प्रत्यय करने पर सिद्ध होता है। योग दर्शन में अन्य धातु से निष्पन्न योग शब्द नहीं लिया जाता। क्योंकि व्यास भाष्य में लिखा है–"योग समाधिः" (योग व्यास भाष्य १/१) योग समाधि को कहते हैं। और यह सब अवस्थाओं में चित्त का धर्म है। चित्त की पाँच अवस्थाऐं हैं, १. क्षिप्त, २. मूढ़, ३. विक्षिप्त, ४. एकाग्र, ५. निरुद्ध मिति चित्त भूमयः। (योग व्यास भाष्य १/१)

१. क्षिप्त = अति चञ्चल, २. मूढ़ मूर्च्छित रुप, मोह ममता, ३. विक्षिप्त = चित्त की एकाग्रता कुछ क्षण के लिये हो जाना, ४. एकाग्र = एक ही विषय में चित्त का कुछ काल तक लगे रहना, मध्य में अन्य विषय का न आना – इस अवस्था को योग में सम्प्रज्ञात समाधि कहते हैं। यह भी योग ही कहलाता है। ५. निरुद्ध अवस्था = असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। इसमें सांसारिक कुछ भी प्रतीत न होना, यह अवस्था योगश्चित्तवृत्ति का वास्तविक योग है।

योग का स्वरुप–'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः' (योग द० १/२) चित्त वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं। चित्त–सत्वगुंण, रजोगुण और तमोगुण–इन तीन जड़क तत्वों

श्री वीरेन्द्र गुप्तः

के मेल से बना हुआ एक जड़ पदार्थ है। "चित्त ही प्रख्याबुद्धति स्थिति शीलत्वातभिगुणान्" (योग १/२ व्यास भाष्य) चित्त में जीव की प्रेरणा से जो नाना प्रकार की तरंगे उत्पन्न होती हैं, उन्हीं को वृत्ति कहते हैं। जैसे दर्पण में चित्र उभरते हैं वैसे ही चित्त में भी उभरते हैं। उन वृत्तियों को जानकर वैराग्य और अभ्यास से रोक देने का नाम योग है।

इस योग के मुख्य रूप से दो भेद हैं– १–सम्प्रज्ञात, २–असम्प्रज्ञात।

जब मनुष्य अपने चित्त पर पूर्णाधिकार प्राप्त कर लेता है अर्थात् जिस विषय में चित्त को लगाना चाहे तब लम्बे काल तक लगा लेता है। यही सम्प्रज्ञात समाधि है।

जैसे वाचक और वाच्य–सम्बन्ध को जान कर जप किया जाता है। ओ३म् ईश्वर का वाचक–कहने वाला है और ईश्वर एक वस्तु है जो ओ३म् शब्द के द्वारा कही जाती है। इस वाच्य–वाचक शब्द को जान कर एक व्यक्ति अर्थ सहित जप करता है, उस जप काल में किसी अन्य विषय को मन में नहीं आने देता, यह एकाग्रता है अर्थात् सम्प्रज्ञात समाधि है। इसी सम्प्रज्ञात समाधि को स–बीज समाधि भी कहते हैं। इस सम्प्रज्ञात समाधि की परिपक्व अवस्था में ऋतम्भरा प्रज्ञा की प्राप्ति हो, उस अवस्था में योगाभ्यासी की बुद्धि सत्य को ही धारण करती है। असत्य को नहीं। इस अवस्था को प्रापत करने के बाद योगी सांसारिक लोगों को वैसे ही देखता है जैसे कोई ऊँचे पर्वत के शिखर पर चढ़कर नीचे वालों को देखता है। वह स्वयं अज्ञान और कष्टों से छूट कर वास्तविक स्वतंत्रता का अलिंगन करता है और सांसारिक लोगों को कलेश युक्त देखता है।

ईश्वर का अनुभव होने पर वैराग्य की उत्पत्ति होती है उससे इस सम्प्रज्ञात का भी अवरोध हो जाता है। यह असम्प्रज्ञात समाधि कहलाती है। इसी को निर्बीज समाधि भी कहते हैं। इस अवस्था में चित्त वृत्तियों का निरोध होकर परमात्मा का प्रत्यक्ष होता है अर्थात् 'द्रष्ट स्वरुप अवस्थानम्'। उससे विशेष आनन्द की प्राप्ति होती है अर्थात् आत्मा–परमात्मा एक स्वरुप में होते हैं, प्रकृति का कोई सम्बन्ध नहीं रहता है, यही योग है, असम्प्रज्ञात समाधि है। इस अवस्था में हर समय प्रभु के आनन्द में आत्मा आनन्दमय होता है।

प्रभु का दर्शन इन्द्रिय वा चित्त के द्वारा प्रत्यक्ष नहीं है, यह आत्मानुभूति है।

इस अवस्था को ही क्लेश अर्थात् चित्त के द्वारा कोई अनुभव दृश्य का नहीं होता। यह आत्मानुभूति है। चित्त वृत्ति की पूर्णतया निरोधावस्था है। यही असम्प्रज्ञात समाधि है।

सिवहारा (बिजनौर)

श्री वीरेन्द्र गुप्तः

योगाभ्यास की अनिवार्यता

ब्र० ज्ञानेश्वरार्य

मनुष्य ने चाहे कितनी ही भाषाओं, विद्याओं, कलाओं को सीख लिया हो; कितनी ही उपाधियों, यश, प्रतिष्ठा, धन–ऐश्वर्य को क्यों न प्राप्त कर लिया हो; जीवन पथ पर रोग, अभाव, विश्वासघात, हानि, वियोग, अपमान, अन्याय से सम्बन्धित दुःख आ ही जाते हैं। ऐसी प्रतिकूल परिस्थिति में मनुष्य चिन्तित, निराश एवं अशान्त हो जाता है। सारी आशाएँ तथा कल्पनाएँ नष्ट हो जाती हैं, सब कुछ अन्धकारमय दिखाई देता है। घटनाओं से सम्बन्धित विचारों पर नियंत्रण न रख पाने के कारण मनुष्य अत्यन्त क्षुब्ध अथवा पागल सा हो जाता है। कोई भी समाधान न प्राप्त कर सकने के कारण उत्पन्न हुए महादुःख से बचने के लिये वह कुएँ में गिरकर, विष खाकर, मिट्टी का तेल डाल आग लगा कर, गाड़ी के नीचे आकर, फाँसी के फन्दे पर लटक कर या अन्य किसी प्रकार से जीवन को ही समाप्त करने की सोचता है और कर भी लेता है। अथवा क्रोध के वशीभूत होकर दूसरों का बहुत बड़ा अनिष्ट कर देता है, फिर चाहे परिणाम स्वरूप जीवन भर पश्चाताप की अग्नि में क्यों न जलना पड़े या जेल के बंधन का जीवन क्यों न काटना पड़े।

मन में उठने वाले इन प्रतिकूल विचारों को रोकने में यदि व्यक्ति समर्थ हो अथवा इन विचारों से प्रभावित न हो, अथवा इन समस्याओं का यथोचित समाधान निकाल ले, तो वह उपर्युक्त सभी अनर्थों से बच सकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या–द्वेष आदि मानसिक रोग ऐसे हैं, जिनका समाधान धन–सम्पत्ति से कदापि संभव नहीं हो सकता। इन सब रोगों का समाधान तो आत्मा–परमात्मा सम्बन्धी अध्यात्म विद्या को पढ़, सुन, समझ तथा व्यवहार में लाने से ही सम्भव है। मनुष्यों के कल्याणार्थ इन अध्यात्म विद्याओं का वर्णन हमारे पूज्य ऋषियों ने अपने दर्शनों में विस्तार से किया है।

सूक्ष्मता से निरीक्षण करने पर यह निष्कर्ष स्पष्ट ही ज्ञात होता है कि दर्शनों में वर्णित आत्मा, परमात्मा, मन, बुद्धि, संस्कार, दोष, कर्म, कर्म–फल, पुनर्जन्म, बन्धन–मुक्ति, सुख–दुःख आदि सूक्ष्म तत्वों के यथार्थ स्वरूप को न समझने के ही कारण ही आज सम्पूर्ण मानव समाज में हिंसा, झूठ, छल कपट, चोरी जारी तथा अन्य अनैतिक दोष उत्पन्न हो गये हैं। यदि मनुष्य शरीर, मन इन्द्रियों के पीछे इन सबके नियंत्रक चेतन तत्व 'आत्मा' को तथा द्रश्यमान विशाल ब्रह्माण्ड के पीछे विद्यमान अद्रश्य नियंत्रक चेतन तत्व 'परमात्मा' को जान ले, तो विश्व की सारी समस्याऐं सरलता से दूर हो जाऐं।

वैदिक काल में मन इन्द्रियों को रोककर आत्म–साक्षात्कार करने की इस क्रिया का इतना अधिक महत्व था कि पाँच वर्ष का छोटा सा बालक जब गुरुकुल में पढ़ने जाता था तब से ही आचार्य उसे प्रातःकाल ब्रह्म–मुहूर्त में उठाकर, एकान्त–शान्त स्थान में बैठकर, आसन लगवाकर, आँखें बन्द कराकर, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि लगाने जैसी सूक्ष्म क्रियाऐं सिखाना प्रारम्भ कर देता था जैसा कि ऋषि मुनि लोग स्वयं किया करते थे। यह क्रिया मृत्यु पर्यन्त चलती रहती थी, चाहे वह अभ्यासी

किसी भी आश्रम में क्यों न हो, किसी भी व्यवसाय को क्यों न करता हो।

योग दर्शन में इस क्रिया को 'योग' (समाधि–उपासना) नाम से कहा गया है। जीवात्मा चेतन है = ज्ञानी है, कर्ता है = मन आदि जड़ पदार्थों का चालक है। जो मनुष्य अपने मन को समस्त सांसारिक विषयों से हटाकर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, नित्य, निराकार, पवित्र तथा आनन्द स्वरुप परमेश्वर में स्थित कर लेता है, वह समस्त शारीरिक तथा मानसिक दुःखों से रहित हो जाता है और ईश्वर से ज्ञान, बल, आनन्द, निर्भयता, स्वतंत्रता आदि गुणों को प्राप्त करता है। यही योगसाधना का फल है।

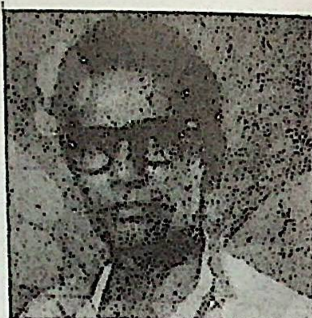
इसी योगाभ्यास से ही व्यक्ति अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण करके जिस विषय पर मन को लगाना चाहता है, लगा देता है, और जिस विषय से मन को हटाना चाहता है, हटा लेता है। मन को नियंत्रण में रखने से ही वह प्रसन्न रहता है। योगाभ्यासी की एकाग्रता बढ़ती है, स्मरण शक्ति विकसित होती है तथा बुद्धि सूक्ष्म होती है। इन सब आध्यात्मिक सम्पत्तियों से उसके सारे कार्य सफल होते हैं। योगाभ्यासी अपने में विद्यमान काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ईर्ष्या, द्वेष आदि के कुसंस्कारों को स्पष्ट रूप से अनुभव करके, उनको विविध उपायों से नष्ट करने में सफल हो जाता है। काम क्रोधादि संस्कारों की विद्यमानता के कारण वह अनिष्ट कार्यों को करके दुःखों को प्राप्त होता है।

समस्त दुःखों से निवृत्ति, मुक्ति प्राप्त कर लेने पर ही होती है। मुक्ति अविद्या के संस्कारों के नष्ट होने पर सम्भव है। अविद्या के संस्कार ईश्वर साक्षात्कार के बिना नष्ट नहीं हो सकते, और ईश्वर साक्षात्कार समाधि के बिना नहीं हो सकता। समाधि चित्तवृत्ति निरोध का नाम है। चित्तवृत्तियों का निरोध यम–नियम आदि योग के आठ अंगों का पालन करने से होता है। इन यम–नियमों से लेकर समाधि और आगे मुक्ति तथा अन्य समस्त साधकों व बाधकों का सम्पूर्ण विधि विधान इस दर्शन में विद्यमान है। हमारा सौभाग्य है कि आज भी हमें महर्षि पतञ्जलि जैसे महान् ऋषियों का संदेश मोक्ष प्राप्ति करने–कराने के लिये उपलब्ध है।

"श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने इस विषय पर भी 'योग परिणति' शीर्षक से एक पुस्तक लिखी है जो अत्यन्त उपयोगी और महत्वपूर्ण है। इस पुस्तक में श्री गुप्तः जी ने इस विषय को विस्तार से क्रियास्वरूप में प्रस्तुत किया है।" (सम्पादक)

प्रा० धर्मेन्द्र धींग्रा
आर्य मिशनरी,
ओंकार कुंज, खारीवाव
बड़ोदरा – ३९०००१

रक्त साक्षी पं० लेखराम से


प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

क्या अन्त तेरा हो गया तीखी छुरी की धार से?
सींची ऋषि की वाटिका अपने लहू की धार से।
तूने अमर पद पा लिया, उपकार से, उपकार से।।
ईश्वर की वाणी वेद पर तेरा अटल विश्वास था।
निर्भीक होकर गर्जना तेरा यह गुण इक खास था।।
जीते विरोधी सैकड़ों निज तर्क की तलवार से...
परिवार का घरबार का तुझको तनिक न ध्यान था।
बस लक्ष्य तेरा वीरवर बलिदान था, बलिदान था।।
क्या अन्त तेरा हो गया तीखी छुरी की धार से?
गाथा अमर तेरी पथिक, देती अनूठी प्रेरणा।
करता रहा संसार में संचार प्रतिपल चेतना।।
जन मन में कैसे घुस गया अपने मृदुल व्यवहार से...
तू ज्ञान का भण्डार था, तेरी निराली शान थी।
सिर धर तली फिरता रहा, तेरी यह पहचान थी।।
गूँजेगी जगती यह सदा तेरी पथिक जयकार से।
सींची ऋषि की वाटिका अपने लहू की धार से।।

अबोहर

पृष्ठ १७२ का शेष

आजादी खतरे में है सब ओर भरे घुसपैठी हैं,
दुश्मन की टोली भारत में छिपी घात में बैठी है,
हिम्मत है तो ले लो जाकर गुरु भूमि ननकाना को,
अपने घर में वापस ले लो तुम अपने दौलतखाना को,
लौहपुरुष बल्लभ पटेल सा देश भक्त अभिमानी दो।
दयानन्द के दीवानों तुम चलो वेद की वाणी दो।

राष्ट्रीय कवितोपदेशक
आरा (बिहार) ८०२३०१

अमर हुतात्मायें

ब्र० श्रीपाल आर्य

धर्मवीर पं० लेखराम जी एक पुस्तक की खोज में प्रातःकाल से ही देहली के गलीबाजारों में पुस्तकों की दुकानों पर भटकते फिर रहे थे। न खाने की चिन्ता और न जलपान का ध्यान था। उन दिनों रिक्शा आदि का साधन भी कहाँ थे। पण्डित जी की अपनी सुध बुध ही न थी। बस अपनी धुन में मगन और अंधेरा होने तक उस पुस्तक की खोज में ही घूमते रहे।

साथ में उनके एक प्यारे भक्त हरियाणा के प्रसिद्ध आर्य नेता महाशय बनवारीलाल जी भी सारा दिन चलते रहे। बनवारी लाल जी ने कहा पण्डित जी प्रभात से रात होने को है। आपको ऐसी क्या मुसीबत आन पड़ी है कि एक पुस्तक के लिये इतने परेशान हो रहे हैं।

पं० लेखराम जी ने तुरन्त दिल से कहा कि कादियाँ के मिर्जा गुलाम अहमद ने आर्य धर्म पर वार किया है। मुझे उस के उत्तर में एक प्रमाण देना है। प्रमाण मुझे याद है परन्तु मैं चाहता हूँ कि वह पुस्तक मेरे पास हो ताकि प्रमाण देते हुए पुस्तक के ठीक–ठीक शब्द दिये जायें।

वह पुस्तक मिल गई। पण्डित जी ने और भी कुछ पुस्तकें खरीद लीं। पुस्तक विक्रेता ने पूछ लिया आपका नाम! लाला बनवारीलाल जी बोल पड़े "यह हैं धर्म रक्षक आर्य पथिक पं० लेखराम।" नाम सुनकर दुकानदार ने पैसे लेने से इंकार कर दिया। पण्डित जी पैसे देने का आग्रह करते रहे और दुकानदार ने यह कहकर पुस्तकों का मूल्य न लिया "आप धर्म रक्षक, जाति रक्षक हैं?"

उस युग में पन्द्रह रुपये की बहुत कीमत थी। दुकानदार का त्याग भी देखिये और पण्डित जी के त्याग व लग्न का तो कहना ही क्या। अपनी जेब से धर्म रक्षा के लिये इतना धन फूंकना कोई छोटी बात नहीं है।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज अपनी कुटी में पत्रों के उत्तर लिख रहे थे। उनकी कुटिया की चिक बार–बार हिल रही थी। हिलने की आवाज आ रही थी। परन्तु चिक को हिलाने वाला अन्दर नहीं आ रहा था। स्वामी जी ने समझा कोई ब्रह्मचारी अपनी समस्या लेकर आया होगा परन्तु अन्दर आने से संकोच कर रहा है।

स्वामी जी ने दो तीन बार पुकार कर कहा, "अरे आ जा, डर किस बात का, आजा भीतर।" एक सिंह अन्दर घुस आया। स्वामी जी जिस पत्र का उत्तर दे देते थे उसे टोकरी में फेंकते जा रहे थे। अब वही टोकरी सिंह के मुख पर दे मारी, टोकरी में उसका मुंह फंस गया। टोकरी में कागजों के टुकड़े उसकी आँखों के सामने हिलने लगे, वह डर कर भागा। बाहर निकलते समय चिक भी उसके सिर में अड़ गई। उसे भी लेता गया। अगले दिन प्रभात काल गुरुकुल के ब्रह्मचारियों को शौचादि के लिये जंगल को जाते समय वह टोकरी व चिक झाड़ियों में मिली। उन्हें समझ में न आया कि ये यहाँ कैसे आ गई। वे इन्हें स्वामी जी के पास लाए। तब इस घटना के घटित

होने का पता चला।

अटल ईश्वर विश्वासी स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन में ऐसी अनेक घटनायें घटीं। संकट की घड़ियों में किसी ने उनको डोलते या लड़खड़ाते हुए नहीं देखा। वे संगीनों के सामने सीना अड़ा कर डट गये। वे जलियाँवाला बाग के खूनी काण्ड के समय आगे आये। वे बीहड़ बन में शेर चीतों की दहाड़ें सुनकर भी गुरुकुल की स्थापना के लिये आसन जमा कर बैठ गए।

मौत का भय कायरों को ही सताता व डराता है। ऐसे महान तपस्वी सन्यासी व शूरवीर नेता की निडरता पर हम जितना भी अभिमान करें थोड़ा है।

झण्डा प्यारा ओ३म् का :–

मुरादाबाद के पास ही गढ़ मुक्ततेश्वर के गंगा स्नान के मेले पर लाखों लोग आये। वहाँ कई सम्मेलन रखे गये। आर्य समाज ने भी अपना प्रचार कैम्प लगाया। इसका संचालन स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज कर रहे थे। वहाँ एक कृषक दल का भी विशाल सम्मेलन था। इस दल के अध्यक्ष की हाथी पर शोभा यात्रा निकाली जाने लगी तो इस पर विवाद हो गया। हाथी पर कौन बैठे? इसी प्रश्न पर दल दलबन्दी की दल–दल में फंस गया। किसान वर्ग में धड़ेबन्दी व कटुता बढ़ गई। कुछ बुद्धिमान अनुभवी वृद्धों ने कहा कि हाथी पर केवल स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी को बिठाया जाय। उनसे इसके लिये विनती की जाये। वह किसान हितैषी और ऊँचे देशभक्त महात्मा हैं।

दोनों दल स्वामी जी के नाम पर सहमत हो गये। दोनों पक्षों के लोगों ने स्वामी जी से विनती करते हुए कहा कि आप ही हाथी पर बैठेंगे। रक्तपात व झगड़े को रोकने के लिये यह कृपा करिये।

स्वामी जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। शोभा यात्रा निकलने लगी। स्वामी जी हाथी पर बैठ गये। अब कुछ लोगों ने उनसे प्रार्थना की कि आप दल का झण्डा अपने हाथ में पकड़ेंगे। स्वामी जी ने दृढ़ता पूर्वक कहा कि हम साधु हैं। किसी पार्टी का झण्डा हाथ में नहीं ले सकता। केवल ईश्वर के ओ३म् नाम का झण्डा ही उठा सकता हूँ। उन लोगों ने कहा यदि आप कृषक दल का झण्डा नहीं पकड़ेंगे तो शोभा यात्रा में पीछे लाखों लोख नहीं चलेंगे, केवल कुछ कट्टर आर्य समाजी ही आपके पीछे रंह जायेंगे।

स्वामी जी ने कहा भले ही एक भी व्यक्ति साथ न चले परन्तु मैं किसी पार्टी का झण्डा अपने हाथ में नहीं पकडूँगा। साधु की इस दृढ़ता की सब पर गहरी छाप लगी।

इस घटना से सब लोग बहुत कुछ सीख सकते हैं। सत्ता के पीछे भागने वाले और लीडरी के भूखे बाने में भी चाहें तो इससे शिक्षा लेकर अपना सुधार कर सकते हैं। ऐसे सच्चे साधु को पाकर यह समाज आगे बढ़ता रहा।

गुरुकुल, गौतम नगर, देहली

शूरता की शान श्रद्धानन्द

प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

धन्य है बलिदान श्रद्धानन्द का।

धन्य जीवनदान श्रद्धानन्द का।।

आर्य नर–नारी सभी मिलकर करें।

आज गौरव गान श्रद्धानन्द का।।

बोल भारत की धरा जयकार तू।

शूरता की शान श्रद्धानन्द का।।

दे दिया सर्वस्व अपने देश को।

काम था निष्काम श्रद्धानन्द का।।

देश के स्वाधीनता संघर्ष में।

नाम है संग्राम श्रद्धानन्द का।।

प्रेम श्रद्धा से मनाएँ पर्व हम।

पीड़ितों के त्राण श्रद्धानन्द का।।

शीश 'जिज्ञासु' झुकाते हैं जिसे।

है हमें अभिमान श्रद्धानन्द का।

सर्वदृष्टा वरुणदेव



वीरकान्त गुप्ता

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति, यो निलायं चरति यः प्रतंकम्।
द्वौ सन्निषद्य यन्मंत्रयेते, राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः।।

अथर्ववेद ४/१६/२

(यः तिष्ठति, चरति) जो मनुष्य खड़ा है, या चलता है, (यः च वञ्चति) जो दूसरों को ठगता है (यः निलायं चरति) जो छिपकर कुछ करतूत करता है (यः प्रतंकं चरति) जो दूसरों को भारी कष्ट आदि देकर अत्याचार करता है और (द्वौ सन्निषद्य) जब दो आदमी मिलकर एक साथ बैठकर, (यत् मंत्रयेते) जो कुछ गुप्त मंत्रणायें करते हैं (तत्) उसे भी (तृतीयः) तीसरा होकर (वरुणः राजा) सर्वश्रेष्ठ सच्चा वरुणः राजा परमेश्वर (वेद) जानता है।

पाप से डरने वाले मनुष्य संसार में बिरले ही होते हैं। आमतौर से लोग पाप करने से नहीं डरते, किन्तु पापी समझे जाने से डरते हैं। जहाँ कोई देखने वाला न हो, वहाँ अपने कर्तव्य से विमुख हो जाना, कोई पाप कर लेना, साधारण सी बात है। पाप व अपराध कर्म से बचने का कोई प्रयत्न ही नहीं करता, प्रयत्न तो इस बात का होता है कि हम अपराध करते हुए पकड़े न जायें। यही कारण है कि मनुष्य अपने बहुत से कार्य छिप कर एकान्त में करने को प्रवृत्त हो जाता है। परन्तु यदि उसे इस संसार में व्यापक एक मात्र सच्चे राजा वरुणदेव के उपस्थित रहने की खबर हो तो वह ऐसे घोर अज्ञान में न रहे। यदि वह इस बात से अवगत हो जाय कि वह जगत् का ईश्वर वरुणदेव! सर्वव्यापक और सर्वदृष्टा है तो वह पाप के आचरण करने से डरने लगे। वह एकान्त में भी कभी पाप में प्रवृत्त न हो सकेगा। सचमुच हम बड़े धोखे में हैं, यदि हम समझते हैं कि हम कोई कर्म गुप्त रुप से कर सकते हैं, ऐसा सम्भव नहीं है। क्योंकि उस सर्वदृष्टा, सर्वव्यापक वरुणदेव प्रभु से तो कुछ भी छिपा कर करना असंभव है। जब हम दो व्यक्ति कोई गुप्त मन्त्रणा करने के लिये किसी घोर अंधेरी कोठरी में जाकर बैठते हैं और परामर्श करने लगते हैं, तो यद्यपि हम समझ रहे होते हैं कि हम दोनों के सिवाय इस संसार में और कोई इन बातों को नहीं जानता, तथापि इन सब मन्त्रणाओं को वह वरणदेव वहीं उपस्थित रह कर सुन रहा होता है। यदि हम वहाँ से हट कर किसी किले में जा बैठें या किसी निर्जन बन में पहुँच जायें तो वहाँ पर भी वह वरुणदेव तो तीसरा साक्षी होकर पहले से ही बैठा हुआ होता है। उससे छिपकर हम कुछ नहीं कर सकते हैं। यदि हम किसी दूसरे मनुष्य को भी कुछ नहीं बताते, केवल अपने ही मन में कुछ सोचते हैं तो वह वरुणदेव उसे भी जानता है, सब सुनता है। हमारे चलने या ठहरने को, हमारी छोटी से भी छोटी क्रिया को वह जानता है। हम दूसरों को

धोखा दे सकते हैं, ठग लेते हैं और समझते हैं कि इसका किसी को ज्ञान ही नहीं। तब हम स्वयं कितने भयंकर धोखे में आये होते हैं क्योंकि उस वरुणदेव को तो सब कुछ पता होता ही है और हमें उसका प्रतिफल भोगना ही पड़ता है। उससे वंचित नहीं रह सकते।

एम०एस०सी०, बी०एड०
ललित मेडिकल स्टोर,
बाजार गंज, मुरादाबाद

पृष्ठ १८० का शेष

इस धरती पर समय–समय पर वर्षा करता रहे जिससे कि यहाँ प्रचुर मात्रा में धान्य, फल, औषधियाँ आदि उत्पन्न हों। समग्रतः मानव के योग क्षेम की कामना वैदिक प्रार्थनाओं में सर्वत्र की गई है।

८/४२३, नन्दन वन
जोधपुर

दार्शनिक चिन्तन

हरिशंकर

दार्शनिक दृष्टि से सत्यार्थ प्रकाश का मूल्यांकन करने पर ईश्वर जीव प्रकृति और सृष्टि के बारे में भी तर्क सम्मत वैदिक निर्धारण की उपलब्धि होती है। यों तो अनेक दार्शनिकों ने अपने मत वैभिन्य की परिपेक्ष्य में ईश्वर जीव प्रकृति और सृष्टि के अपने बौद्धिक आधारों पर प्रस्तुतीकरण किया है, किन्तु सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि के दार्शनिक चिन्तन प्रधान विश्लेषण के समक्ष वह सभी लड़खड़ाने लगते हैं। वस्तुतः स्वीकार करना होगा कि सत्यार्थ प्रकाश में दार्शनिकता का वेद सम्मत वैज्ञानिक स्वरूप सूर्य के समान कान्ति छितराता समस्त अतिरिक्त दार्शनिकताओं को थोथा ही नहीं ठहराता उन्हें प्रतीत भी कर डालता है।

ईश्वर का स्वरुप और क्रिया को आर्य समाज के द्वितीय नियम में बहुत कुछ समाहित कर स्पष्ट करने के प्रयास को उदाहरण आदि के प्रस्तुतीकरण के सत्यार्थ प्रकाश में पुष्ट किया गया है। ईश्वर को सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त... नित्य पवित्र और सृष्टि कर्त्ता प्रतिपादित कर उसी की उपासना को उचित ठहराया है।

जीव को अनादि मान कर उसकी कर्म करने में स्वतन्त्र सत्ता स्वीकारते हुए फल भोगने में उसे ईश्वराधीन माना है। जीव का जन्म मरण नहीं होता, शरीर तथा इन्द्रिय कर्मफल भोक्ता नहीं है वह तो जीवात्मा के कर्म प्रवृत करने का माध्यम और साधन हैं। जीव अविद्या में फंसकर सत्कर्म से विमुख हो कर कष्ट भोगता है दुष्परिणाम को प्राप्त होता है तथा विद्या प्राप्त करने पर स्वर्ग की प्राप्ति करता है।

विद्या अविद्या विषय को लेकर वेद सम्मत सिद्धांत और मान्यताओं को विद्या की श्रेणी में स्थान दिया है जबकि वेद विरुद्ध तोड़े मरोड़े गये विधर्मियों, अल्पज्ञों के थोथे सिद्धान्तों को कष्टदायक बताते हुए अविद्या की संज्ञा दी है। अविद्या को चार प्रकार का माना है। विपरीत बुद्धि, अशुचि, विषयसेवन तथा अनात्मा में आत्मा बुद्धि करना आदि अविद्या के अंतर्गत है। तथा धर्मयुक्त सत्य भाषणादि कर्म और अधर्म त्याग ही जीव मुक्ति का ईश प्राप्ति का साधन है। इसके विपरीत अधर्म, अज्ञान में फँसा जीव बद्ध है। जीव को ब्रह्म का प्रतिबिम्ब नहीं माना है। क्योंकि प्रतिबिम्ब निराकार का नहीं होता।

सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति और प्रलयकर्त्ता ईश्वर सर्वव्यापक है। सृष्टि से पूर्व जगत अंधकारमय था। ईश्वर ने उसे कारण रूप से कार्य रूप में बदला। उसने सूर्य, अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश आदि पंचभूत बनाकर जगत का सृजन किया है तथा क्रमिक संचालन संवाहन विकिरण आदि से जगत का प्रसार आदि किया है। इस चक्र में जब कोई क्रम विश्रृंखला का योग आ जाता है तभी किसी भी अति का स्थापन हो जाता है। जो प्राणी मात्र को सुख दुःख का कारण भी बन जाता है तभी सृष्टि के निर्माता की सत्ता के सत्यापन की स्वतः ही पुष्टि हो जाती है।

क्रमशः पृष्ठ २०८

पिलाया ज़हर का प्याला

स्व० पं० प्रकाशचन्द्र कविरत्न

दयानन्द देव वेदों का,
उजाला ले के आये थे।
करों में ओ३म् की पावन,
पताका लेके आये थे।।
न थे धन धाम मठ मन्दिर,
न संग चेली न चेला था।
हृदय में वे अटल विश्वास,
प्रभु का लेके आये थे।।
गऊ विधवा दलित दुखिया,
अनाथों दीन जन के हित।
नयन में अश्रुकण, मानस में,
करुणा ले के आये थे।।
अविद्या सिन्धु से अगणित,
जनों को पार करने को।
परम सुख–दायिनी सत्य ज्ञान,
नौका लेके आये थे।।
कोई माने न माने सच तो,
ये ऋषि राज ही पहले।
स्वराजस्थापना का मन्त्र,
सच्चा लेके आये थे।।
पिलाया जहर का प्याला,
उन्हें नादान लोगों ने।
कि वे जिन के लिये,
अमृत का प्याला ले के आये थे।।
'प्रकाशादर्श' शिक्षा का,
पुनः विस्तार करने को।
वही प्राचीन गुरुकुल का,
संदेशा ले के आये थे।।

अजमेर

देवपुरी अयोध्या

डा० सत्यप्रिय शास्त्री

सर्वेषान्तु नामानि कर्माणि च पृथक् पृथक्।
वेदशब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।।

मनुस्मृति अध्याय १ श्लोक २१

अयोध्या का वर्णन वाल्मीकि रामायण में बहुत ही गरिमा के साथ हुआ कि यह नगरी सारे संसार में प्रसिद्ध थी और मनु महाराज ने इस का निर्माण स्वयं कराया था।

अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोक विश्रुता।
मनुना मानवेन्द्रेण या पुरी स्वयं निर्मिता।।

यह नगरी इन्द्रपुरी के समान थी जिसके कोश में नाना रत्न सोनादि विपुल मात्रा में रहता था, यह स्वर्गीय आनन्द से युक्त एवं विद्युत के प्रकाश से जगमगाती रहती थी। ऐसा ही उल्लेख हम को अथर्ववेद में उपलब्ध होता है।

अष्ट चक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्यकोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः।।

अथर्ववेद काण्ड १० सूक्त २ मन्त्र ३१

देवों की यह अयोध्या आठ चक्रों वाली नवद्वारों वाली है उसमें वीर्य (शक्ति) का कोश है और सुख विशेष से युक्त है जो ज्योतियों से जगमगा रही है।

आप के मन में यह जिज्ञासा हो रही होगी कि यह अयोध्या कहाँ पर है इस को जानने के लिए दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। यह जो हमारे आप के शरीर हैं यह सब परमात्मा की बनाई हुई अयोध्या है। जिसको विशेष व्याख्या के साथ प्रस्तुत किया जा रहा है।

अष्ट चक्रा

मन्त्र में सर्वप्रथम अयोध्या का विशेषण 'अष्टचक्रा' आया है अष्टचक्रों का विशेष रूप से वर्णन श्री ओमानन्द जी सरस्वती ने पातञ्जलयोग दर्शन के भाष्य में किया है जिसका अति संक्षेप में यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

मनुष्य के शरीर में प्राणवाहिनी नाड़ियाँ असंख्य हैं उनमें तीन नाड़ियाँ प्रमुख हैं– १. सुषुम्णा २. इड़ा ३. पिंगला। इन तीनों में सुषुम्णा सर्वश्रेष्ठ है, यह नाड़ी अति सूक्ष्म नली के समान है जो गुदा के निकट से मेरुदण्ड के भीतर होती हुई मस्तिष्क के ऊपर चली गई है, इसी गुदा स्थान के निकट से वाम भाग से इड़ा और दक्षिण भाग से पिंगला नासिका मूल तक गई हुई है। तथा भ्रूमध्य में ये तीनों नाड़ियाँ परस्पर मिल जाती हैं। सुषुम्णा को सरस्वती, इड़ा को गंगा और पिंगला को यमुना भी कहते हैं। गुदा के समीप जहाँ से ये तीनों नाड़ियाँ पृथक् होती हैं उसको 'मुक्त' त्रिवेणी और भ्रूमध्य में जहाँ ये तीनों पुनः मिल गई हैं उसको युक्त त्रिवेणी कहते हैं।

मनुष्य की साधारणतया प्राण शक्ति निरन्तर इड़ा और पिंगला नाड़ियों से श्वास प्रश्वास रूप से प्रवाहित होती रहती है, इड़ा को चन्द्रनाड़ी और पिंगला को सूर्य नाड़ी

भी कहते हैं। इड़ा तमः प्रधान और पिंगला रजः प्रधान है। श्वास कभी दायें नथुने से अधिक वेग से चलता है कभी बायें से और कभी दोनों से समान गति से प्रवाहित होता है। जब बायें नथुने से श्वास अधिक वेग से चल रहा हो तो उसे इड़ा या चन्द्र स्वर कहते हैं और जब दायें से अधिक वेग से बहे तो उसे पिंगला सूर्य स्वर कहते हैं। जब दोनों नथुने से समान गति से प्रवाहित हो तो उसे सुषुम्णा स्वर कहते हैं।

सुषुम्णा के अन्तर्गत सूक्ष्म नाड़ियाँ :—

सुषुम्णा के भीतर वज्र नाड़ी है वज्र के अन्दर चित्रणी है और चित्रणी के मध्य में ब्रह्म नाड़ी है। यह सब नाड़ियाँ मकड़ी के जाले जैसी अति सूक्ष्म हैं जिनका ज्ञान केवल योगियों को ही हो सकता है। ये नाड़ियाँ सत्व प्रधान, प्रकाश मय और अद्‌भुत शक्तिशाली हैं। ये सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म प्राण के स्थान हैं। इन में बहुत से सूक्ष्म शक्तियों के केन्द्र हैं, जिनमें बहुत सी अन्य नाड़ियाँ मिलती हैं। इन शक्तियों के केन्द्रों को पद्म या कमल कहते हैं इनमें से मुख्य सात हैं– १. मूलाधार, २. स्वाधिष्ठान, ३. मणिपूरक, ४. अनाहत, ५. विशुद्धि, ६. आज्ञा, ७. सहस्रार।

ये चक्र या केन्द्र, पाँचों तत्वों, पाँचों तन्मात्राओं, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, पाँचों कर्मेन्द्रियों, पाँचों प्राणों, और अन्तःकरण के साथ–साथ सातों लोकों के मण्डल हैं। नाना प्रकार के प्रकाश तथा विद्युत से युक्त हैं। साधारण अवस्था में ये चक्र बिना खिले कमल के सदृश अधोमुख एवं अविकसित रहते हैं। ध्यान द्वारा उत्तेजना पाकर जब ये ऊर्ध्व होकर विकसित हो जाते हैं तब इन की अलौकिक शक्तियों का विकास होता है।

चक्रों का क्रमशः वर्णन

मूलाधार चक्र (१)

(१) चक्र स्थान–गुदा मूल से दो अंगुल ऊपर और उपस्थ मूल से दो अंगुल नीचे है।

(२) गुण–यह गन्ध गुण वाला है, अपान वायु का मुख्य स्थान है।

(३) इन्द्रिय–ज्ञानेन्द्रिय की दृष्टि से गन्ध तन्मात्रा से उत्पन्न होने वाली सूंघने की शक्ति नासिका का स्थान है।

कर्मेन्द्रिय–पृथिवी तत्व से उत्पन्न होने वाली मल त्याग शक्ति गुदा का स्थान है।

(४) लोक–इस चक्र का भू लोक है।

(५) चक्र पर ध्यान का फल–आरोग्यता, आनन्दचित्त, वाक्य, काव्य प्रबन्धादि की दक्षता आती है।

स्वाधिष्ठान चक्र (२)

चक्र स्थान–मूलाधार चक्र से दो अंगुल ऊपर पेडू के पास इस चक्र का स्थान है। यह रस गुण से युक्त है। वायु स्थान की दृष्टि से यह व्यानवायु का मुख्य स्थान है। ज्ञानेन्द्रिय की दृष्टि से रस तन्मात्रा से उत्पन्न स्वाद लेने की शक्ति रसना का स्थान है। कर्मेन्द्रिय की दृष्टि से–जल तत्व से उत्पन्न मूत्र त्याग शक्ति उपस्थान का स्थान है। लोक की दृष्टि से 'भुवः' लोक है। चक्र पर ध्यान का फल सृजन, पालन और

निधन में समर्थता तथा जिह्वा पर सरस्वती का वास होता है।

मणिपूरक चक्र (३)

चक्र स्थान की दृष्टि से नाभि का मूल है। इसका गुण रूप है। खान पान के रस को सम्पूर्ण शरीर में स्वस्व स्थान पर समान रूप से पहुँचाने वाले समान वायु का मुख्य स्थान है। ज्ञानेन्द्रिय की दृष्टि से—रूप तन्मात्रा से उत्पन्न देखने की शक्ति चक्षुस्थान है। कर्मेन्द्रिय की दृष्टि से—अग्नि तत्व से उत्पन्न चलने की शक्ति पैर का स्थान है। लोक की दृष्टि से—'स्वः' लोक है। चक्र पर ध्यान का फल—योग दर्शन के विभूति वाद में—इस चक्र पर ध्यान करने का फल शरीर व्यूह का ज्ञान बतलाया गया है और अजीर्णादि रोग दूर होते हैं।

अनाहत चक्र (४)

अनाहत चक्र का स्थान हृदय देश है। इस का स्पर्श गुण है। वायु स्थान की दृष्टि से मुख और नासिका से गति करने वाला प्राण वायु का मुख्य स्थान है। ज्ञानेन्द्रिय् की दृष्टि से स्पर्श तन्मात्रा से उत्पन्न स्पर्श शक्ति त्वचा का केन्द्र है। कर्मेन्द्रिय की दृष्टि से—वायु तत्व से उत्पन्न, पकड़ने की शक्ति कर (हाथ) का स्थान है। इसका लोक 'महः' है जो अन्तःकरण का मुख्य स्थान है।

चक्र पर ध्यान का फल—कवित्व शक्ति का लाभ तथा अनाहत ध्वनि है, त्रिगुणमय ओंकार इसी स्थान पर व्यक्त होता है।

विशुद्धि चक्र (५)

इस चक्र का स्थान कण्ठ है। शब्द इस का गुण है। उदान वायु का मुख्य स्थान है। ज्ञानेन्द्रिय की दृष्टि से शब्द तन्मात्रा से उत्पन्न श्रवण शक्ति श्रोत्र (कान) स्थान है, कर्मेन्द्रिय की दृष्टि से आकाश तत्व से उत्पन्न वाक् शक्ति वाणी का स्थान है। इसका लोक 'जनः' है।

चक्र पर ध्यान का फल—कविः, महाज्ञानी, निरोग शोकहीन और दीर्घ जीवी होता है।

आज्ञा चक्र (६)

आज्ञा चक्र का स्थान दोनों भ्रुवों के मध्य भृकुटी के भीतर है। 'ओ३म्' इसका बीज स्थान है। इसका 'तपः' लोक है।

ध्यान का फल—भिन्न—भिन्न चक्रों के ध्यान के द्वारा जो फल प्राप्ति होती है। वे सब एक मात्र इसके ध्यान से प्राप्त हो जाते हैं। इस स्थान पर प्राण तथा मन के स्थिर हो जाने पर सम्प्रज्ञात समाधि प्राप्ति की योग्यता प्राप्त हो जाती है।

मूलाधार से इड़ा, पिंगला और सुषुम्णा पृथक् पृथक् प्रवाहित होकर इस स्थान पर मिलती है इसलिए इस को युक्त त्रिवेणी भी कहते हैं।

सहस्रार चक्र (७)

इस चक्र का स्थान तालु के ऊपर मस्तिष्क में ब्रह्मरन्ध्र से ऊपर है। यह सब शक्तियों का केन्द्र है। इस का लोक 'सत्यम्' है।

इसके ध्यान का फल—अमर होना है, मुक्ति प्राप्त करना है। इस स्थान पर प्राण तथा मन स्थिर हो जाने पर सर्व वृत्तियों का निरोध रूप असम्प्रज्ञात समाधि की योग्यता प्राप्त होती है।

ब्रह्म रन्ध्र (८)

मुक्त जीव जब शरीर छोड़ता है तब वह इसी 'ब्रह्मरन्ध्र' से निकल जाता है अतएव इसको भी एक चक्र मान लेने से चक्र की संख्या आठ हो जाती है जो कि मानव शरीर में भिन्न भिन्न स्थानों पर विद्यमान है।

नवद्वार

अष्टचक्रा के बाद देवपुरी का विशेषण 'नवद्वारा' है। दो कान, दो आँख, दो नासिका के द्वार, एक मुख तथा मल मूत्र के दो द्वार सब मिलकर 'नवद्वार' हो जाते हैं।

"देवानां पूरयोध्या"

देवों की पुरी अयोध्या—नयोद्धुं योग्या—अयोध्या, अर्थात् जो किसी शत्रु से जीती न जा सके इसको अयोध्या कहते हैं। "देवानांपूर" देवों की नगरी अयोध्या यह स्पष्ट अर्थ निकलता है।

वेद में एक स्थान पर इस शरीर रूपी पुरी की सात ऋषि निरन्तर रक्षा करते रहते हैं :—

सप्त ऋषयः प्रतिहता शरीरे।
सप्त रक्षन्ति सदम प्रदाम्।।

सात ऋषि हमारे शरीर में विराजमान हैं और वे हमारे शरीर की निरन्तर शत्रुओं से रक्षा करते रहते हैं। यह सप्त ऋषि हमारे शरीर में कहाँ पर विराजमान हैं और उनके नाम क्या हैं इसका उल्लेख हमको बृहदारण्यकोपानिषद् में उपलब्ध होता है।

हमारा दायाँ कान गौतम ऋषि है और बायाँ कान भारद्वाज ऋषि है। हमारा दायाँ नेत्र विश्वामित्र ऋषि है और बायाँ नेत्र जमदग्नि ऋषि है। हमारी दायीं नासिका के द्वार पर वशिष्ठ ऋषि हैं तो बायीं नासिका के द्वार पर कश्यम ऋषि विराजमान हैं। वाणी अत्रि ऋषि हैं—"वागेवात्रिः वाचा ह्यन्नमद्यते" वाणी से अन्न खाया जाता है और अत्रि भी अत्रि (अद् धातु) से बनता है अत्रि का अर्थ खाता है। खाने की वस्तु को विचार पूर्वक खाता है जिससे कभी खाने से शारीरिक हानि नहीं होती यही अत्रि ऋषि की भावना है। इसी प्रकार हमारे सुनने देखने और सूंघने में भी मर्यादा होनी चाहिए तथा जिस स्थान पर जो ऋषि बैठाया गया है उसके नामों और कार्यों की दृष्टि से भी हमारा ध्यान होना चाहिए जैसे आँखों पर विराजमान एक ऋषि विश्वामित्र हैं जिसका अर्थ है सभी वस्तुओं को मित्र की दृष्टि से देखना जैसा कि वेद का आदेश है—

"मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे"

यजुर्वेद ३६—१८

मैं मित्र की दृष्टि से सभी प्राणियों को देखूँ।

दूसरे ऋषि जमदग्नि हैं जिनके सम्बन्ध में कहा गया है कि बहुत ही पवित्र आत्मा ऋषि था और उन्होंने चारों वेदों का पूर्ण स्वाध्याय किया था।

श्री वीरेन्द्र गुप्तः

इन दोनों ऋषियों के माध्यम से संकेंत स्पष्ट रूप से किया गया है कि संसार के प्राणिमात्र को मित्र की दृष्टि से देखकर और वेदों का पूर्ण स्वाध्याय करके नेत्रों को सार्थक करो। इसी प्रकार से अन्य श्रोत्र और नासिका के ऋषियों के सम्बन्ध में भी विचारना चाहिए।

सप्त ऋषियों के उल्लेख के बाद अब देवों सम्बन्धी उल्लेख भी हम को उपनिषद् में प्राप्त होता है जैसा कि ऐतरेयोपनिषद के प्रथम अध्याय के दूसरे खण्ड में कहा गया है—देवों ने विधाता से कहा कि हमारा कोई ठिकाना तो बताएँ। जहाँ पर रहकर हम खायें पियें। विधाता ने उनके लिए गाय का ढाँचा बनाया और देवताओं से कहा कि इस में अपना ठिकाना कर लो, तब देवों ने कहा यह हमारे लिए पर्याप्त नहीं है। फिर विधाता ने उनके सामने घोड़े का ढाँचा लाकर कहा फिर तुम इस में अपना निवास बना लो, तब देवों ने कहा कि यह हमारे लिए पर्याप्त नहीं है। उसके बाद विधाता उनके पास पुरुष का ढाँचा बना कर लाया, तब सभी देवों ने कहा अहो यह अच्छा बना है निस्सन्देह पुरुष ही विधाता की सुन्दर कृति है, सुकृति है, विधाता ने उन्हें कहा क्या देखते हो, जिस जिस को जो स्थान अच्छा लगे उस में प्रविष्ट हो जाओ, तभी देवगण प्रविष्ट होने लगे।

अग्नि वाणी होकर मुख में प्रविष्ट हो गई। वायु प्राण हो कर नासिका में प्रविष्ट हो गया, आदित्य चक्षु होकर आँखों में प्रविष्ट हो गया। दिशाएँ श्रोत्र होकर कानों में प्रविष्ट हो गईं। औषधि तथा वनस्पति लोम होकर त्वचा में पहुँचे, चन्द्रमा मन होकर हृदय में प्रविष्ट हो गया, मृत्यु अपान होकर नाभि में जा डटा। जल वीर्य होकर प्रजनन अंग में प्रविष्ट हो गया। इस प्रकार देवों ने हमारे शरीर में भिन्न स्थानों पर अपना डेरा लगाया।

इस देव चर्चा की विस्तृत सूची वेदान्त सार में प्रस्तुत करते हुए कहा गया है—कानों का देवता दिशाएं, आँखों का देवता सूर्य, त्वचा का देवता वायु, जिह्वा का देवता वरुण, नासिका का देवता अश्विनी कुमार, वाणी का देवता अग्नि, हाथों का देवता इन्द्र, पैरों का देवता उपेन्द्र, पायु (मलद्वार) का देवता यम उपस्थ (प्रजनन अंग) का देवता प्रजापति, मन का देवता चन्द्रमा, बुद्धि का देवता ब्रह्मा, अहंकार का देवता शिव और चित्त का देवता विष्णु बताया गया है। इस देव वर्णन से इतना तो स्पष्ट है कि हमारा शरीर वास्तव में देवों की पुरी है।

हिरण्य कोशः

इस देव पुरी का एक विशेषण हिरण्य कोशः है जिसका अर्थ है हमारे शरीर में जो ओज तेज एवं वीर्य शक्ति है वह हिरण्य कोशः से कही गई है। जो जीवन का मुख्य आधार है जिस समय यह शक्ति हमारे शरीर में भरपूर होती है, तभी लोग कहते हैं देखों इस पर जवानी फूट रही है और यदि किसी षोडशी बाला को देखते हैं तो कहते हैं देखो भगवान ने कितनी सुन्दरता प्रदान की है जो देखता है वही इस की सुन्दरता की प्रशंसा करता है और कहता है देखो होठ तो इतने स्वाभाविक लाल हैं जैसे वसन्त में आम के पेड़ की कोपलें होती हैं आदि आदि।

मेरी बिटिया ज्योति के होठ इतने लाल थे जिससे लोगों को भ्रम होता था कि क्या अभी से होठ लाल करने की आदत पड़ गई है। एक बार एक महिला ने पूछ ही लिया कि क्या होठों पर लिपिस्टिक लगा रखी है तब उसने उत्तर दिया था कि नहीं आंटी जी यह तो भगवान की लिपिस्टिक है, उस महिला को बड़ा ही सुखद आश्चर्य हुआ।

लोग आजकल बहुत ही सुगन्धित पौडर का प्रयोग अपने शरीर पर करते हैं। उनको पता ही नहीं है कि भगवान ने हमारे शरीर में एक स्वाभाविक सुगन्धी दी है जिसका अनुभव बिना सुगन्धित पौडर से किया जा सकता है। लेकिन आज की सबसे बडी समस्या यह है आज की अधिकतर नासिकाओं में उस सुगन्धी को ग्रहण करने की शक्ति ही नहीं है। यों तो मनुष्य के शरीर में एक दैवी सुगन्धी होती है जो विशेष ग्रहण करने वाली नासिका वाले लोग ही ग्रहण कर पाते हैं।

इस प्रकार की सुगन्ध का श्री वीरेन्द्र गुप्तः जी ने स्वयम् अनुभव किया है। जैसा कि कहा गया है—

"सुगन्धी योगिनो देहे जायते विन्दुधारणात्"

वीर्य को धारण करने से योगियों के शरीर में सुगन्धी उत्पन्न होती है। विन्दु शब्द यहाँ पर वीर्य शक्ति के लिए आया है जैसा कि आगे कहा गया है कि विन्दु के धारण से जीवन है और विन्दु के पतन से मृत्यु है।

"मरणं विन्दु पातेन जीवनं विन्दु धारणात्"

स्वर्ग :,

इस देवों की पुरी अयोध्या का एक विशेषण है स्वर्ग, जिसका अर्थ है "सुख विशेष"। मानव जीवन में ही सुख विशेष का अनुभव किया जा सकता है क्यों कि यही देवपुरी है इसमें देवगण निवास करते हैं। जब मनुष्य ध्यान समाधि द्वारा अपने चित्त के मलमश धो देता है तब उसको विशेष सुख प्राप्त होता है। जिसको बताया नहीं जा सकता लेकिन स्वयं अपने अन्तःकरण द्वारा उसका अनुभव किया जा सकता है जैसा कि अनुभव करने वालों ने अनुभव लिखा है।

समाधिनिर्धूतमलस्य चेतसो
निवेशितस्यात्मनि यत्सुखं भवेत्।
न शक्यते वर्णयितुं गिरा
तदा स्वयं तदन्तः करणेन गृह्यते।।

ज्योतिषावृतः

देवों की पुरी अयोध्या का अन्तिम विशेषण है "ज्योतिषावृतः" जिसका अर्थ है कि हमारा शरीर ज्योतियों से ज्योतितमान है। यह हमारा शरीर अनेक ज्योतियों से युक्त है। इन्द्रियों में भी ज्योति है और मन में इन्द्रियों से अधिक ज्योति है इसलिए मन को "ज्योतिषां ज्योति" यजुर्वेद में कहा है। सब की परम ज्योति परमात्मा है जिसकी आभा से चेतन आत्मायें और जड़ जगत के सूर्य, चन्द्र, विद्युत, अग्नि आदि आभावान हो रहे हैं जैसा कि उपनिषद् के ऋषि ने कहा है—

न तत्र सूर्यो भांति नं चन्द्रतारकं,
नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनु भाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।।

"ज्योतिषावृतः" का दूसरा अर्थ ज्ञान का प्रकाश है। भगवान ने इस मनुष्य शरीर में ही ज्ञान के प्रकाश का विशेष रूप से प्रबंध किया है। अन्य जीवों में ऐसा नहीं है। यही कारण है कि मनुष्य को ही भगवान ने नैमित्तिक ज्ञान प्रदान किया है जब कि मनुष्य के अतिरिक्त जीवों को केवल काम चलाऊ स्वाभाविक ज्ञान ही दिया है जैसे पशु पक्षियों को तैरने का स्वाभाविक ज्ञान प्रदान किया है परन्तु यह तैरने का ज्ञान मनुष्य को स्वाभाविक रूप से नहीं दिया। परन्तु नैमित्तिक ज्ञान से अर्थात् दूसरे से सीख कर यदि वह तैरना चाहे तो वह पशु पक्षियों से भी अच्छा तैर सकता है, तैरने में भी अनेक प्रकार की कलाओं को विकसित कर सकता है क्योंकि प्रभू ने उसको नैमित्तिक ज्ञान को धारण करने के लिए बुद्धि प्रदान की है जो अनेक प्रकार की कलाओं को जन्म देती है जिससे मनुष्य की गौरव गरिमा अन्य जीवों से निर्विवाद रूप से अधिक है।

मनुष्य ने आज अपने नैमित्तिक ज्ञान को समृद्धिशाली बनाने के लिए ही नाना प्रकार की पुस्तकों का निर्माण किया और आधुनिक युग में तो अनेक प्रकार के कम्प्युटरों के निर्माण के कारण अन्य जीवों को सदा के लिए अपने ज्ञान से मात दे दिया है।

अब यह स्पष्ट हो गया कि मनुष्य के ढाँचें को ही देवों ने क्यों चयन किया अन्य गाय अश्व के ढाँचें को नहीं चुना क्यों कि मनुष्य जीवन से ही वे अपनी सार्थकता सिद्ध कर सकते थे।

विशेष उल्लेखनीय यह है कि मनुष्य के शरीर की सप्त ऋषि निरन्तर रक्षा कर रहे हैं और देवता भी इस में वास कर रहे हैं फिर डर किस बात का है? डर है आसुरी भावना से जिसका प्रधान काम है, काम भावना के प्रवेश होते ही देवासुर संग्राम छिड़ जाता है जो निरन्तर चलता रहता है, यों तो मर्यादित काम संसार का निर्माण करता है और अमर्यादित काम संसार का विनाश करता है जैसे मर्यादित हमारे लिए कल्याणकारी होती है और जब वह अमर्यादित हो जाती है तो वह अपने बाढ़ रूपी बल से हमारे लिए सर्वनाश का कारण बनती है। उसी तरह से काम भी अमर्यादित होकर सर्वनाश का कारण होता है जैसा कि श्रीमद् भगवद्गीता में कहा गया है–

ध्यायतो विषयांन्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।।

सांसारिक विषयों का चिन्तन करने वाले मनुष्य की सांसारिक विषयों में आसक्ति उत्पन्न हो जाती है। आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है कामना में बाधा उत्पन्न होने से क्रोध उत्पन्न होता है।

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृति विभ्रमः।
स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशा प्रणश्यति।।

क्रोध के उत्पन्न होने से मोह उत्पन्न होता है मोह से स्मरण शक्ति के नष्ट होने

से बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि के नष्ट होने से अपने वास्तविक लक्ष्य से भ्रष्ट हो जाता है।

यों तो यह काम, क्रोध, लोभ, मोह मद मत्सर ये छः आन्तरिक शत्रु गिनाए जाते हैं परन्तु इनमें भी नाना रूप धारण करने वाला यह काम ही है। काम यदि कामयाब न हो तो वह फिर क्रोध का भयंकर रूप धारण कर लेता है और काम जिन वस्तुओं से कामयाब होता है उन वस्तुओं को वह संग्रह करना चाहता है संग्रह करने की जो यह चाह है, इसको ही 'लोभ' नाम दिया जाता है, उस संग्रहीत वस्तुओं को वह अपने पास से हटाना नहीं चाहता क्यों कि उस को उन वस्तुओं से 'मोह' हो गया है। यदि वह वस्तुओं का संग्रह अधिक कर लेता है और औरों की अपेक्षा उसको वे वस्तुएँ अधिक लगती हैं तो उसको अन्य की अपेक्षा अधिकता के कारण 'मद' हो जाता है और यदि अपनी वस्तुओं की अपेक्षा अन्य की वस्तु समृद्धि अधिक है उसको 'मत्सर' हो जाता है।

आप इस विवेचन से इतना तो अवश्य ही समझ गये होंगे, इन सब में काम (सेक्स) से सम्बन्धित वस्तु हों अथवा काम की विस्तृत अर्थ कामना के रूप में लिया जाये तो भी वही बात उसके जीवन में होगी जिसका उल्लेख उपर्युक्त किया गया है। इसीलिए लोक में कहा जाता है राक्षस (असुर) नाना रूप धारण करके मनुष्य के सामने आता है और उन्हें कर्तव्यच्युत कर के मानव जीवन से पतित कर देता है। आज अधिकतर मानव अपनी कामवासना की तृप्ति में लगा हुआ है और अपने मानवीय जीवन के मूल्यों को भूलता जा रहा है।

वेद मानवीय जीवन की गरिमा को प्रस्तुत करते हुए ऋषि और देव स्थली की भावना को उजागर करता है जिससे मानव अपने पुरुषार्थों को प्राप्त करने में सफल हो जाए।

मानव मात्र के लिए वेद का अमर सन्देश है कि प्रत्येक मानव देवों की पुरी अयोध्या की सभी ओर से रक्षा करें।

"पुमान् पुमासं परिपातु विश्वतः"

संस्कृत विभागाध्यक्ष
जगदीश शरण हिन्दू स्नातकोत्तर महाविद्यालय
अमरोहा (मुरादाबाद)

श्री वीरेन्द्र गुप्तः

What are the Vedas?


RAJENDRA KUMAR GUPT

The Vedas are the Divine knowledge. The Vedas are the voice of God since the starting of the universe. The Vedas are the essence of all the heavenly bliss of the universe. All the universe is the practical knowledge where as the Vedas are the theoratical interpretation of it. What is in the universe is in the Vedas and Vice-Versa, God is immortal, therefore, His Vedas' knowledge is also immortal. In the evolution of the universe the four saints Agni, Vayu, Aditya and Angira (अग्नि, वायु, आदित्य, और अंगिरा) are born. Through these four holy saints, God transmits the knowledge through Rig, Yaju, Sam and Atharv (ऋग, यजु, साम और अथर्व) for the whole universe.

One gets a degree only after qualifying himself in the materlistic examination. It is enough to secure 33% marks in the question paper in the examination. None refused to secure more marks, but to attain salvation one must secure 100% marks in the divine test. Maha Muni Gautam, the writer of the Nyay Darshan writes. "Ritay Gyanat Na Mukthi" (ऋते ज्ञानात् न मुक्तिः). Whenever the universe comes into existence the souls of four great saints take their re-birth in the form of above saints who are going to attain salvation `MOKSHA'.

Thus they fulfill the goal of attainment by proving themselves worthy of it by reciting the whole knowledge of the Vedas in the form of rhyming verse methodically and systematically to the humanity at large. In this way the heavenly knowledge of Vedas is imparted to every creation of the universe.

We heartily desire that the teaching of the Vedas may spread not only in Russia or America but in every part of the globe. Scientific achievements will be their's and spiritual contribution will be ours. World will accept universality of the Vedas when they will be available in Devnagari Script and Sanskrit.

A clergyman was preaching religion to a gathering of about two or three hundred persons. Rishi Dayanand happened to pass through. Seeing the gathering, he stopped. The clergy man was saying, "The world is six thousand years old." At the end of the preaching, the Rishi went forward and asked, Padree Sahib, "May I ask some questions?"

Padree Sahib was much pleased in his inner heart and began to say that if this saint was under his control, all the public automatically be at his disposal. The clergyman said-Babaji-come here and take the chair, I will answer your questions?"

Swamiji stood near Padree's table and asked `padree Sahib! Do you coversant with geological science?

Padree Sahib! "Yes, I know."

Swamiji took hold of the paperweight which was made of Billori glass and said, "padree Sahib-"Can you tell me the time which it may take to turn into a

glass shape from soil?"

Padree Sahib calculated the time on a blank sheet of paper and replied. "Soil may take about ten thousand years to come in this shape."

Swamiji-"Can you tell me when it sprang from the earth?"

Padree Sahib-"This I don't know."

Swamiji-"Take it granted that it sprang this year."

Padree Sahib-"All right."

Swamiji-"You have just told us that the world is only six thousand years old."

Padree Sahib-"All right."

Swamiji-"When the world was created six thousand years ago and this glass took ten thousand years to come to this stage, where did it remain for four thousand years prior to the world's creation? How do you reconcile with these two adverse statements."

Padree had never thought of being caught in the trap of his own version. He felt nervous. He got up to leave the place as he had no answer. Swamiji then stopped him and explained the correct, theory of creation of the universe.

Foreign scholars Wilson and Max Mullaer consider Vedas as Pourusheya or written by man, and accordingly to their views Vedas are 24,00 years, 29,00 years and 31,00 years old. Both the opinions are wrong. A Man written book is never perfect, never universal for the entire humanity at all times. But the origin of Vedas are since birth of the universe. They provide all learning. They are for the whole world, and will continue to impart knowledge till the end of the universe. The forementioned scholars seem to have made no allowance to the origin of Vedas in relation to daily rituals, the voque of marking Miti, Var and Samvat on memoranda intent in celebration of festivals and the art of reading Vedas dates back to the origin of the universe.

Creation is called the Day and dissolution the night of Brahma, the creator God. The Brahma's day comprises of 4,32,00,00,000 years (चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष) and the Brahma's night is also of the same duration. The Brahma's day consists of one thousand chaturyugi Satyug has 17,28,000 years, Tretayug has 12,96,000 years, Dwaparyug has 8,64,000 years, Kaliyug has 4,32,000 years and Chaturyugi thus consists of 43,20,000 years, Seventy one chaturyugi consisting of 30,67,20,000 years make one Manvanter. Human creation covers fourteen Manvantars or 994 chaturyugi and out of the remaining six chaturyugi three are devoted to all the preliminaries of the universe till human creation. In the same way, three chaturyugi comprise of total dissolution of the universe.

Six Manvantars have so far passed since creation of the universe.

1-Swayambhav (स्वायम्भव), 2-Swarochish (स्वारोचिष), 3-Outtami (औत्तमि), 4-Tamas (तामस), 5-Raivat (रैवत), 6-Chaksush (चाक्षुष) and 7-Viavswat (वैवस्वत). These Manvantars camprise of 1,84,03,20,000 years (एक अरब चौरासी करोड़ तीन लाख बीस हजार वर्ष)।

Twenty Seven chatureyugi of the seventh Manvantar Vaivaswat have passed and now in the twenty eight chaturyugi 5081 years of kaliyug are over and 4,26,919 years of kaliyug still remain. In other words 12,05,33,081 years of Vaivaswat Manu have passed and 18,61,86,919 years still remain.

So, since human creation or Vedic age 1,96,08,53,081 years have passed and Savavardik (स्वावर्णिक), Daksavardi (दक्षसावर्णि), Brahamsa vardi (ब्रह्मसावर्णि), Dharmsavardi (धर्मसावर्णि), Savardi (सावर्णि), Ruchi (रूचि), & Bhom (भौम), These seven Manvantars still remain, in other words human creation or Vedic age 2,33,32,26,919, years are still remain. The total human creation of Vedic age comprises of 4,29,40,80,000 add to these 2,59,20,000 years of interim period to make 4,32,00,00,000 years which is the age of creation. The present year 1,96,08,53,082 years is the eighty two years of Kaliyug out of the twenty eight chaturyugi of Vanasvat Manu, which begins from chaitra Shukla Pratipada of Vekrami Samvat 2038 or April 5, 1981.

On the basis of the world Madarv (मधर्व) मधु which occurs in Uajurveda 7/30, it may be said that the creation of human beings began in chaitra (April), number 30 shows Amavasya the last day of chaitra. So the birth of human creation took place on the day of Shukla Pritipada.

I am heartly thankful to Sri Rajendra Kumar Gupta, Ex. Secretary of Arya Samaj, Mandi Bans, Moradabad who took great pain in translating Hindi version into English version of this portion "What are the Vadas?" written by Sri.Virendra Gupt :.

EDITOR

पृष्ठ १६६ का शेष

प्रकृति अनादि है। अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ फँसता और कभी मुक्त होता है। सत रज तम युक्त जाड्य का नाम प्रकृति है। प्रकृति से सत रज तम आदि प्राप्त कर जीव तदनुसार गुणों को प्राप्त कर उपरान्त में फल भोगता है। सत्यार्थ प्रकाश में ऋषि ने प्रकृति प्रदत्त सतोगुण के सेवन को ही श्रेयस्कर कहा है, उसी से सद्वृत्ति का संचालन होता है। जो धर्म में प्रवृत्त कर सुख की प्राप्ति कराकर मानव समाज में व्यतिक्रम जन्य व्यवधान के निराकरण में पूर्ण रूपेण सफल सिद्ध होता है। जिसके विपरीत रजो गुण शनैः–शनैः तमोगुण का रूप लेकर सभी प्रकार के असंतुलन से समाज को त्राहि–त्राहि के चरमराते चटकते कगारों पर खड़ा कर मानवता का नाश करता है।

सी–१०८, गाँधी नगर,
मुरादाबाद

दस नियम

१-सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२-ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३-वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढ़ना-पढ़ाना, और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४-सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५ सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्यता का विचार कर करने चाहिए।

६-संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७-सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८-अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।

९-प्रत्येक को अपनी ही उन्नति में सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०-सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालन में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

वेद संस्थान, मण्डी चौक, मुरादाबाद